* नमो वीतरागाय *

क्रिया-कलापः ।

(१)

सम्पादकः संशोधकः प्रकाशकश्च—

पन्नालाल-सोनी-शास्त्री,

मुद्रक—

कपूरचन्द जैन, महावीर प्रेस,

किनारी बाजार, आगरा ।

वैशाख, वीरनिर्वाणाब्दः २४६२

विक्रमाब्दः १९९३

प्रथमावृत्तिः १०००

मूल्यं सपादरूप्यकं १।)

पुस्तक-प्राप्तिस्थानम्—

१—श्री-ऐलक-पन्नालाल—दिगम्बरजैन—सरस्वती—भवन,
झालरापाटन सिटी.

२—श्री-ऐलक-पन्नालाल—दिगम्बरजैन—सरस्वती—भवन,
सुखानन्द-धर्मशाला, बंबई नं० ४.

३—श्री-ऐलक-पन्नालाल—दिगम्बरजैन—सरस्वती—भवन,
नशियां सेठ चम्पालालजी रामस्वरूपजी,
ब्यावर (राजपूताना)

———

सहायता सूची—

निम्नलिखित सज्जनों ने पूज्य १०८ मुनिश्री-सुधर्मसागरजी महाराज के उपदेश से निम्नप्रकार सहायता दी अतः उनकी सेवा में सादर धन्यवाद-पुष्पाञ्जलि समर्पित है। अतः यह ग्रंथ सहायक दानी महोदयों की ओर से दि० जैन साधुओं और उत्कृष्ट श्रावकों के करकमलों में भेट-स्वरूप सविनय समर्पित है।

२००) सेठ फतेलालजी कटारिया जयपुर।
२००) बाबू सुन्दरलालजी सोनी जज जयपुर।
२००।) ज्योतिर्बा लक्ष्मण निराले।
३००) गुमानजी केशरीमलजी प्रतावगढ़ की मार्फत हुंडी १
५५।।) सेठ भीमचन्दजी टोडरमलजी उदयपुर की मार्फत मनीयार्डर से।

———

९५५।।।)

———

प्रस्तावना

मुनि और श्रावकों की नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं से संबन्धित एक ग्रन्थ प्रकाशित करने का भार आचार्यसंघ की ओर से हमें सोंपा गया था। जिसे आज दो ढाई वर्ष से भी ऊपर हो गया है। इस बीच में आचार्यसंघ की ओर से इसे शीघ्र प्रकाशित किये जाने का तक़ाजा भी कई वार आया। तदनुसार शीघ्रता करते हुए भी अनिवार्य कारणों से उसे शीघ्र प्रकाशित करने में हम समर्थ नहीं हो सके। इसमें खास एक कारण एक ही प्रेस में एक साथ दो दो बड़े बड़े संग्रहों का प्रकाशित होना भी है। क्योंकि भूमिका युक्त करीब ६० फार्म का जो 'अभिषेक-पाठ-संग्रह' श्री बनजीलालजी-दि० जैन-ग्रन्थमाला की ओर से प्रकाशित हुआ है उसके संपादन, संशोधन, प्रकाशन, संकलन आदि का भार भी हम पर ही था।

इस प्रकृत संग्रह में मुनि और श्रावकों की नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का संग्रह है इसलिए इसका नाम 'क्रिया-कलाप' रक्खा गया है। इसमें संस्कृतटीकाओं से युक्त स्वयंभूस्तोत्र, जिनसेनप्रणीत जिन सहस्रनाम स्तुति और आशाधरकृत जिनसहस्रनामस्तुति तथा और अनेकों ही मूल व टीकायुक्त स्तोत्रों का संग्रह भी प्रकाशित करने का विचार था जिनमें से कितनों ही की प्रेसकापियां भी हमारे पास तैयार हैं किन्तु मुद्राओं के अभाव के कारण उन सबको प्रकाशित करने में असमर्थ हुए हैं। यदि सब इच्छित विषय प्रकाशित हो जाते तो यह ग्रंथ तिगुने से भी ऊपर हो जाता। इसके प्रकाशित होने में जो सहायता प्राप्त हुई है उसका सारा श्रेय पूज्य १०८ मुनिश्रीसुधर्मसागरजी महाराज को है। उनकी इच्छानुसार ही यह संग्रह प्रकाशित हुआ है।

यह संग्रह चार अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहला अध्याय नित्यक्रियाप्रयोगविधि नाम का है। उसमें दिखाई गई प्रयोगानुपुर्वी मूलाचार, चारित्रसार, आचारसार, अनगारधर्मामृत, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण आदि प्राचीन ग्रंथों के अनुसार हमने संग्रह की है। आरंभ का कृतिकर्म, देववन्दनाप्रयोगविधि, और देववन्दनाप्रयोगानुपूर्वी के सानुवाद पाठ का संग्रह, हम इस संग्रह के प्रकाशन का भार हमारे ऊपर आने के पूर्व ही कर चुके थे। जयपुर चातुर्मास के समय हमने उसको मुनियों की सेवा में उपस्थित किया। जिसको देखकर सभी संघने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। कुछ समय के बाद इस संग्रह के प्रकाशित करने का भार हम पर आया तो उसमें वह पाठ भी ज्यों का त्यों सानुवाद रख दिया। क्योंकि मुनियों की दैनिकचर्या देववंदना या सामायिक से ही प्रारंभ होती है।

प्राचीन संकलित एक सामायिक पाठ है। उस पर प्रभाचन्द्राचार्य कृत एक टीका है। व्यावर-भवन की सूची में सामायिक-भाष्य की दो प्रतियों का उल्लेख है। उनके कर्त्ता का नाम विश्वसेन है। तीसरी प्रति और है, संभवतः उसमें कर्ता का नाम नहीं है। अवकाशाभाव के कारण हम इनका मिलान नहीं कर सके। प्रभाचन्द्राचार्यकृत टीका हमने देखी है परंतु वह इस समय हमारे पास नहीं है। एक दूसरी टीका-पुस्तक हमारे पास है, उसमें कर्ता का नाम नहीं है। उसके अन्त में 'इति सामायिकभाष्यं समाप्तं। श्री :। सामायिक सर्व श्री प्रभाचन्द्रविरिचिता: टीका ब्रह्मसूतसागरविरचिता टीका मिश्री करता लक्षता:' ऐसा लिखा है। इस पर से मालूम होता है कि उस पाठ पर ब्रह्मसू (श्रु) तसागर-विरचित भी कोई एक टीका है। एवं तीन या चार उस पर संस्कृत टीकाएं हैं। स्वर्गीय पं० जयचन्दजीकृत हिंदी भाषा में एक अनुवाद[1] भी उस पर है। इन सब का पाठ एकसा ही है या भिन्न भिन्न है? यह

१—यह अनुवाद मूल सहित अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला में छप चुका है।

हम नहीं कह सकते परन्तु उक्त सामायिकभाष्य और पं० जयचंदजी के पाठ में विशेष भेद नहीं है। सिर्फ सामायिक स्वीकार और सामाधि-भक्ति के पाठ में हीनाधिकता अवश्य है। यह सामायिकपाठ मूलमूल भी कई प्रतियों में पाया जाता है उनमें भी किसी किसी में प्रायः यही भेद है। हमको अपने अनुवाद के समय तक उक्त कोई भी टीका ग्रन्थों के देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

प्रायः सब प्रतियों में ईर्यापथविशुद्धि, शान्त्यष्टक, सामायिकस्वीकरण, सामायिकदंडक और चतुर्विंशतिस्तवदंडक पूर्वक बृहच्चैत्य भक्ति, चन्द्रप्रभस्वयंभू, वत्ताणुट्ठाणे इत्यादि चतुर्विंशतितीर्थंकर[२] जय-माला, वर्षेषु वर्षान्तर इत्यादि लघुचैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, शान्ति-भक्ति और हीनाधिकरूप समाधिभक्ति इतना बड़ा संगृहीत सामायिक पाठ पाया जाता है। जो 'अधिकस्याधिकं फलं' के अनुसार बढ़ गया है। उसी पर टीकाएँ रची गई हैं।

एक तो यह पाठ बड़ा है दूसरे त्रिकाल देववन्दना या त्रिकाल सामायिक में उल्लिखित सब पाठों के करने का विधान नहीं है। क्योंकि आगम में त्रिकाल देववन्दना या त्रिकाल सामायिक में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति इन दो ही भाक्तियों के किये जाने का विधान है। उदाहरण भी इसी तरह देववन्दना के किये जाने का पाया जाता है। यथा—

समपादौ पुरःस्थित्वा जिनार्चनकृताञ्जली।
उच्चार्योपांशुपाठेन प्रागीर्यापथदण्डकं ॥
कायोत्सर्गविधानेन शोधितेर्यापथौ पथि।
जैनेऽतिनिपुणौ क्षौण्यां निषण्णौ पुनरुत्थितौ ॥

२—यह जयमाला पुष्पदन्त प्रणीत यशोधर चरित की है, जो बड़ी संस्कृत देव शास्त्रगुरुपूजा में भी पाई जाती है।

पुण्यपंचनमस्कारपदपाठपवित्रितौ ।
चतुरुत्तममांगल्यशरणप्रतिपादिनौ ॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु ससप्ततिशतात्मके ।
धर्मक्षेत्रे त्रिकालेभ्यो जिनादिभ्यो नमोऽस्त्विति ॥
सामायिकं करोमीति सर्वं सावद्ययोगकं ।
संप्रत्याख्यामि कायं च तावदुज्झितांगकौ ॥
शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे जीविते मरणेऽपि वा ।
समतालाभलाभे मे तावदित्यन्तराशयौ ॥
सप्तप्राणप्रमाणं तु स्थित्वा कृत्वा शिरोञ्जलिं ।
इत्युदाहरतां भव्यं तौ चतुर्विंशतिस्तवं ॥
ऋषभाय नमस्तुभ्यमजिताय नमो नमः ।
संभवाय नमः शश्वदभिनन्दन ! ते नमः ॥
नमः सुमतिनाथाय नमः पद्मप्रभाय ते ।
नमः सुपार्श्वविश्वेशे नमश्चन्द्रप्रभार्हते ॥
नमस्ते पुष्पदन्ताय नमः शीतलतायिने ।
नमोऽस्तु श्रेयसे श्रीशे श्रेयसे श्रितदेहिनां ॥
नमोऽस्तु वासुपूज्याय सुपूज्याय जगत्त्रये ।
वर्तते यस्य चंपायां निष्कंपोऽयं महामहः ॥
विमलाय नमो नित्यमनन्ताय नमो नमः ।
नमो धर्मजिनेन्द्राय शान्तये शान्तये नमः ॥
नमस्ते कुन्थुनाथाय तथाराय नमस्त्रिधा ।
मल्लये शल्यमल्लाय मुनिसुव्रत ! ते नमः ॥
नमोऽस्तु नमिनाथाय नमितस्त्रिभुवने सदा ।
यस्येदं वर्तते तीर्थं सांप्रतं भरतावनौ ॥
अरिष्टनेमिनाथाय भविष्यत्तीर्थकारिणे ।
हरिवंशमहाकाशशशांकाय नमो नमः ॥

नमः पार्श्वजिनेन्द्राय श्रीवीराय नमो नमः ।
सर्वतीर्थकराणां च गणेन्द्रेभ्यो नमः सदा ॥
कृत्रिमाकृत्रिमेभ्यश्च सदनेभ्योऽर्हतां नमः ।
भुवनत्रयवर्तिभ्यः प्रतिबिम्बेभ्य एव च ॥
इत्थं कृत्वा स्तवं भक्त्या तौ प्रहृष्टतनूरुहौ ।
प्रणेमतुः शिरोजानुकरस्पृष्टधरातलौ ॥
पूर्ववत्पुनरुत्थाय कायोत्सर्जनयोगतः ।
पुण्यं पंचगुरुस्तोत्रमुदरीरचतामिति ॥
अर्हद्भ्यः सर्वदा सर्वसिद्धेभ्यः सर्वभूमिषु ।
आचार्येभ्य उपाध्यायसाधुभ्यश्च नमो नमः ॥
परीत्य जिष्णुधिष्ण्यं तौ रथमारुह्य हारिणौ ।
प्रविष्टौ दंपती चंपां संपदा परया ततः ॥

—हरिवंशपुराण ।

परायत्तस्य सतः क्रियां कुर्वाणस्य कर्मक्षयो न घटते तस्मादात्माधीनः सन् चैत्यादीन् प्रतिवन्दनार्थं गत्वा धौतपादस्त्रिप्रदक्षिणीकृत्य ईर्यापथकायोत्सर्गं कृत्वा प्रथममुपविश्यालोच्य चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि इति विज्ञाप्य उत्थाय जिनचन्द्रदर्शनमात्राभिजनयनचन्द्रकान्तोपलविगलदानन्दाश्रुजलधारापूरपरिप्लावितपक्ष्मपुटोऽनादिभवदुर्लभभगवदर्हत्परमेश्वरपरमभट्टारकप्रतिबिंबदर्शनजनितहर्षोत्कर्षपुलकिततनुरतिभक्तिभरावनतमस्तकन्यस्तहस्तकुशेशयकुड्मलो दण्डकद्वयस्यादावन्ते च प्राक्तनक्रमेण प्रवृत्य चैत्यस्तवनेन त्रिःपरीत्य द्वितीयवारेऽप्युपविश्य आलोच्य पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य उत्थाय पंचपरमेष्ठिनः स्तुत्वा तृतीयवारेऽप्युपविश्यालोचनीयः । एवमात्माधीनता प्रदक्षिणीकरणं त्रिवारं निष्पन्नत्रयं चतुःशिरो द्वादशावर्तकमिति क्रियाकर्म षड्विधं भवति ।

एवं देवतास्तवनक्रियायां चैत्यभक्तिं पंचगुरुभक्तिं च कुर्यात् ।

—चरित्रसार ।

चैत्यपंचगुरुस्तुत्या नित्या सन्ध्या सुवन्दना ।

\+ + +

जिणदेववन्दणाए चेदियभत्ती य पंचगुरुभत्ती ।

\+ + +

ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिका ।

—अनगारधर्मामृतोक्त उद्धरण

त्रिसन्ध्यं वन्दने युंज्याच्चैत्यपंचगुरुस्तुती ।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये ॥

तद्यथा—

श्रुतदृष्ट्यात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम् ।
कृतद्रव्यादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निसही गिरा ॥
चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पस्त्रिरानतः ।
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन् ॥
कृत्वेर्यापथसंशुद्धिमालोच्यानम्रकाङ्घ्रिदोः ।
नत्वाश्रित्य गुरोः कृत्यं पर्यङ्कस्थोऽग्रमंगलम् ॥
उक्तात्तसाम्यो विज्ञाप्य क्रियामुत्थाय विग्रहम् ।
प्रह्वीकृत्य त्रिभ्रमैकशिरोऽवनतिपूर्वकम् ।
मुक्ताशुक्त्यङ्कितकरः पठित्वा साम्यदण्डकम् ॥
कृत्वावर्तत्रयशिरोनतीभूयस्तनुं त्यजेत् ॥
प्रोच्य प्राग्वत्ततः साम्यस्वामिनां स्तोत्रदंडकः ।
वन्दनामुद्रया स्तुत्वा चैत्यानि त्रिप्रदक्षिणं ॥
आलोच्य पूर्ववत्पंचगुरून् नुत्वा स्थितस्तथा ।
समाधिभक्त्यास्तमलः स्वस्य ध्यायेद्यथाबलम् ॥

—अनगारधर्मामृत ।

मत्वेति जिनगेहादिं त्रिःपरीत्य कृताञ्जलिः ।
प्रकुर्वंस्तच्चतुर्दिक्षु त्र्यावर्तां शिरोनतिम् ॥
घोरसंसारगंभीरवारिराशौ निमज्जताम् ।
दत्तहस्तावलंबस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत् ॥

\+ + +

ईर्यागःशुद्ध्यै व्युत्सर्गं कृत्वासीनोऽनुकम्पया ।
आलोच्य समतां वर्यां कुर्यादात्मेच्छयान्यदा ॥

\+ + +

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम् ।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम् ॥
कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृतं निजम् ।
भाललीलासरः कुर्यात् त्र्यावर्तां शिरसो नतिम् ॥
आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रमः ।
तदन्तेऽप्यङ्गव्युत्सर्गः कार्योऽतस्तदनन्तरम् ॥
कुर्यात्तथैव थोस्सामीत्याद्यस्याद्यन्तयोरपि ।
इत्यस्मिन् द्वादशावर्ता शिरोनतिचतुष्टयम् ॥

× × ×

देवतास्तवने भक्ती चैत्यपंचगुरूभयोः ।

—आचारसार ।

मूलाचार में भी 'चत्तारि पडिकमणे' इस गाथा की टीका में भगवद्वसुनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्ती वन्दना में दो कृतिकर्म लिखते हैं। वे कहते हैं—'**सामायिकस्तवपूर्वककायोत्सर्गः चतुर्विंशतितीर्थकरस्तवपर्यंतः कृतिकर्मेत्युच्यते**' ऐसे कृतिकर्म "......**प्रतिक्रमणे क्रियाकर्माणि चत्वारि स्वाध्याये त्रीणि वन्दनायां द्वे**" प्रतिक्रमण में चार, स्वाध्याय में तीन और वन्दना में दो होते हैं। क्योंकि वन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति दो होती हैं। दोनों के दो उक्त कृतिकर्म होते

हैं। इससे भी यही साबित होता है कि वन्दना में दो ही भक्ति होती हैं। अतएव हमने उक्त सब आगमों के अनुसार वन्दना में दो ही भक्तियां रक्खी हैं और उन्हीं के अनुसार प्रयोगानुपूर्वी लिखी है।

पं० आशाधरजी के समय कुछ सुविहिताचार मुनि और श्रावक सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति इन चार भक्तियों द्वारा भी देववन्दना करते थे परन्तु उसको उनने ठीक नहीं माना है। वे लिखते हैं—

यत्पुनर्वृद्धपरंपराव्यवहारोपलंभात् सिद्धचैत्यपंचगुरुशांतिभक्तिभिर्यथावसरं भगवन्तं वन्दमानाः सुविहिताचारा अपि दृश्यंते तत्केवलं भक्तिपिशाचिदुर्ललितमिव मन्यामहे सूत्रातिवर्तनात्। सूत्रे हि पूजाभिषेक-मंगल एव तच्चतुष्टयमिष्टं। तथा चोक्तम्—

चैत्यपञ्चगुरुस्तुत्या नित्या सन्ध्यासु वन्दना।
सिद्धभक्त्यादिशान्त्यन्ता पूजाभिषवमंगले ॥१॥

अपि च—

जिणदेववंदणाए चेदियभत्ती य पञ्चगुरुभत्ती।

तथा—

अहिसेयवंदणा सिद्ध-चेदिय-पंचगुरु-संतिभत्तीहिं।

—अनगारधर्मामृत

इन सब प्रमाणों से ज्ञात होता है कि ऊपर बताये गये संगृहीत सामायिक पाठ का क्रम आगम के अनुकूल तो नहीं है परन्तु अशुभ भावों का उत्पादक भी नहीं है अतः कोई सुविहिताचार उसके अनुसार भी देववंदना करे तो हानि नहीं है। हां, आगम विधान का उल्लंघन अवश्य होता है।

वर्तमान के सुविहिताचार उक्त सब विधानों से भी विपरीत त्रिकाल सामायिक या त्रिकाल देववन्दना करते हुए देखे जाते हैं। वे चारों दिशाओं में चार कायोत्सर्ग कर और आँखें मीच कर बैठ जाते हैं। और मध्याह्न-वन्दना भी आहारोपरान्त करते हैं। संभवतः आगमोक्त

कृतिकर्मपूर्वक भक्तिपाठ भी नहीं करते हैं। मालूम पड़ता है मुनि-परंपरा के न रहने से उनमें यह जुदी ही परंपरा चल पड़ी है। अस्तु, देववन्दना से आगे का विधान भी उक्त आगमों के अनुसार संकलित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में तीन प्रतिक्रमणपाठ हैं। तीनों ही आगमानुसार हैं। श्रावक प्रतिक्रमण को छोड़कर, यतिदैवसिकरात्रिप्रतिक्रमण और पाक्षिकादि प्रतिक्रमण पर प्रभाचन्द्राचार्य विरचित विस्तृत और उत्तम टीकाएं भी पाई जाती हैं।

तृतीय अध्याय में छोटी बड़ी भक्तियों का समावेश किया गया है। भक्तियों की सब टीकाएं प्रभाचन्द्राचार्य—प्रणीत हैं। इनका बनाया हुआ एक क्रियाकलाप नाम का ग्रंथ है। उसमें तीन अध्याय हैं। उनमें से पहला अध्याय प्रारंभ से अन्त तक ज्यों का त्यों ही रख दिया गया है। दूसरे अध्याय में चैत्यभक्ति और स्वयंभू की टीकाएं हैं और तीसरे अध्याय में (१) शान्त्यष्टक, (२) शांतिपाठ या शांतिभक्ति, (३) गजांकुशकृत अभिषेकपाठ, (४) मुनीन्द्रपूजानवक, (५) भक्तामरस्तोत्र और (६) जिनसेन-प्रणीत सरस्वतीपूजा की टीकाएं हैं। चैत्यभक्ति की टीका दूसरे अध्याय में से तथा शान्त्यष्टक और शान्तिभक्ति की टीका तीसरे अध्याय में से ली गई है। वीरभक्ति और चतुर्विंशतिस्तव की टीका प्रतिक्रमण टीका से तथा पंचगुरुभक्ति और समाधिभक्ति की टीका सामायिक टीका से ली गई है।

चतुर्थ अध्याय का पाठ भी पूर्वशास्त्रानुसार संकलित किया गया है। उसका दीक्षापटल का पाठ जैसा मिला वैसा ही ज्यों का त्यों जोड़ दिया गया है।

मूल कर्ता—

चैत्यभक्ति, दैवसिकरात्रिप्रतिक्रमणभक्ति और पाक्षिकादिप्रतिक्रमणभक्ति गौतमगणधर कृत हैं, ऐसा टीकाकार लिखते हैं। इस विषय के

१, २, ३ । इनकी टीकाएं भी पृथक् छप चुकी हैं।

उल्लेख कहीं भक्तियों के प्रारम्भ में और कहीं उनकी टिप्पणी में कर दिये गये हैं। सिद्धभक्ति से लेकर नन्दीश्वरभक्ति तक की भक्तियों के सम्बन्ध में वे ही टीकाकार लिखते हैं—"संस्कृताः सर्वा भक्तयः पादपूज्यस्वामिकृताः प्राकृतास्तु कुन्दकुन्दाचार्यकृताः"। इस पर से मालूम पड़ता है कि सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति, निर्वाणभक्ति और नन्दीश्वरभक्ति ये सात संस्कृत भक्तियां पादपूज्यस्वामी कृत हैं और प्राकृतसिद्धभक्ति, प्राकृतश्रुतभक्ति, प्राकृतचारित्रभक्ति, प्राकृतयोगिभक्ति और प्राकृत आचार्यभक्ति ये पांच भक्तियां कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत हैं। प्राकृतनिर्वाणभक्ति का समावेश इस टीका में नहीं है, अतः वह कुन्दकुन्दाचार्य–प्रणीत है या और किसी आचार्य द्वारा प्रणीत है यह हम निश्चित नहीं कह सकते। इसके अलावा शेष भक्तियां भी किनकी बनाई हुई हैं यह भी नहीं कह सकते। इतना कह सकते हैं कि छोटी बड़ी सभी भक्तियां तेरहवीं शताब्दी से पहले भी थीं। शान्त्यष्टक भी पादपूज्यकृत है। संभवतः पादपूज्य शब्द का तात्पर्य पूज्यपाद देवनन्दी से है।

टीकाकार—

भक्तियों के टीकाकार प्रभाचन्द्र नामके आचार्य हैं। इस नामके कई प्रौढ़ विद्वान् आचार्य हो गये हैं, भट्टारक भी इस नाम के हुए हैं। उनमें से कौन से प्रभाचन्द्र क्रियाकलाप टीका, सामायिक टीका और प्रतिक्रमण टीका के कर्ता हुए हैं और किस समय वे इस धरातल को समलंकृत कर चुके हैं। यह निश्चय यथेष्ट साधन और शीघ्रता के कारण हम नहीं कर सके हैं। इतना अवश्य कह सकते हैं कि उक्त सामायिक पाठ में अनगारधर्मामृत और सागारधर्मामृत के ये दो पद्य पाये जाते हैं—

> योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनतिः।
> विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत् ॥

स्नपनार्चास्तुतिजपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते ।
युंज्याद्यथाम्नायमाद्यादृते संकल्पितेऽर्हति ॥

यदि इनकी टीका प्रभाचन्द्राचार्य ने भी की है तब तो प्रभाचन्द्राचार्य तेरहवीं शताब्दी के बाद के हैं। नहीं तो आशाधर जी से पूर्ववर्ती हैं। तेरहवीं शताब्दी से कितने बाद के हैं ? यह यदि पर्यालोचना की जाय तो इनका समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और पन्द्रहवीं का प्रारम्भ अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है। इस विषय को 'एक नाम के अनेक आचार्य' नाम के लेख में कभी लिखेंगे।

अन्त में नम्र निवेदन यह कि इस ग्रंथ के सम्पादन, संशोधन, और संकलन में कई त्रुटियां रह गई हैं तथा अज्ञान व प्रमादवश और यथेष्ट साधनाभाव के कारण कई अशुद्धियां भी रह गई हैं। कहीं कहीं मात्रा आदि जो संशोधन के समय ठीक थीं परन्तु छपते समय उड़ गई हैं, अतः प्रेस की वजह से भी कितनी ही अशुद्धियां हो गई हैं। अतः इस विषय में क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है पाठकवृन्द अशुद्धि निमित्त पठन-जन्य कष्ट के होने पर क्षमा प्रदान करेंगे।

प्रार्थी—

झालरापाटन सिटी,
चैत्र ७, वि० १९९२।

मुनिचरणसरोजैकभ्रमर—
पन्नालाल-सोनी-शास्त्री,

क्रियाकलापस्था विषय-सूची

नमः सिद्धेभ्यः ।

क्रिया-कलापः

वन्दनाद्यध्यायः प्रथमः ।

देववन्दना या सामायिक-विधिः ।

नमः श्रीवीरनाथाय, सम्यग्बोधप्रहेतवे ।
सामायिकविधिं वक्ष्ये, पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥

कृति-कर्म—

सामायिक अथवा देववन्दना के समय संयतों और देश-संयतों को कृति-कर्म करना चाहिए । पाप कर्मों को छेदने वाले अनुष्ठान को कृति-कर्म कहते हैं अर्थात् जिन क्रियाओं से पाप कर्मों का नाश हो वह कृति-कर्म है । इस कृति-कर्म के सात भेद हैं । यथा—

योग्यकालासनस्थानमुद्रावर्तशिरोनति ।
विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत् ॥ १ ॥

अर्थात्—योग्य काल, योग्यआसन, योग्यस्थान, योग्यमुद्रा, योग्य-आवर्त, योग्यशिर और योग्यनति ये सात कृति-कर्म हैं । इसको नग्न-मुद्राधारी संयत, बत्तीस दोष रहित, विनयपूर्वक करे ॥ १ ॥

योग्यकाल—

तिस्रोऽह्नोऽन्त्या निशश्चाद्या नाड्यो व्यत्यासिताश्च ताः ।
मध्याह्नस्य च षट् कालास्त्रयोऽमी नित्यवन्दने ॥ २ ॥

अर्थात्—नित्यवन्दना के तीन काल हैं। पूर्वाह्णकाल, मध्याह्न-काल और अपराह्ण काल। ये तीनों काल छह छह घड़ी के हैं। रात्रिकी पीछे की तीन घड़ी और दिन की पहिली तीन घड़ी एवं छह घड़ी पूर्वाह्णवन्दना में उत्कृष्ट काल है। दिन की अन्त की तीन घड़ी और रात्रि की पहली तीन घड़ी एवं छह घड़ी अपराह्ण वन्दना में उत्कृष्ट काल है तथा मध्य दिन की आदि अन्त की तीन तीन घड़ी एवं छह घड़ी मध्याह्न वन्दना में उत्कृष्ट काल है। इस तरह सन्ध्यावन्दना में छह छह घड़ी उत्कृष्ट काल है॥ २॥

योग्य-आसन—

वन्दनासिद्धये यत्र येन चास्ते तदुद्यतः।
तद्योग्यासनं देशः पीठं पद्मासनाद्यपि॥ ३॥

अर्थात्—वन्दना की निष्पत्ति के लिये वन्दना करने को उद्युक्त साधु, जिस देश में जिस पीठ पर और जिन पद्मासनादि आसनों से बैठता है उसे योग्य आसन कहते हैं॥ ३॥

वन्दनायोग्य-प्रदेश—

विविक्तः प्रासुकस्त्यक्तः संक्लेशक्लेशकारणैः।
पुण्यो रम्यः सतां सेव्यः श्रेयो देशः समाधिचित्॥ ४॥

अर्थात्—विविक्त—जिसमें अशिष्ट जन का संचार न हो, जो प्रासुक—सम्मूर्छन जीवों से रहित हो, संक्लेशकारण—रागद्वेष आदि से और क्लेशकारण—परीषहरूप उपसर्ग से रहित हो, पुण्य—वन, भवन, चैत्यालय, पर्वत की गुफा सिद्धक्षेत्रादि रूप हो, रम्य—चित्त को प्रफुल्लित करने वाला हो, मुमुक्षु पुरुषों के सेवन करने योग्य हो और प्रशस्त ध्यान को बढ़ाने वाला हो ऐसे देश का वन्दना करने वाला साधु वन्दना की सिद्धि के लिए आश्रय ले॥ ४॥

वन्दनायोग्य-पीठ—

विजन्त्वशब्दमच्छिद्रं सुखस्पर्शमकीलकम् ।
स्थेयस्तार्णाद्यधिष्ठेयं पीठं विनयवर्धनम् ॥ ५ ॥

अर्थात्—जो खटमल आदि प्राणियों से रहित हो, चर चर शब्द न करता हो, जिसमें छेद न हों, जिसका स्पर्श सुखोत्पादक हो, जिसमें कील कांटा वगैरह न हो, जो हिलता-जुलता न हो, निश्चल हो ऐसे तृणमय दर्भासन चटाई वगैरह, काष्ठमय—चौकी, तख्त आदि, शिलामय—पत्थर की शिला जमीन आदि रूप पीठ का वन्दना करने वाला साधु वन्दना सिद्धि के लिए आश्रय ले अर्थात् तृणरूप, काष्ठरूप और शिलारूप पीठ पर बैठ कर नित्यवन्दना करे ॥ ५ ॥

वन्दनायोग्य पद्मासनादि—

पद्मासनं श्रितौ पादौ जंघाभ्यामुत्तराधरे ।
ते पर्यंकासनं न्यस्तावूर्वोर्वीरासनं क्रमौ ॥ ६ ॥

अर्थात्—दोनों जंघाओं (गोड़ों) से दोनों पैरों के संश्लेष को पद्मासन कहते हैं अर्थात् दाहिने गोड़ के नीचे बायें पैर को करना और बायें गोड़ के नीचे दाहिने पैर को करना अथवा बायें पैर के ऊपर दाहिने गोड़ को करना और दाहिने पैर के ऊपर बायें गोड़ का करना सो पद्मासन है। जंघाओं को ऊपर नीचे रखने को पर्यंकासन कहते हैं अर्थात् बायें गोड़ के ऊपर दाहिने गोड़ को रखना सो पर्यंकासन है। दोनों ऊरु (जांघों) के ऊपर दोनों पैरों के रखने को वीरासन कहते हैं अर्थात् बायां पैर दाहिनी जांघ के ऊपर रखना और दाहिना पैर बायीं जांघ के ऊपर रखना सो वीरासन है ॥ ६ ॥

वन्दनायोग्य स्थान—

स्थीयते येन तत्स्थानं वन्दनायां द्विधा मतम् ।
उद्भीभावो निषद्या च तत्प्रयोज्यं यथाबलम् ॥ ७ ॥

अर्थात्—वन्दना करने वाला जिससे खड़ा रहे या बैठे वह स्थान है सो वन्दना में दो प्रकार का माना गया है। एक उद्भीभाव (खड़ा रहना) दूसरा निषद्या (बैठना)। इन दोनों स्थानों में से अपनी शक्ति के अनुसार किसी एक का प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

वन्दनायोग्य-मुद्रा—

मुद्रा के चार भेद हैं। जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दनामुद्रा और मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिन-मुद्रा—

जिनमुद्रान्तरं कृत्वा पादयोश्चतुरङ्गुलम्।
ऊर्ध्वजानोरवस्थानं प्रलम्बितभुजद्वयम् ॥८॥

अर्थात्—दोनों पैरों का चार अंगुलप्रमाण अन्तर (फासला) रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटका कर कायोत्सर्ग रूप से खड़ा होना सो जिनमुद्रा है ॥८॥

योगमुद्रा—

जिनाः पद्मासनादीनामङ्कमध्ये निवेशनम्।
उत्तानकरयुग्मस्य योगमुद्रां बभाषिरे ॥९॥

अर्थात्—पद्मासन, पर्यङ्कासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्र देव योगमुद्रा कहते हैं ॥९॥

वन्दनामुद्रा—

मुकुलीकृतमाधाय जठरोपरि कूर्परम्।
स्थितस्य वन्दनामुद्रा करद्वन्द्वं निवेदिता ॥१०॥

अर्थात्—दोनों हाथों को मुकुलित कर और उनकी कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए पुरुष के वन्दना मुद्रा होती है। भावार्थ—दोनों कुहनियों को पेट पर रखकर दोनों हाथों को मुकुलित करना सो वन्दना मुद्रा है ॥१०॥

मुक्ताशुक्तिमुद्रा—

मुक्ताशुक्तिर्मता मुद्रा जठरोपरि कूर्परम् ।
ऊर्ध्वजानोः करद्वन्द्वं संलग्नाङ्गुलि सूरिभिः ॥११॥

अर्थात—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए के आचार्य मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं। भावार्थ—दोनों कुहनियों को पेट पर रखना और दोनों हाथों का जोड़ कर अंगुलियों को मिला लेना मुक्ताशुक्तिमुद्रा है ॥११॥

मुद्राओं का प्रयोगनिर्णय—

स्वमुद्रा वन्दने मुक्ताशुक्तिः सामायिकस्तवे ।
योगमुद्रास्यया स्थित्या जिनमुद्रा तनूज्झने ॥१२॥

अर्थात—"जयति भगवान" इत्यादि चैत्यवन्दना करते समय वन्दनामुद्रा का प्रयोग करना चाहिए। "णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिकदण्ड के समय और "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशतिस्तवदंडक के समय मुक्ताशुक्ति मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए। बैठकर कायोत्सर्ग करते समय योगमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए तथा खड़े रह कर कायोत्सर्ग करते समय जिनमुद्रा का प्रयोग करना चाहिए ॥१२॥

आवर्त का स्वरूप—

कथिता द्वादशावर्ता वपुर्वचनचेतसाम् ।
स्तवसामायिकाद्यन्तपरावर्तनलक्षणाः ॥१३॥

अर्थात—मन, वचन और काय के पलटने को आवर्त कहते हैं। ये आवर्त बारह होते हैं। जो सामायिकदण्डक के प्रारम्भ और समाप्ति में तथा चतुर्विंशतिस्तवदण्डक के प्रारम्भ और समाप्ति के समय किये जाते हैं। जैसे—"णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिकदण्डक के पहले क्रिया विज्ञापन रूप मनोविकल्प होता है उस मनोविकल्प को छोड़ कर सामायिकदंडक के उच्चारण के प्रति मन को लगाना सो मनः परावर्तन

है। उसी सामायिकदण्डक के पहले भूमिस्पर्शन रूप नमस्कार किया जाता है उसवक्त वन्दनामुद्रा की जाती है उस वन्दनामुद्रा को त्यागकर पुनः खड़ा होकर मुक्ताशुक्तिमुद्रा रूप दोनों हाथों को करके तीन वार घुमाना सो कायपरावर्तन है। "चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि" इत्यादि उच्चारण को छोड़कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि पाठ का उच्चारण करना सो वाक्परावर्तन है। इस तरह सामायिक दण्डक के पहले मन, काय और वचन परावर्तन रूप तीन आवर्त होते हैं। इसी तरह सामायिक दण्डक के अन्त में और स्तवदण्डक के आदि तथा अन्त में तीन तीन आवर्त यथायोग्य होते हैं। एवं सब मिलकर एक कायोत्सर्ग में बारह आवर्त होते हैं ॥१३॥

त्रिः सम्पुटीकृतौ हस्तौ भ्रमयित्वा पठेत्पुनः।
साम्यं पठित्वा भ्रमयेत्तौ स्तवेऽप्येतदाचरेत् ॥१४॥

अर्थात्—मुकुलित दोनों हाथों को तीन वार घुमाकर सामायिकदण्डक पढ़े। पढ़ कर फिर तीन वार घुमावे। चतुर्विंशतिस्तवदण्डक में भी इसी तरह करे। अर्थात्—मुकुलित दोनों हाथों को तीन वार घुमा कर चतुर्विंशतिस्तव दण्डक पढ़े। पढ़कर फिर मुकुलित दोनों हाथों को तीन वार घुमावे ॥१४॥

शिर-लक्षण—

प्रत्यावर्तत्रयं भक्त्या नन्नमत् क्रियते शिरः।
यत्पाणिकुड्मलाङ्कं तत् क्रियायां स्याच्चतुः शिरः ॥१५॥

अर्थात्—तीन तीन आवर्त के प्रति जो भक्ति पूर्वक शिर झुकाना है वह चार शिर है। मुकुलित हाथ इसका चिन्ह है और ये चार शिर चैत्यभक्त्यादि कायोत्सर्ग के समय किये जाते हैं। भावार्थ—सामायिक दण्डक के आदि में तीन आवर्त कर शिर झुकाना। अन्त में तीन आवर्त कर शिर झुकाना। इसी तरह स्तवदण्डक के आदि में तीन

आवर्त कर शिर झुकाना और अन्त में भी तीन आवर्त कर शिर झुकाना एवं एक कायोत्सर्ग के प्रति चार शिरोनमन होते हैं ॥१५॥

चैत्यभक्ति आदि में दूसरी तरह से भी आवर्त होते हैं सो दिखाते हैं

प्रतिभ्रामरि वार्चादिस्तुतौ दिश्येकशश्चरेत् ।
त्रीनावर्तान् शिरश्चैकं तदाधिक्यं न दुष्यति ॥१६॥

अर्थात्—चैत्यभक्त्यादि के करते समय हर एक प्रदक्षिणा में एक एक दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनमन करे। भावार्थ—एक प्रदक्षिणा देने में चारों दिशाओं में बारह आवर्त और चार शिरोनमन होते हैं इसी तरह दूसरी तीसरी प्रदक्षिणा में तीन तीन आवर्त और चार चार शिरोनमन होते हैं एवं ये आवर्त और शिरोनमन पूर्वोक्त प्रमाण से अधिक हो जाते हैं सो दोष के लिए नहीं हैं ॥१६॥

नति—

द्वे साम्यस्य स्तुतेश्चादौ शरीरनमनान्नती ।
वन्दनाद्यन्तयोः कैश्चिन्निविश्य नमनान्मते ॥१७॥

अर्थात्—सामायिकदण्डक और स्तुतिदण्डक के पहले भूमिस्पर्श रूप पंचांगप्रणाम करने से दो नति की जाती हैं। कोई-कोई आचार्य वन्दना के पहले और पीछे बैठकर प्रणाम करने से दो नती मानते हैं। भावार्थ—सामायिकदण्डक के पहले और चतुर्विंशतिस्तवदण्डक के पहले दो बार पंचांगप्रणाम किया जाता है इसलिए दो नती होती हैं। स्वामि समन्तभद्रादिक का मत है कि वन्दना के प्रारंभ में एक और समाप्ति में एक ऐसे दो प्रणाम बैठकर करना चाहिए इसलिए उनके मत से ये दो नती होती हैं ॥१७॥

इति कृति-कर्म

देववन्दना प्रयोग विधि ।

त्रिसन्ध्यं वन्दने युञ्ज्याच्चैत्यपंचगुरुस्तुती ।
प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धये ॥१॥

तथा—

जिणदेववन्दणाए चेदियभत्ती य पञ्चगुरुभत्ती ॥ १ ॥
ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिका ॥ २ ॥

तीनों सन्ध्या सम्बन्धी जिनवन्दना में चैत्य-भक्ति और पञ्चगुरु-भक्ति तथा सभी बृहद्भक्तियों के अन्त में वन्दनापाठ की हीनधिकाता रूप दोषों की विशुद्धि के लिए प्रियभक्ति-समाधिभक्ति करना चाहिए ।

इस देववन्दना में छह प्रकार का कृतिकर्म भी होता है । यथा—

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः ।
द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोढेष्टम् ॥२॥

तथा—

आदाहीणं, पदाहिणं, तिक्खुत्तं, तिऊणदं, चदुस्सिरं वारसावत्तं, चेदि ।

(१) वन्दना करने वाले की स्वाधीनता, (२) तीन प्रदक्षिणा, (३) तीन भक्ति सम्बन्धी तीन कायोत्सर्ग (४) तीन निषद्या—ईर्यापथ कायोत्सर्ग के अनन्तर बैठ कर आलोचना करना और चैत्य भक्ति सम्बन्धी क्रिया विज्ञापन करना १, चैत्यभक्ति के अन्त में बैठकर आलोचना करना और पञ्चमहागुरुभक्ति सम्बन्धी क्रिया विज्ञापन करना २, पञ्चमहागुरुभक्ति के अन्त में बैठ कर आलोचना करना, (५) चार शिरोनति, (६) और बारह आवर्त । यही सब आगे बताया गया है ।

देववन्दना-प्रयोगानुपूर्वी।
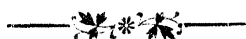
देववन्दना[1] के लिए श्रीजिनमन्दिर को जावें, वहाँ उचित स्थान में बैठकर दोनों हाथों और दोनों पैरों को धोवें। अनन्तर—

"निसही निसही निसही"

ऐसा तीन वार उच्चारण कर चैत्यालय में प्रवेश करें वहां जिनेन्द्रदेव के मुख का अवलोकन कर तीन वार प्रणाम करें। अनन्तर "दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि" इत्यादि दर्शन-स्तोत्र को वन्दना मुद्रा जोड़ कर पढ़ते हुए चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा देवें। प्रत्येक दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करते जावें।

अनन्तर[2] खड़ा रह कर, दोनों पैरों को समान कर, चार अँगुल का अन्तर रख कर और दोनों हाथों को मुकुलित कर नीचे लिखा "ऐर्यापथिक दोषविशुद्धिपाठ" पढ़ें।

ईर्यापथविशुद्धिः—

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते, अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजु-

१—श्रुतदृष्ट्यात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम्।
कृतद्रव्यादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निसहीगिरा॥ १॥
चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्बाष्पस्त्रिरानतः।
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन्॥ २॥

२—कृत्वेर्यापथसंशुद्धिं······।

३—प्रतिक्रम्य पृथग्गाथां द्विद्व्येकाशान्तरेचकाम्।
नव कृत्वः स्थितो जप्त्वा निषद्यालोचयाम्यहम्॥

ग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, वे इंदिया वा, ते इंदिया वा चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, परिदाविदा वा, किरिच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्तकरणं, तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं पज्जुवासं करोमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

हे भगवन्! ईर्यापथसम्बन्धी प्राणियों की विराधना होने पर किये हुये दोषों का निराकरण करता हूँ। मेरे मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से रहित होते हुए, शीघ्र चलने में, प्रथम ही स्वस्थान से निकलने में, ठहरने में, गमन करने में, सिकोड़ने पसारने रूप पैरों के के हिलाने चलाने में, श्वासोच्छ्वास लेने में अथवा दो इन्द्रिय आदि प्राणों के ऊपर प्रमाद पूर्वक चलने में, बीजों के ऊपर होकर चलने में, हरितकाय पर होकर चलने में, मल-मूत्र के प्रक्षेपण करने, थूकने, श्लेष्म-कफ डालने, कमण्डलु आदि उपकरण के रखने में जो मैंने एकेन्द्रिय जीवों को, दो इन्द्रिय जीवों को, तीन इन्द्रिय जीवों को, चार इन्द्रिय जीवों को, तथा पंचेन्द्रिय जीवों को, अपने अपने स्थान पर जाते हुए को रोका हो, अपने इष्ट स्थान से उठाकर अन्य स्थान में क्षेपण किया हो, परस्पर में संघट्टन पीड़ा पहुँचाई हो, उनका एक जगह पुञ्ज किया हो, मारा हो, सन्ताप पहुंचाया हो, खण्ड खण्ड किया हो, मूर्छित (बेहोश) किया हो, कतरा हो, विदारा हो, ये जीव अपने स्थान में ही स्थित हों अथवा अपने स्थान से दूसरे स्थान को जाते हों उस समय इनको उक्त प्रकार से उक्त स्थानों में विराधना की हो तो जब तक मैं भगवन् अर्हंतो को—प्रतिक्रमण का उत्तर गुण स्वरूप अर्थात् किये हुये

दोषों को निराकरण करने का कारण होने से उत्कृष्ट, जीवों की विराधना से उत्पन्न हुए दोषों को दूर करने वाला और जीवों की विराधना से उपार्जन किये हुये दुष्कृत्यों से शुद्ध करने वाला ऐसा नमस्कार करूँ तब तक जिससे पाप का उपार्जन होता है, जिससे दुराचार सेवन किये जाते हैं ऐसे काय का त्याग करता हूं अर्थात् तब तक इससे ममत्वभाव छोड़ता हूँ।

इस तरह प्रतिक्रमण पढ़ कर "णमो अरहंताणं" इत्यादि गाथा का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार खड़े खड़े जाप्य देवें। अनन्तर पर्यंकासन बैठ कर नीचे लिखा "आलोचना-पाठ" पढ़ें।

आलोचना—

ईर्यापथे प्रचलिताद्य मया प्रमादा—
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥१॥

इच्छामि भंते! आलोचेउं इरियावहियस्स पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिमचउदिसविदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोषेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ईर्यामार्ग में चलते हुए मैंने यदि प्रमाद से आज युग-चार हाथ प्रमाण भूमि न देखकर एकेन्द्रिय आदि जीव निकाय को पीड़ा पहुँचाई हो तो मेरा यह दुरित—पापाचरण गुरु भक्ति द्वारा मिथ्या हो।

हे भगवन्! ईर्यापथ सम्बन्धी प्रमाद-दोष की निन्दा और गर्हा रूप आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओं में वायव्य, ईशान, नैऋत और आग्नेय इन

चार ही विदिशाओं में विहार करते हुए भव्य को चार हाथ प्रमाण भूमि देख कर चलना चाहिए किन्तु प्रमादवश अत्यन्त जल्दी जल्दी ऊँचे को मुख किये हुये इधर उधर गमन करने के कारण विकलेन्द्रिय प्राणों का, वनस्पतिकायिक भूतों का, पंचेन्द्रिय जीवों का तथा पृथिवी जल आदि सत्वों का उपघात किया हो, औरों से कराया हो, करते हुए को अच्छा माना हो तो उस उपघात से जाय मान मेरा दुष्कृत-मिथ्या हो निष्फल हो।

अनन्तर [1]उठकर गुरु को अथवा देव को पंचांग नमस्कार करे पुनः गुरु के समक्ष अथवा गुरु दूर हो तो देव के समक्ष बैठ कर कृत्य विज्ञापन करे कि—

नमोऽस्तु भगवन्! देववन्दनां करिष्यामि।

अनन्तर पर्यंकासन से बैठ कर नीचे लिखा मुख्य मंगल पढ़े।

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेशरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥२॥

जिनको अनन्त चतुष्टय रूप आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो चुकी है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष लक्षण सम्पूर्ण भव्यार्थ की निष्पत्ति के उत्तम कारण हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतिपादन करने वाले हैं, जिनके चरण कमल की किरण रूप केशर देवेन्द्रों के मुकुट में आश्लिष्ट है—लगी हुई है, जो तीन लोक के भव्य प्राणियों के पाप का नाश करने वाले हैं उन चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर को प्रणाम करता हूँ।

---

[1]..............................मालोच्यानम्रकांघ्रिदोः।
नत्वाश्रित्य गुरोः कृत्यं पर्यंकस्थोऽग्रमंगलम् ॥ ३ ॥

अनन्तर बैठे बैठे ही नीचे लिखा पाठ पढ़ कर सामायिक स्वीकार करें।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ॥१॥
रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥२॥
हा दुट्ठकयं हा दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतोअंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥३॥
दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकाएण पडिकमणं ॥४॥
समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना ।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं ॥५॥

मैं सम्पूर्ण जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, मेरा किसी के साथ वैर-भाव नहीं है इस लिए सब प्राणियों के साथ मेरा मैत्री-भाव है ॥१॥ राग, द्वेष, हर्ष, दीनता, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति इन सब का मैं त्याग करता हूँ ॥२॥ हा! मैंने कोई दुष्ट कार्य किया हो, दुष्ट चिन्तवन किया हो, तथा दुष्ट वचन बोले हों, तो मैं भगवान अर्हंत के समक्ष निवेदन करता हुआ पश्चात्ताप पूर्वक अपने मन ही मन में दग्ध होता हूँ अर्थात अपनी निन्दा करता हूँ ॥३॥ मैं निंदा और गर्हा से युक्त हुआ मन, वचन और काय की क्रिया से द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव के विषय में किये गये अपराध का शोधन रूप प्रतिक्रमण करता हूँ ॥४॥ सभी प्राणियों में समता भाव रखना, संयम पालना, शुभ भावना भाना, आर्त और रौद्रध्यानों का परित्याग करना सो सब सामायिक है ॥५॥

---

१ उक्त्वात्तसाम्यो .... ।

'अथ कृत्यविज्ञापना—

भगवन्नमोऽस्तु प्रसीदंतु प्रभुपादा वंदिष्येऽहं, एषोऽहं सर्व-सावद्ययोगाद्विरतोऽस्मि ।

भगवान्! नमस्कार हो, प्रभुपाद प्रसन्न होवें मैं वन्दना करूँगा, यह मैं सर्व सावद्ययोग से विरक्त होता हूँ। अनन्तर नीचे लिखा क्रिया विज्ञापन करें।

अथ पौर्वाह्णिकं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भाव-पूजावन्दनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

अब प्रातः काल सम्बन्धी पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिए भाव पूजा, वन्दना और स्तव सहित चैत्यभक्ति और तत्सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ। (यह प्रथम वार बैठना है)

इस तरह कृत्यविज्ञापना कर 'खड़े हो कर भूमि-स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करें पश्चात् जिनप्रतिमा के सन्मुख चार अंगुल प्रमाण दोनों पैरों का अन्तर कर खड़े होवें। तीन आवर्त और एक शिरोनमन करें। पश्चात् मुक्ता-शुक्ति मुद्रा जोड़ कर नीचे लिखा समायिक दण्डक पढ़ें। पहले उच्छ्वास में अर्हंत—सिद्ध मंत्र का, दूसरे में आचार्य-उपाध्याय मन्त्र का और तीसरे में सर्व-साधु मन्त्र का स्वश्रवणगोचर जिसे दूसरा न सुन सके इस तरह एक वार उच्चारण कर पश्चात् चत्तारि-दण्डक स्तोत्र को समीपस्थ मनुष्य के कानों को मनोहर मालूम पड़े ऐसी सुरीली आवाज से पढ़ें। तद्यथा—

१............विज्ञाप्य क्रिया.........

२..............................मुत्थाय विग्रहं ।
प्रह्वीकृत्य, त्रिभ्रमैकशिरोवनतिपूर्वकम् ॥४॥
मुक्ताशुक्त्यंकितकरः पठित्वा साम्यदण्डकम् ।

सामायिक दंडक—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं (१) णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं (२) णमो लोए सव्व साहूणं (३) ॥१॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामइयं (देववन्दनां) सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं (जावन्नियमं) तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि, णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

चारघातिया कर्मों से रहित, अनन्तचतुष्टय सहित, आठ प्रातिहार्य युक्त, समवशरणादिविभूतिसमन्वित, परम औदारिक शरीर के धारक, हितोपदेशी, सर्वज्ञ, वीतराग अरहंतों को, आठ कर्मों से रहित, आठ गुणों सहित सिद्धों को, पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले, औरों को पालन कराने वाले छत्तीस गुण समन्वित आचार्यों को, बारह

अंग और चौदह पूर्व का अध्ययन और अध्यापन करने कराने वाले, स्वयं शुद्ध व्रतों से युक्त उपाध्यायों को, अट्ठाईस मूल गुणों से युक्त, मोक्ष पथका साधन करने वाले लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओं को नमस्कार करता हूँ।

अर्हंत सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चार मंगल रूप हैं—पाप कर्मों को नाश करने वाले और सुख को देने वाले हैं। अर्हंत सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चारों, लोक में उत्तम हैं अर्थात् उत्तम गुणों से युक्त हैं और भव्यों को उत्तम पद की प्राप्ति के कारण हैं। अर्हंत सिद्ध साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारों की शरण को प्राप्त होता हूँ अर्थात् ये दुर्जय कर्म रूप शत्रुओं से जायमान दुःखरूप समुद्र से भव्य जीवों को तारने वाले हैं इस लिए इन चारों की शरण ग्रहण करता हूँ।

अढ़ाई द्वीप, दो समुद्र और पन्द्रह कर्म भूमियों में जितने भगवान्, आदितीर्थ के प्रवर्तक, तीर्थंकर, जिन, जिनोत्तम केवलज्ञानी अर्हंत हैं उन सब का क्रिया कर्म करता हूँ। सम्पूर्ण अर्थों को जानते हैं इस लिए बुध, सुख स्वरूप हैं इस लिए परिनिर्वृत, अशेष कर्म जनित संसार का अन्त करने वाले अथवा एक एक तीर्थंकर के काल में दुर्धर उपसर्ग को प्राप्त कर एक अन्तर्मूहूर्त में घातिया कर्मों को नाश केवल-ज्ञान उत्पन्न कर और सम्पूर्ण कर्मों को क्षय कर सिद्ध पद प्राप्त करने वाले दश दश अन्तकृत, संसार समुद्र को पार करने वाले इस लिए पारंगत ऐसे जितने सिद्ध हैं उन सब का क्रिया कर्म करता हूं। तथा धर्म का आचरण करने वाले आचार्यों का; धर्म के उपदेशक उपाध्यायों का और धर्म के नायक सब साधुओं का क्रिया कर्म करता हूँ। एवं धर्म रूप चतुरंग सेना के अधिपति चतुर्णिकाय देवों द्वारा वन्दनीय अतएव देवाधिदेव ऐसे अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधुओं का तथा ज्ञान, दर्शन, और चारित्र इन तीन मुख्य गुणों का क्रिया कर्म करता हूं।

हे भगवन्! सामायिक (देववन्दना) करूँगा, सम्पूर्ण सावद्य योग–पाप कर्मों का त्याग करता हूँ। जब तक जीऊँ (नियम है) तब तक तीन प्रकार मन से वचन से और काय से सावद्य योग न करूँगा, न कराऊँगा और न करते हुए को अच्छा मानूँगा। अर्हन्त आदिक क्रिया कर्म-सम्बन्धी अतीचारों का त्याग करता हूँ। आत्मसाक्षिपूर्वक निन्दा करता हूँ तथा गुरु आदि की साक्षिपूर्वक गर्हा करता हूँ। इतना ही नहीं किन्तु जब तक भगवान् अर्हन्त देवों का पर्युपासन करूँगा तब तक जिनसे पाप-कर्मों का उपार्जन होता है ऐसे दुराचारों का भी त्याग करता हूं।

इस प्रकार उक्त सामायिक दण्डक पढ़कर पुनः तीन[1] आवर्त और एक शिरोनति करें। पश्चात् जिनमुद्रा जोड़कर कायोत्सर्ग करें। जिसमें "णमो अरहंताणं" इत्यादि मंत्र का सत्ताईस उच्छ्वासों में नौ बार पूर्वोक्त विधि के अनुसार जाप देवें या चिंतवन करें।

अनन्तर भूमिस्पर्शनात्मक[2] पंचांग नमस्कार करें पश्चात् पूर्वोक्त विधि से खड़े होकर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखा "चतुर्विंशतिस्तव" पढ़ें। तद्यथा;—

चतुर्विंशतिस्तव—

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥३॥

१—कृत्वावर्तत्रयशिरोनती भूयस्तनुं त्यजेत् ॥ ५ ॥
२—प्रोच्य प्राग्वत्ततः साम्यस्वामिनां स्तोत्रदण्डकम्।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभिथुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धी।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

जो देश जिन ऐसे गणधर आदि से श्रेष्ठ हैं, अनंत संसार को जिनने जीत लिया है अथवा जो केवल ज्ञान युक्त अनन्तजिन हैं, मनुष्यों में उत्कृष्ट लोक जो चक्रवर्ती आदि उनके द्वारा जो पूज्य हैं, जिसने ज्ञानावरण और दर्शनावरण रूप मल को नष्ट कर दिया है, जो पूज्यता को प्राप्त हुए हैं अथवा महाप्राज्ञ हैं ऐसे तीर्थंकरों का स्तवन करता हूँ॥१॥ जो केवल ज्ञान द्वारा लोक का प्रकाश करने वाले हैं, उत्तम क्षमा आदि दशलक्षण धर्म रूप तीर्थ के कर्ता हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं अथवा केवल ज्ञान से समन्वित हैं ऐसे चतुर्विंशति अर्हंतों का वन्दना पूर्वक निज-निज नाम सहित कीर्तन करूँगा ॥२॥ ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ जिनको वन्दना करता हूँ ॥३॥ सुविधि द्वितीय नाम पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान्, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म और शान्ति भगवान् को वन्दना करता हूं ॥४॥ तथा कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्धमान जिनवरेन्द्र को वन्दना करता हूँ ॥५॥ इस तरह मेरे द्वारा स्तवन किये गये, रजोमल से रहित, जरा और मरण से हीन तथा देशजिनों

में श्रेष्ठ चौवीस तीर्थंकर मुझ स्तुतिकर्त्ता पर प्रसन्न होवें ॥६॥ वचनों से कीर्तन किये गये, मन से वंदना किये गये और काय से पूजे गये ऐसे ये लोकोत्तम कृतकृत्य जिनेन्द्र मुझे परिपूर्ण ज्ञान, समाधि और बोधि प्रदान करें ॥७॥ सम्पूर्ण आवरणों के नष्ट हो जाने से चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल, सम्पूर्ण लोक का उद्योत करने वाले केवल ज्ञानरूप प्रभा से समन्वित होने से सूर्य्य से भी अधिक प्रभासमान, तथा अलक्षमाण गुण रूप रत्नों से परिपूर्ण होने से सागर के समान गंभीर ऐसे सिद्ध परमात्मा मुझ स्तवक को सर्व कर्म विप्रमोक्ष रूप सिद्धि देवें ॥८॥

अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। इस तरह एक कायोत्सर्ग में दो प्रणाम बारह आवर्त और चार शिरोनमन हुए। सामायिक दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन, अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनमन, तथा चतुर्विंशतिस्तव के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन और अन्त में तीन आवर्त और एक शिरोनमन एवं बारह आवर्त और चार शिरोनमन तथा सामायिक दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन के पहले अथ पौर्वाह्लिकं इत्यादि क्रिया विज्ञापन कर खड़े होने के पीछे एक पंचांग भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार तथा चतुर्विंशतिस्तव दण्डक के आदि में तीन आवर्त और एक शिरोनमन के पहले तथा कायोत्सर्ग के अनन्तर एक पंचांग नमस्कार एवं दो प्रणाम एक कायोत्सर्ग में हुए।

अनन्तर[१] तीन प्रदक्षिणा देते हुए और प्रति दिशा में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनमन करते हुए नीचे लिखी हुई चैत्यवन्दना पढ़ें। तद्यथा—

चैत्यभक्ति—

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।

१—वन्दनामुद्रया स्तुत्वा चैत्यानि त्रिप्रदक्षिणम् ॥६॥

कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामन्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार—गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया-मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित-स्पर्शित हैं ऐसे जिनके चरणों में आकर कलुष हृदय वाले, अहंकार से युक्त, परस्पर बैरी ऐसे सर्प नौला आदि जीव अपने अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ॥१॥

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गीभावाद्विविक्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ॥२॥

अर्थ—अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे जयमान क्लेशों से छुड़ाता है। तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नयकी प्रधानता लेकर अङ्ग पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप से अथवा अङ्ग पूर्व और अंगबाह्य रूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचन रूप अमृत संसार से रक्षा करे ॥२॥

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी ।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ॥३॥

अर्थ—अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि सात भंग रूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद व्यय, ध्रौव्य रूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीय रूप द्वार को अंतराय रूप आगल से रहित उद्‌घाटन कर ज्ञानदर्शनावरण रूप रजसे रहित व्याधि अथवा जरा मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे ॥ ३ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः ।
सर्वजगद्वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥४॥

अर्थ—सम्पूर्ण जगत द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को, सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो ॥४॥

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः ।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मोह राग द्वेष आदि सम्पूर्ण दोष रूप शत्रुओं के घातक हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरण रूप रज को नष्ट कर दिया है, तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो ॥ ५॥

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं ।
शुभधामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच, आदि गुणों का समुदाय जिस की उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म को वन्दता हूँ ॥ ६ ॥

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगि ।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे ॥७॥

अर्थ—जो मिथ्याज्ञान रूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुत ज्ञान का जनक होने से सम्बन्धी है। आचारादि अङ्गों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है। तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैन वचन को सदा वन्दना करता हूँ ॥७॥

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि ।
त्रिजगदभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणां ॥८॥

अर्थ—भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों, ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्र देव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबको मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ॥८॥

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तॄणाम् ।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ॥९॥

अर्थ—जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय-मन्दिर की पंक्तियों को भी संसार रूप अग्नि की शांति के लिए वन्दता हूं ॥९॥

इति पंच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां ॥१०॥

अर्थ—इस तरह वन्दना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नव देवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ॥१०॥

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु ।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥११॥

अर्थ—तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थिति, मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ॥११॥

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ॥१२॥

अर्थ—जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनकी शरीर—यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥१३॥

अर्थ—जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थिति हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृत-कृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिए वन्दता हूँ ॥१३॥

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥

अर्थ—उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिए नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन ।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे॥१५॥

अर्थ—तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिन धर्म में ही स्थिर होवे ॥१५॥

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१६॥

अर्थ—सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यात चरित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिक दर्शन और क्षायिक ज्ञान रूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्म मल के प्रक्षालन के के लिए कीर्तन करूँगा ॥१६॥

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः ।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥१७॥

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुर रूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परम गति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें ॥१७॥

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च ।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥ १८ ॥

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिम्ब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदता हूँ ॥ १८ ॥

ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः ।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे ॥ १९ ॥

अर्थ—व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ॥ १९ ॥

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः ।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ॥ २० ॥

अर्थ—अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्ति धारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूं ॥ २० ॥

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये ॥ २१ ॥

अर्थ—जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबन्धी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी ॥ २२ ॥

अर्थ—इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ॥ २२ ॥

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ॥ २३ ॥
लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम् ॥ २४ ॥
शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत् ।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्ति-सिकतासुभगम् ॥२५॥

क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदया-विकचकुसुमविलसल्लतिकम्
दुःसहपरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ॥ २६ ॥
व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोष—शैवलरहितम् ।
अत्यस्तमोह—कर्दममतिदूरनिरस्तमरण—मकरप्रकरम् ॥२७॥
ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम् ।
विविधतपोनिधि-पुलिनं सास्रवसंवरणनिर्जरानिस्रवणम् ॥२८॥
गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥२९॥
अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं ।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम् ॥ ३० ॥

अर्थ—जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजन रूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवल ज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान हो प्रतिदिन बहते हुये प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्ल ध्यान रूप स्थिर स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों कर शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्ति रूप सिकता (बालू) से सुशोभित है, जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त-लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर-उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषाय रूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोष रूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरण रूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों कर

बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भांति के तपोनिधि-मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्रवण से मुक्त है, जिसमें गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों करके न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंत रूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालन रूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण-नाश करे ॥ २३-३०॥

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥३१॥

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात् ॥३२॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगन्धोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम् ॥३३॥

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः ॥३५॥

अर्थ—हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोप रूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयन रूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्ष रूप बाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजात रूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन् ! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुर रूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है, तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं जितने केवल ज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं है, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त—चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्य्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को देखकर मोक्ष के परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्का-लीन उदयापन्न निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है, देवेन्द्रों के नमस्कार

प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा वह यह आपका रूप, जैन मत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरु रूप राग द्वेष मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ॥३१-३४॥

अनन्तर[1] चैत्य के सन्मुख बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें।

आलोचना या अंचलिका—

इच्छामि भंते ! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय--तिरियलोय--उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाण-विंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—हे भगवन् ! चैत्यभक्ति और तत् सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूं। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं पूजते हैं वन्दते हैं नमस्कार करते हैं मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ पूजता हूँ

१—आलोच्य...।

वन्दता हूँ नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुणसंपत्ति हो।

अनन्तर बैठे बैठे ही नीचे लिखा कृत्य विज्ञापन करें।

अथ पौर्वाह्णिकं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्तवसमेतं पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि।

अब प्रातःकाल सम्बन्धी पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिये भाव पूजा वन्दना स्तव सहित पंचमहागुरुभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूं।

अनन्तर उठ कर पंचांग नमस्कार करें। पश्चात भगवान के सन्मुख पहिले की तरह खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा जोड़ कर तीन आवर्त और एक शिरोनति कर पूर्वोक्त "सामायिक" दंडक पढ़ें। अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति कर सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर पुनः पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करें पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशति स्तव पढ़कर अंत में तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। अनन्तर भगवान् के सन्मुख पूर्वोक्तरीति से खड़े होकर नीचे लिखी पंचमहागुरु भक्ति पढ़ें।

पंचमहागुरुभक्ति—

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥

अर्थ—जिनके सिर पर मनुष्य, धरणेन्द्र और सौधर्मादि देव तीन छत्र लगाए खड़े रहते हैं, जो गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इन पंच कल्याणक सन्बन्धो सुखों को प्राप्त हुए हैं। जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तध्यान—सुख, और अनन्तवीर्य इन अनंत चतुष्टय समन्वित हैं वे अर्हंत प्रभु हमारे लिए उत्कृष्ट मङ्गल प्रदान करें ॥१॥

१—..........................पूर्ववत्पंचगुरून्नुत्वा स्थितस्तथा।

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइदड्ढयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥२॥

अर्थ—जिनने ध्यानरूप अग्निवाण से अत्यंत दृढ़ जन्म, जरा और मरण रूप तीन नगर निर्दग्ध किये हैं तथा जिनने शाश्वत स्थान-मोक्ष प्राप्त किया है वे सिद्ध परमात्मा मुझे उत्कृष्ट ज्ञान देवें ॥२॥

पंचआचारपंचग्गिसंसाहया, बारसंगाइ-सुअजलहिअवगाहया ।
मोक्खलच्छी महंती महंते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खंगयासंगया ॥३॥

अर्थ—जो पंचाचार रूप पंचाग्नि के साधक हैं, द्वादशांग श्रुत रूप समुद्र में अवगाहन करते हैं, मोक्ष के कारण सम्यगदर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों से संगत-युक्त हैं वे आचार्य परमेष्ठी हमें उत्कृष्ट मोक्ष लक्ष्मी देवें ॥३॥

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे ।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसिया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥

अर्थ—तीक्ष्ण नखों वाले पाप रूप विकराल सिंह जहां विचरण कर रहे हैं ऐसे घोर संसार रूप भयानक अटवियों में मार्ग भूले हुए जीवों को जो पथ प्रदर्शक हैं। उन उपाध्यायों को हम सदा नमस्कार करते हैं ॥४॥

उग्गतवचरणकरणेहिं खीणंगया, धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणंगया ।
णिब्भरं तवसिरियसमालिंगया, साहवो ते महामोक्खपथमग्गया ॥५॥

अर्थ—जिनका उग्र तपश्चरण के करने से शरीर क्षीण हो गया है, जो धर्मध्यान और शुक्लध्यान में तल्लीन रहते हैं तथा तपोलक्ष्मी से आलिंगित हैं वे साधु परमेष्ठी हमें मोक्षका मार्ग दिखलाने में अग्रसर होवें ॥५॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघनवल्ली सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धसोक्खाइं बहुमाणणं, कुणइ कम्मिंधणंपुंजपज्जालणं ॥६॥

अर्थ—जो इस स्तोत्र द्वारा पंच महागुरुओं की स्तुति करता है वह संसार रूप बड़ी भारी सघन वेल को छेद डालता है, मोक्ष सुख को आदर के साथ प्राप्त होता है तथा कर्म रूप ईंधन के पुंज को जला देता है ॥६॥

अरुहा सिद्धाइरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एदे पंचणमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥७॥

अर्थ—अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी रूप पंच नमस्कार मुझे भव भव में सुख देवें ॥७॥

अनन्तर बैठ कर नीचे लिखा आलोचना-पाठ पढ़ें।

आलोचना या अंचलिका—

इच्छामि भंते ! पंचमहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं। अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमउसंजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणपालणरदाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—हे भगवन् पंचमहागुरुभक्ति और तत्संबन्धी कार्योत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अष्ट महाप्रातिहार्य संयुक्त अर्हंतों का, अष्ट गुणोंकर संपन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित सिद्धों का, अष्ट प्रवचनमातृकाओं से संयुक्त आचार्यों का, आचारादि श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायों का और रत्नत्रय के पालन में रत सर्व साधुओं का सदा अर्चन करता हूं पूजन करता हूँ वंदना करता हूँ नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, जिनगुणसंपत्ति हो।

पश्चात् पूर्वोक्त देव वंदना के पाठ में न्यूनता हुई हो अथवा अधिकता हुई हो तो इसकी विशुद्धि के लिए समाधि भक्ति पढ़ने का आगम में नियम है। तद्यथा—

प्रथम बैठकर क्रियाविज्ञापन करें।

अथ पौर्वाह्णिकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीचैत्यपंचगुरुभक्ती विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि।

अथ पौर्वाह्णिक देववंदना में पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिए भावपूजावंदनास्तव सहित श्रीचैत्यभक्ति और श्रीपंचगुरुभक्ति करके उनके हीनाधिकत्वादि दोषों की विशुद्धि के लिए आत्माके पवित्र करने के लिए 'समाधिभक्ति और तत्संबन्धी कायोत्सर्ग करता हूं।

अनन्तर उठकर पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक "णमो अरहंताणं" इत्यादि सामायिक दंडक पढ़ें। दंडक के अन्त में तीन आवर्त और शिरोनति करके सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करें। अनन्तर भूमिस्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति पूर्वक "थोस्सामि" इत्यादि दंडक पढ़ें। अन्त में पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति कर नीचे लिखी "समाधि-भक्ति पढ़ें"। तद्यथा—

समाधि-भक्ति।

अथेष्ट-प्रार्थना, प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

१—समाधिभक्त्यास्तमलः स्वस्य ध्यायेद्यथाबलम्।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

अर्थ—मेरे शास्त्रों का अभ्यास हो जिनपति को नमस्कार हो, आर्य पुरुषों की सदा संगति हो, सदाचार परायण पुरुषों के गुणों के समूह की कथा हो, पराये दोषों के कहन में मौन हो, सब के प्रिय और हित रूप वचन हो, अपने आत्मस्वरूप में भावना हो, मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हों तब तक ये सब जन्म जन्म में प्राप्त हों।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥२॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक आपके चरण मेरे हृदय में रहें और मेरा हृदय आपके दोनों चरणों में लीन रहे।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमहु णाणदेवय मज्झ य दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

अर्थ—हे ज्ञान स्वरूप देव ! अक्षर, पद और अर्थ से हीन तथा मात्रा से हीन जो मैंने कहा हो तो उसे आप क्षमा करें और मेरे दुःखों का क्षय हो ॥ ३ ॥

अनन्तर बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें।

इच्छामि भंते ! समाधिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिं सव्वकालं अंचेमि पुज्जेमि वन्दामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

अर्थ—हे भगवन्! समाधि भक्ति और तत्संबन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी मैं आलोचना करता हूँ। रत्नत्रय स्वरूप परमात्म ध्यान लक्षण समाधि का सर्वकाल अर्चन करता हूँ पूजन करता हूँ, वंदना करता हूँ नमस्कार करता हूं। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो बोधिका लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधि मरण हो, जिनगुण-संपत्ति हो।

अनन्तर यथावकाश आत्मध्यान करें।

इति देववन्दनाविधिः समाप्तः

विक्रम शक भूपाल के 'अंक-'नाग-'निधि-'चंद।
ज्येष्ठ शुकल पूनम तिथी पूर्ण हुई निरद्वंद ॥१॥
यति-श्रावक, वंदन विधी, पूर्व शास्त्र अनुसार।
सोनी पन्नालाल ने, की संग्रह सुविचार ॥२॥
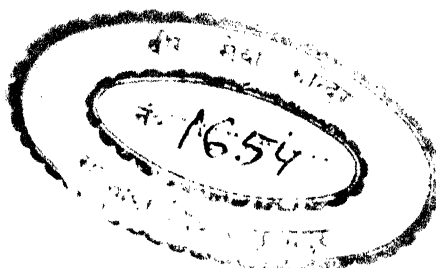
१—आचार्य-वन्दना-विधि[१]: ।

लघुसिद्धभक्तिः ।

नमोऽस्तु श्री आचार्यवन्दनायां श्रीसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(णमोकार ६ गुणिवा)

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

लघुश्रुतभक्तिः ।

नमोऽस्तु श्री आचार्यवन्दनायां श्रीश्रुतज्ञानभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(णमोकार ६ गुणिवा)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतित्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥१॥
अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥२॥

आचार्यलघुभक्तिः ।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(णमोकार ६ गुणिवा)

१—देववन्दनानन्तरमाचार्यं साधवो वन्देरन् तत्र—
लघ्व्या सिद्धगणिस्तुत्या गणी वन्द्यो गवासनात् ।
सैद्धान्तोऽन्तःश्रतस्तुत्या तथान्यस्तन्नुतिं विना ॥ १ ॥

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥१॥
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ॥२॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥३॥
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरत्ता ध्यानाग्निहोत्राकुला
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥ ४ ॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ५ ॥

२—स्वाध्याय-क्रमः[1] ।

अथ पौर्वाह्णिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रीश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

दंडकं पठित्वा—

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशाङ्गं विशालं
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥१॥

जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः ।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं, द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यहं श्रुतं ॥२॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥३॥

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥ ४ ॥

इच्छामि भंते ! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंगपइण्णयपाहुडपरियम्मसुत्तपढमानिओअपुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं सुदं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

१—स्वाध्यायं लघुभक्त्यात्तं श्रुतसूर्य्योरहर्निशे ।
पूर्वेऽपरेऽपि चाराध्य श्रुतस्यैव क्षमापयेत् ॥ १ ॥

अथ पौर्वाह्णिक स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रीआचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

दंडकं पठित्वा—

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥
श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने
परिणतिरुरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुतास्पृहा
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ॥२॥
श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥ ३ ॥
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वंदे ॥ ४ ॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिंदंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावंति ॥ ५ ॥
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः ।
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः ॥ ६ ॥
गुरवः पान्तु वो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ७ ॥

इच्छामि भंते ! आयरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण–सम्मदंसण–सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरि-

याणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुण-पालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्कायलेश्याः
पंचान्ये चास्तिकाया व्रतसमितिगतिज्ञानचरित्रभेदाः ।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः ॥१॥
सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविहआराहणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो ॥२॥
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णित्थरणं ।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया ॥३॥

इति स्वाध्यायः ।

अथ पौर्वाह्णिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

दण्डकं पठित्वा—

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितमित्यादि । इच्छामि भंते सुद-भत्तिकाओसग्गो कओ इत्यादि च ।

इति स्वाध्यायक्रमः ।

———

पूर्वाह्णस्वाध्यायानन्तरकर्तव्यकथनम् ।

ततो देवगुरू स्तुत्वा ध्यानं वाराधनादि वा ।
शास्त्रं जपं वास्वाध्यायकालेऽभ्यसेदुपोषितः ॥ १ ॥
प्राणयात्राचिकीर्षायां प्रत्याख्यानमुपोषितम् ।
न वा निष्ठाप्य विधिवद्भुक्त्वा भूयः प्रतिष्ठयेत् ॥ २ ॥

३—मध्याह्न-देववन्दना ।

पूर्वोक्ताऽत्र विधेया ।

हेयं लघ्व्या सिद्धभक्त्याशनादौ ।
प्रत्याख्यानाद्याशु चादेयमन्ते ।

१—पूर्वाह्णस्वाध्याय के अनन्तर पूर्वोक्त देववन्दना और गुरु-वन्दना करे, पश्चात् जिसने पहले दिन उपवास धारण किया है । वह उपोषित साधु अस्वाध्यायकाल में ध्यान करे वा आराधना आदि शास्त्र पढ़े अथवा पंचनमस्कार आदि का जाप्य दे ।

२—और जिसने पहले दिन उपवास धारण न किया हो वह साधु भोजन करने की इच्छा होने पर पूर्व दिन ग्रहण किये हुए प्रत्याख्यान अथवा उपवास को विधिपूर्वक निष्ठापन करे, पश्चात् विधिपूर्वक भोजन करके पुनः प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करे ।

३—भोजन के पहले लघुसिद्धभक्ति पढ़ कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास का त्याग-निष्ठापन करे और भोजन के बाद शीघ्र ही लघुसिद्ध-भक्ति पढ़ कर प्रत्याख्यान अथवा उपवास ग्रहण करे । यह तो आचार्य की असमक्षता में करे । आचार्य के समीप में लघु सिद्धभक्ति पूर्वक लघुयोगिभक्ति पढ़ कर प्रत्यख्यान अथवा उपवास धारण करे । अनन्तर लघु आचार्यभक्ति पढ़ कर आचार्य को वन्दना करे ।

सूरौ तादृग्योगिभक्त्यग्रया त-
नूप्रायं वन्द्यः सूरिभक्त्या स लघ्व्या ॥ १ ॥

---

४ प्रत्याख्याननिष्ठापनप्रतिष्ठापनविधिः

प्रत्याख्याननिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

५—उपवास-त्यागग्रहणविधिः

उपवासनिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

आचार्यसमीपे—

प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापनक्रियायां योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, प्रावृट्काले सविद्युत् इत्यादि ।

उपवास प्रतिष्ठापनक्रियायां सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि ।

उपवासप्रतिष्ठापनक्रियायां योगिभक्ति कायोत्सर्गं करोमि—
जाप्य, प्रावृट्काले सविद्युत् इत्यादि ।

६—आचार्यवन्दना ।

[१]पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

जाप्य, 'श्रुतजलधिपारगेभ्यः' इत्यादि ।

७—अपराह्णस्वाध्यायः ।

प्रतिक्रम्याथ गोचारदोषं नाडीद्वयाधिके ।
मध्याह्ने प्राह्णवद्वृत्ते स्वाध्यायं विधिवद्भजेत् ॥ १ ॥

अथापराह्णिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

जाप्य, "अर्हद्वक्त्रप्रसूतं" इत्यादि ।

अथापराह्णिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि-

जाप्य, "प्राज्ञः प्राप्तसमस्त" इत्यादि ।

(स्वाध्यायः)

अथापराह्णिकस्वाध्यायानष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

जाप्य, "अर्हद्वक्त्रप्रसूतं" इत्यादि ।

नाडीद्वयावशेषेऽह्नि तं निष्ठाप्य प्रतिक्रमम् ।
कृत्वाह्निकं गृहीत्वा च योगं वन्द्यो यतैर्गणी ॥ १ ॥

१—प्रत्याख्यान अथवा उपवास के अनन्तर गोचार प्रतिक्रमण करे, पश्चात् मध्याह्न के ऊपर दो घड़ी बीत जाने पर पूर्वाह्न की तरह विधिपूर्वक स्वाध्याय करे ।

२—दो घड़ी दिन अवशिष्ट रह जाने पर अर्थात् दिन के अन्त की तीसरी घड़ी वर्त रही हो तब स्वाध्याय पूर्ण कर दैवसिक प्रतिक्रमण करे । प्रतिक्रमण करने के अनन्तर रात्रियोग ग्रहण कर आचार्य को वन्दना करे ।

८—दैवसिक-प्रतिक्रमणम् ।

भक्त्या सिद्ध-प्रतिक्रांति-वीर-द्विदशाहर्ताम् ।
प्रतिक्रामेन्मलं योगं योगिभक्त्या भजेत्त्यजेत् ॥१॥

९—योगग्रहणम् ।

अथ रात्रियोगग्रहणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीयोगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

णमो अरहंताणं इत्यादि, कायोत्सर्गः, थोस्सामीत्यादि,
जातिजरोरुरोगमरणा इत्यादि योगिभक्तिं साञ्जलिकां पठेत् ।

१०—आचार्यवन्दना ।

आचार्यभक्तिं पठित्वाचार्यं वन्देत ।

इति दैवसिकानुष्ठानम् ।

स्तुत्वा देवमथारभ्य प्रदोषे सद्विनाडिके ।
[illegible]थे स्वाध्यायं प्रागेव घटिकाद्वयात् ॥१॥

१—सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति और चतुर्विंशति-तीर्थंकर भक्ति पढ़ कर दिन भर के दोषों की शुद्धि करे। इसे ही प्रति-क्रमण कहते हैं। पश्चात् आज रात को इस स्थान में रहूँगा, इस नियम विशेष का नाम योग है। इस योग को योगिभक्ति पढ़ कर ग्रहण करे और रात्रिप्रतिक्रमण के अनन्तर योगभक्ति पढ़ कर ही उस योग का मोचन करे।

२—आचार्य वन्दना के अनन्तर सायंतन देववन्दना करे, पश्चात् दो घड़ी रात बीत जाने पर तीसरी घड़ी में स्वाध्याय करे और जब अर्ध रात्रि में दो घड़ी अवशिष्ट रह जाय तब स्वाध्याय समाप्त करे।

११—सायन्तन-देववन्दना ।

देववन्दना पूर्वं उक्ता सैव । पौर्वाह्णिकदेववन्दनायां इत्यस्य स्थाने अपराह्णिकदेववन्दनायां इत्यादि योज्यम् ।

१२—प्रादोषिक-स्वाध्यायः ।

प्रादोषिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां इत्येवंरूपां उच्चारणां कृत्वा पूर्ववत्स्वाध्यायं विदध्यात् । अनन्तरं किञ्चित् स्वपेत् ।

क्लमं नियम्य क्षणयोगनिद्रया
लातं निशीथे घटिकाद्वयाधिके ।
स्वाध्यायमत्यस्य निशाद्विनाडिका—
शेषे प्रतिक्रम्य च योगमुत्सृजेत् ॥१॥

१३—वैरात्रिकस्वाध्यायः ।

वैरात्रिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां इत्येवं रूपां उच्चारणां कृत्वा पूर्ववत्स्वाध्यायं विदध्यात् ।

१—प्रादोषिक स्वाध्याय की समाप्ति के अनन्तर कुछ काल तक योगनिद्रा द्वारा शारीरिक ग्लानि को दूर कर अर्ध रात्रि के ऊपर दो घड़ी बीत जाने पर तीसरी घडी में स्वाध्याय प्रारम्भ करे और दो घड़ी रात बाकी रह जाने पर तीसरी घड़ी में समाप्त करे। अनन्तर रात्रि प्रतिक्रमण कर रात्रियोग का योगिभक्ति पढ़ कर मोचन करे।

१४—रात्रिप्रतिक्रमणम् ।

दैवसिकप्रतिक्रमणवद्रात्रिप्रतिक्रमणं कुर्यात् ।

१५—योगमोचनम् ।

अथ योगनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि ।

णमो अरहंताणं इत्यादि, कायोत्सर्गः थोस्सामीत्यादि, जातिजरोरुरोगमरणा इत्यादि योगिभक्तिं साञ्चलिकां पठेत् ।

१६—आचार्यवन्दना ।

लघु आचार्य-भक्तिं पठित्वा आचार्यं वन्देत ।

इति रात्र्यनुष्ठानम् ।

इति वन्दनाद्यध्यायः नित्यक्रियाप्रयोगविधानीयो वा नाम प्रथमोऽध्यायः ।

नमः सिद्धेभ्यः ।

प्रतिक्रमणाध्यायः द्वितीयः ।

१—दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमणम् ।

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा
यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थं ॥१॥

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना
रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

[1]खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि ॥३॥

रागबंधपदोसं च हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥४॥

हा ! दुट्ठकयं हा ! दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतोअंतो डज्झमि पच्छुत्तावेण वेदंतो ॥५॥

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकाएण पडिकमणं ॥६॥

१—आसां छाया श्रावकप्रतिक्रमणे द्रष्टव्या ।

एइंदियां, वेइंदिया, तेइंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणप्फदिकाइया, तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहरणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पंचेंद्रियरोध-लोच-षडावश्यकक्रिया अष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं, सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ।

१—एकेन्द्रिया द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पंचेन्द्रियाः, पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजःकायिका वायुकायिका वनस्पतिकायिकास्त्रसकायिकाः, एतेषां उत्तापनं परितापनं विराधनं उपघातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा समनुमतस्तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ।

२—व्रतानि समितयः इन्द्रियरोधो लोच आवश्यकं अचेलकमस्नानं ।
क्षितिशयनमदन्तवनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्च ॥१॥
एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।
अत्र प्रमादकृतादतिचारान्निवृत्तोऽहम् ॥२॥
छेदोपस्थापनं भवतु मम

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां कृत-दोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आलोचनासिद्धभक्तिकायोत्सर्ग[1] करोम्यहं—

(इति प्रतिज्ञाप्य)

णमो अरहंताणमित्यादि (सामायिकदंडकं पठित्वाकायोत्सर्गं कुर्यात्)।

थोसामीत्यादि (चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्)
श्रीमते[1] वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥ १ ॥

तव[2]सिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ २ ॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्ममुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयिट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागदवट्टमाण-कालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

१—श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुःषमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनोपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणोपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति—"श्रीमतेत्यादि। २ सिद्धभक्तिरियं।

आलोचना—

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो परिविहाविदो, पंच-महव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंता हरिआ बीआ अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परि-दावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणु-मणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

वेइंदिया[२] जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमि-संख-खुल्लुय-वराडय-अक्ख-रिट्ठबाल-संबुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

तेइंदिया[३] जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव- मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं

१—इच्छामि भगवन् ! चारित्राचारस्त्रयोदशविधः परिहापितः पंचमहाव्रतानि पंचसमितयः त्रिगुप्तयश्चेति, तत्र प्रथमे महाव्रते प्राणाति-पाताद्विरमणं तस्य पृथिवीकायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः, अप्का-यिका जीवा असंख्यातासंख्याताः, तेजःकायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः, वायुकायिका जीवा असंख्यातासंख्याताः, बनस्पतिकायिका जीवा अनन्ता हरिता बीजा अंकुराः छिन्ना-भिन्नाः तेषां उत्तापनं परितापनं विराधनं उपघातः कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा समनुमतः तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ।

२—द्वीन्द्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः कुक्षिकृमि-शंख-क्षुल्लक-बराटक-अक्ष-अरिष्टबाल-शंबूक-शुक्ति-पुलविकायिकाः-तेषां······ ॥

विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

६प्रतिक्रमणपीठिकादण्डकः—

इच्छामि भंते ! देवसियम्मि (राईयम्मि) आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि, तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं

३—त्रीन्द्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः, कुन्थू-देहिक-वृश्चिक-गोम्भिक-गोयूका-मत्कुण-पिपीलिकादिकास्तेषां······।

४—चतुरिन्द्रिया जीवा असंख्यातासंख्याता दंश मशक-मक्षिका-पतङ्ग-कीट-भ्रमर-मधुकर-गोमक्षिकादिकास्तेषां·········।

५—पंचेन्द्रिया जीवा असंख्यातासंख्याताः अण्डजाः पोता जरायुजाः रसजाः संस्वेदिमानः सम्मूर्छिमानः उद्भेदिका औपपादिका अपि चतुरशीतियोनिप्रमुखशतसहस्रेषु, एतेषां·········।

६—अथेष्टदेवतानमस्कारानन्तरं दैवसिक-पाक्षिक-चातुर्मासिक-भेदेन त्रिः प्रकाराणां प्रतिक्रमणानां मध्ये दैवसिकप्रतिक्रमणायास्तावत् पीठिकादंडकमाह ।

महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणदो वेरमणं, ईरियासमिदीए भासासमिदीए, एसणासमिदीए आदाननिक्खेवणसमिदीए, उच्चारपस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिपइट्ठावणियासमिदीए, मणगुत्तीए वचिगुत्तीए कायगुत्तीए, णाणेसु दंसणेसु चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-सीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु, वारसण्हं संजमाणं, वारसण्हं तवाणं, वारसण्हं अंगाणं, चोद्दसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं मुंडाणं, दसण्हं समणधम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं

७—इच्छामि भगवन्! दैवसिके आलोचयितुं, पंचमहाव्रतानि तत्र प्रथमं महाव्रतं प्राणातिपाताद्विरमणं द्वितीयं महाव्रतं मृषावादाद्विरमणं तृतीयं महाव्रतं अदत्तदानाद्विरमणं चतुर्थं महाव्रतं मैथुनाद्विरमणं पंचमं महाव्रतं परिग्रहाद्विरमणं षष्ठमणुव्रतं राजिभोजनाद्विरमणं, ईर्यासमितौ भाषासमितौ एषणासमितौ आदाननिक्षेपणसमितौ उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंहाणक-विकृतिप्रतिष्ठापनिकासमितौ मनोगुप्तौ वचोगुप्तौ कायगुप्तौ ज्ञानेषु दर्शनेषु चारित्रेषु द्वाविंशेषु परीषहेषु पंचविंशासु भावनासु पंचविंशासु क्रियासु अष्टादशशीलसहस्रेषु चतुरशीतिगुणशतसहस्रेषु द्वादशानां संयमानां द्वादशानां तपसां द्वादशानां अङ्गानां चतुर्दशानां पूर्वाणां दशानां मुण्डानां दशानां श्रमणधर्माणां दशानां धर्मध्यानानां नवानां ब्रह्मचर्यगुप्तीनां नवानां नोकषायाणां षोडशानां कषायाणां अष्टानां कर्मणां अष्टानां प्रवचनमातृकाणां अष्टानां शुद्धीनां सप्तानां भवानां सप्तविधसंसाराणां षण्णां जीवनिकायानां षण्णां आवश्यकानां पंचानां इन्द्रियाणां पंचानां महाव्रतानां पंचानां समितीनां पंचानां चारित्राणां चतसृणां संज्ञानां चतुर्णां प्रत्ययानां चतुर्णां उपसर्गाणां मूलगुणानां उत्तरगुणानां दृष्टिक्रियया

भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवास-याणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए परदावणियाए, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा, एदेसिं अच्चासणदाए, तिण्हं दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थसंकिलेस-परिणामाणं, मिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्ताणं, मिच्छत्त-पाउग्गं, असंयमपाउग्गं, कसायपाउग्गं, जोगपाउग्गं, अपाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए, इत्थं मे जो कोई देवसिओ राईओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भंते! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।२।।

[illegible] प्रादोषिकीक्रियया परतापनक्रियया, तस्य क्रोधेन वा मानेन वा मायया वा लोभेन वा रागेण वा द्वेषेण वा मोहेन वा हास्येन वा भयेन वा प्रद्वेषेण वा प्रमादेन वा प्रेम्णा वा पिपासिया वा लज्जया वा गौरवेण वा, एतेषां अत्यासनतायां त्रयाणां दण्डानां तिसृणां लेश्यानां त्रयाणां गौरवाणां द्वयोः आर्तरौद्रसंक्लेशपरिणामयोः त्रयाणां अप्रशस्तसंक्लेश-परिणामानां मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्राणां मिथ्यात्वप्रायोग्यं असंयमप्रायोग्यं कषायप्रायोग्यं योगप्रायोग्यं अप्रायोग्यसेवनायां प्रायो-ग्यगर्हायां, अत्र मे यः कश्चिद्दैवसिकः रात्रिकः अतिक्रमः व्यतिक्रमः अतिचारः अनाचारः आभोगः अनाभोगः, तस्य भगवन्! प्रतिक्रमामि,

वद समिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

(इति प्रतिक्रमणपीठिकादंडकः ।)

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीप्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—

णमो अरहंताणं (इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । अनन्तरं) थोस्सामीत्यादि (पठेत्) ।

(निषिद्धिकादंडकाः)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३ अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण ! णिब्भय ! णीराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिस्सल्ल ! माण-माय-मोस-मूरण ! तवप्पहावण ! गुणरयण-

---

मया प्रतिक्रान्तं तस्य मे सम्यक्त्वमरणं समाधिमरणं पंडितमरणं वीर्य-मरणं दुःखक्षयः कर्मक्षयः बोधिलाभः सुगतिगमनं समाधिमरणं जिन-गुणसम्पत्तिः भवतु मम ।

सीलसायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदिमहावीरवड्ढमाणबुद्धारिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए ।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, सुसमयपरसमयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि ।

१—नमो जिनेभ्यः ३, नमो निसिद्धिकायै ३, नमोस्तु तुभ्यं ३, अर्हन् ! सिद्ध ! बुद्ध ! नीरजः ! निर्मल ! सममनः ! शुभमनः ! समयोग ! समभाव ! शल्यघट्टानां शल्यघत्ताण ! निर्भय ! नीराग ! निर्दोष ! निर्मोह ! निर्मम ! निःशङ्क ! निःशल्य ! मानमायामृषामर्दक ! तपःप्रभावन ! गुण-रत्न-शीलसागर ! अनन्त ! अप्रमेय ! महतिमहावीरवर्धमान बुद्धर्षेनमोऽस्तु तुभ्यं ३ ।

अर्हन्तश्च सिद्धाश्च बुद्धाश्च जिनाश्च केवलिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्ययज्ञानिनः चतुर्दशपुर्वाङ्गमिनः श्रुतसमितिसमृद्धाश्च, तपश्च द्वादशविधं तपस्विनः, गुणाश्च गुणवन्तश्च, महर्षयः, तीर्थस्तीर्थकराश्च, प्रवचनं प्रवचनी च, ज्ञानं ज्ञानी च, दर्शनं दर्शनी च, संयमः संयताश्च विनयो विनीताश्च, ब्रह्मचर्यवासो ब्रह्मचारी च, गुप्तयश्चैव गुप्तिमन्तश्च, मुक्तयश्चैव मुक्तिमन्तश्च, समितयः समितिमन्तश्च, स्वसमयपरसमयविदः, क्षान्तिक्षपकाश्च क्षान्तिमन्तश्च, क्षीणमोहाः क्षीणवन्तश्च, बोधितबुद्धाश्च बुद्धिमन्तश्च, चैत्यवृक्षाश्च चैत्यानि । (एते सर्वे मम मङ्गलं भवन्तु) ।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धणिसी-हियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलो-यम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वत्ति-त्थेर-कुल-यराणं, चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं। एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिणंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरण-सुद्धो ॥ ९ ॥

(इति निषिद्धिकादण्डकः।)

पडिक्कमामि भंते! देवसियस्स अइचारस्स अणाचारस्स मण-दुच्चरियस्स वचिदुच्चरियस्स कायदुच्चरियस्स णाणाइचारस्स दंस-णाइचारस्स तवाइचारस्स वीरियाइचारस्स चारित्ताइचारस्स। पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं तिण्हं गुत्तीणं छण्हं आवास-याणं छण्हं जीवणिकायाणं विराहणाए पील कदो वा कारिदो व कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

२—ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोके सिद्धायतनानि नमस्करोमि, सिद्धनिषिद्धकाः अष्टापदपर्वते सम्मेदे ऊर्जयन्ते चम्पायां पावायां मध्यमायां हस्तिवा-लिकामण्डपे (नमस्यामीति सम्बन्धः)। या अन्याः काश्चित् निषिद्धिकाः जीवलोके ईषत्प्राग्भारतलगतानां सिद्धानां बुद्धानां कर्मचक्रमुक्तानां नीरजसां निर्मलानां गुर्वाचार्योपाध्यायानां प्रवर्तिस्थविरकुलकराणां (नमस्यामि) चतुर्वर्णश्च श्रमणसंघश्च भरतैरावतेषु दशसु पंचसु महा-विदेहेषु (मम मङ्गलं भूयात्) ये लोके सन्ति साधवः संयता तपस्विन एते मम मङ्गलं पवित्रं। एतानहं मङ्गलं करोमि भावतो विशुद्धः शिरसा, अभिवन्द्य सिद्धान् कृत्वाञ्जलिं मस्तके त्रिविधं त्रिकरणशुद्धः।

पडिक्कमामि भंते ! अइगमणे णिग्गमणे ठाणे गमणे चंकमणे उव्वत्तणे आउंटणे पसारणे आमासे परिमासे कुइदे कक्कराइदे चलिदे णिसण्णे सयणे उव्वट्टणे परियट्टणे एइंदियाणं वेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियाणं जीवाणं संघट्टणाए संघादणाए उद्दावणाए परिद्दावणाए विराहणाए एत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए विराहणाए उड्ढमुहं चरंतेण वा अहोमुहं चरंतेण वा तिरियमुहं चरंतेण वा दिसिमुहं चरंतेण वा विदिसिमुहं चरंतेण वा पाणचंकमणदाए बीयचंकमणदाए हरियचंकमणदाए उत्तिंग-पणय-दय-मट्टिय-मक्कडय-तंतु-सत्ताण चंकमणदाए पुढविकाइयसंघट्टणाए आउकाइयसंघट्टणाए

१—प्रतिक्रमामि भदन्त ! दैवसिकस्यातिचारस्य अनाचारस्य मनोदुश्चरित्रस्य वचनदुश्चरित्रस्य कायदुश्चरित्रस्य ज्ञानातिचारस्य दर्शनातिचारस्य तपोऽतिचारस्य वीर्यातिचारस्य चारित्रातिचारस्य पंचानां महाव्रतानां पंचानां समितीनां तिसृणां गुप्तीनां षण्णामावश्यकानां षण्णां जीवनिकायानां विराधनायां पालः (पीडा) कृतो वा कारितो वा क्रियमाणो वा समनुमतः तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ॥१॥

२—अतिगमने निर्गमने स्थाने गमने चंक्रमणे उद्वर्तने परिवर्तने आकुञ्चने प्रसारणे आमर्शे परिमर्शे उत्स्वपनायिते (पूतकृते वा) दन्तकटकायिते (अतीवकर्कशशब्दे वा) चलिते निषण्णे शयने सुप्तस्योत्थाय उद्भवने उद्भूस्य उपविश्य शयने एकेन्द्रियाणां...... संघट्टनया संघातनया उत्तापनया परितापनया विराधनायां यत्र मे यः कश्चिद्दैवसिको रात्रिकोऽतिक्रमो व्यतिक्रमोऽतिचारोऽनाचारस्तस्य......।

तेउकाइयसंघट्टणाए वाउकाइयसंघट्टणाए वणप्फदिकाइयसंघट्टणाए तसकाइयसंघट्टणाए उद्दावणाए परिदावणाए विराहणाए इत्थ मे जो कोई इरियावहियाए अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

पडिक्कमामि भंते ! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडियपइट्ठावणियाए पइट्ठावंतेण जे केई पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा संघट्टिदा वा संघादिदा वा उद्दाविदा वा परिदाविदा वा इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

पडिक्कमामि भंते ! अणेसणाए पाणभोयणाए पणयभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए आहाकम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा दयसंसिट्ठयडेण वा रससंसिट्ठयडेण वा परिसादणियाए पइट्ठावणियाए उद्देसियाए निद्देसियाए कीदयडे मिस्से जादे ठविदे रइदे अणसिट्ठे बलिपा-

३—ऐर्यापथकायां विराधनायां ऊर्ध्वमुखं चरता वा अधोमुखं चरता वा तिर्यग्मुखं चरता वा दिशामुखं चरता वा विदिशामुखं चरता वा प्राणचंक्रमणतः बीजचंक्रमणतः हरितचंक्रमणतः उतिंग-पणक-दक-मृद्-मर्कटक-तन्तु-सत्वानां चंक्रमणतः पृथ्वीकायिकसंघट्टनया अप्कायिकसंघट्टनया तेजःकायिकसंघट्टनया वायुकायिकसंघट्टनया वनस्पतिकायिकसंघट्टनया त्रसकायिकसंघट्टनया उत्तापनया परितापनया विराधनायां एतस्यां मे यः कश्चिदैर्यापथिक्याम् ।

४—उच्चारप्रस्रवणक्ष्वेलसिंहानकविकृतिप्रतिस्थापनिकायां प्रतिस्थापयता ये केचित्प्राणा वा भूता वा जीवा वा सत्वा वा संघट्टिता वा संघातिता वा उत्तापिता वा परितापिता वा एतस्मिन् ।

हुडदे पाहुडदे घट्टिदे मुच्छिदे अइमत्तभोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

पडिक्कमामि भंते ! सुमणिंदियाए विराहणाए इत्थिविप्परियासियाए दिट्ठिविप्परियासियाए मणविप्परियासियाए वचिविप्परियासियाए कायविप्परियासियाए भोयणविप्परियासियाए उच्चावयाए सुमणदंसणविप्परियासियाए पुव्वरए पुव्वखेलिए णाणाचिंतासु विसोतियासु इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ६ ॥

पडिक्कमामि भंते ! इत्थीकहाए अत्थकहाए भत्तकहाए रायकहाए चोरकहाए वेरकहाए परपासंडकहाए देसकहाए भासकहाए अकहाए विकहाए णिट्ठुल्लकहाए परपेसुण्णकहाए कंदप्पियाए कुक्कुचियाए डंवरियाए मोक्खरियाए अप्पपसंसणदाए परपरिवादणदाए परदुगंछणदाए परपीडाकराए सावज्जाणुमोयणियाए

५—अनेषणाया पानभोजनेन पणकभोजनेन बीजभोजनेन हरितभोजनेन अधःकर्मणा वा पश्चात्कर्मणा वा पुराकर्मणा वा उद्दिष्टकृतेन निर्दिष्टकृतेन दयासंसृष्टकृतेन रससंसृष्टकृतेन परिस्रातनिकया प्रतिष्ठापनिकया उद्देशिकया निर्देशिकया क्रीतकृते मिश्रे जाते स्थापिते रचिते अनिसृष्टे बलिप्राभृते प्राभृते घट्टिते मूर्छिते अतिमात्रभोजने एतस्यां (अनेषणायां) मे यः कश्चित् गोचरिणः ।

६—स्पर्शनेन्द्रियाया विराधनायां स्त्रीविपरियासिकायां दृष्टिविपरियासिकायां मनोविपरियासिकायां वचोविपरियासिकायां कायविपरियासिकायां भोजनविपरियासिकायां उच्च्यावजायां स्वप्नदर्शनविपरियासिकायां पूर्वरते पूर्वखेलिते नानाचिन्तासु विश्रोत्रिकासु, एतस्यां…… ॥

इत्थ मे जो कोई देवसीओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ७ ॥

पडिक्कमामि भंते ! अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे इहलोयसण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गह-सण्णाए कोहसल्लाए माणसल्लाए मायसल्लाए लोहसल्लाए पेम्मसल्लाए पिवाससल्लाए णियाणसल्लाए मिच्छादंसणसल्लाए कोहकसाए माणकसाए मायकसाए लोहकसाए किण्हलेस्सपरिणामे णीललेस्सपरिणामे काउलेस्सपरिणामे आरंभपरिणामे परिग्गह-परिणामे पडिसयाहिलासपरिणामे मिच्छादंसणपरिणामे असंजम-परिणामे पावजोगपरिणामे कायसुहाहिलासपरिणामे सद्देसु रूवेसु गंधेसु रसेसु फासेसु काइयाहिकरणियाए पदोसियाए परिदावणियाए पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ८ ॥

७—स्त्रीकथायां अर्थकथायां भक्तकथायां राजकथायां चोर-कथायां वैरकथायां परपाषण्डकथायां देशकथायां भाषाकथायां अक-थायां विकथायां निष्ठुरकथायां परपैशून्यकथायां कान्दर्पिक्यां कौत्कु-चिकायां डाम्बरिकायां मौखरिकायां आत्मप्रशंसनतायां परपरिवादनतायां परजुगुप्सनतायां परपीडनकरायां सावद्यानुमोदनिकायां एतस्यां······ ॥

८—आर्तध्याने रौद्रध्याने इहलोकसंज्ञायां परलोकसंज्ञायां आहारसंज्ञायां भयसंज्ञायां मैथुनसंज्ञायां परिग्रहसंज्ञायां क्रोधशल्ये मानशल्ये मायाशल्ये लोभशल्ये प्रेमशल्ये पिपासाशल्ये निदानशल्ये मिथ्यादर्शनशल्ये, क्रोधकषाये मानकषाये मायाकषाये लोभकषाये कृष्णलेश्यापरिणामे नीललेश्यापरिणामे कापोतलेश्यापरिणामे आरंभ-परिणामे परिग्रहपरिणामे प्रतिश्रयाभिलाषपरिणामे मिथ्यादर्शनपरिणामे असंयमपरिणामे कषायपरिणामे पापयोगपरिणामे कायसुखाभिलाष-परिणामे शब्देषु रूपेषु गन्धेषु रसेषु स्पर्शेषु कायिकाधिकरणिकायां प्रदोषिकायां परिद्रावणिक्यां प्राणातिपातिकासु, एतस्मिन्······ ।

पडिक्कमामि भंते एक्के भावे अणाचारे, वेसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्टसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, वारसविहेसु भिक्खुपडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु, सोलसविहेसु पवयणेसु, सत्तारसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु असंपराएसु, उणवीसाए णाहज्झाणेस्सु, वीसाए असमाहिट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीठाणेसु, एक्कत्तीसाए कम्मविवाएसु, वत्तीसाए जिणोवएसेसु, तेत्तीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाण अच्चासणदाए, अजीवाण अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहणमब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ९ ॥

९—एकस्मिन् भावे अनाचारे, द्वयो रागद्वेषयोः, त्रिषु दण्डेषु, तिसृषु गुप्तिषु त्रिषु, गौरवेषु, चतुःषु, कषायेषु, चतसृषु संज्ञासु, पंचसु महाव्रतेषु, पंचसु समितिष, षट्सु जीवनिकायेषु, षट्सु आवश्यकेष

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं अवित्तहं अवि संति पवयणं उत्तमं तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदोत्तरं अण्णंण त्थि ण भूदं (ण भवं) ण भविस्सदि णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तण वा इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति पडिवियाणंति समणोमि संजदोमि उवरदोमि

सप्तसु भयेषु, अष्टसु मदेषु नवसु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु, दशविधेषु श्रमणधर्मेषु, एकादशविधासु उपासकप्रतिमासु, द्वादशविधासु भिक्षुप्रतिमासु, त्रयोदशविधेषु क्रियास्थानेषु, चतुर्दशविधेषु भूतग्रामेषु पंचदशविधेषु प्रमादस्थानेषु षोडशविधेषु प्रवचनेषु, सप्तदशविधेषु असंयमेषु अष्टादशविधेषु असम्परायेषु, एकोनविंशतौ नाथाध्ययनेषु, त्रिंशतौ असमाधिस्थानेषु, विंशेषु सबलेष, द्वाविंशेषु परीसहेषु, त्रयोविंशेषु सूत्रकृताध्ययनेषु, चतुर्विंशेषु अर्हत्सु, पंचविंशतौ भावनासु, पंचविंशेषु क्रियास्थानेषु, षड्विंशतौ पृथिवीषु, सप्तविंशेषु अनगारगुणेषु, अष्टाविंशेषु आचारकल्पेषु एकोनत्रिंशत्सु पापसूत्रप्रसङ्गेषु, त्रिंशत्सु मोहनीयस्थानेषु, एकत्रिंशत्सु कर्मविपाकेषु द्वात्रिंशत्सु जिनोपदेशेषु त्रयस्त्रिंशत्प्रकारायां अत्यासादनतायां, संक्षेपेण जीवानामत्यासादनतायां अजीवानामत्यासदनतायां, ज्ञानस्यात्यासादनतायां दर्शनस्य अत्यासादनतायां चारित्रस्यात्यासादनतायां तपसः अत्यासादनतायां वीर्यस्य अत्यासादनतायां तत्सर्वं पूर्वं दुश्चरित्रं गर्हे, प्रत्युत्पन्नं अतिक्रान्तं प्रतिक्रमामि, अनागतं प्रत्याख्यामि, अगर्हितं गर्हे, अनिन्दितं निन्दामि, अनालोचितं आलोचयामि, अराधनां अभ्युत्तिष्ठामि, विराधनां प्रतिक्रमामि········ ।

उवसंतोमि उवहिणियडिमाणमायमोसमिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १० ॥

पडिक्कमामि भंते ! सव्वस्स सव्वकालियाए इरियासमिदीए भासासमिदीए एसणासमिदीए आदाणनिक्खेवणासमिदीए उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणिसमिदीए मणगुत्तीए वचिगुत्तीए कायगुत्तीए पाणादिवादादो वेरमणाए मुसावादादो वेरमणाए अदिण्णदाणादो वेरमणाए मेहुणादो वेरमणाए, परिग्गहादो वेरमणाए राईभोयणदो वेरमणाए सव्वविराहणाए सव्वधम्मअइक्कमणदाए सव्वमिच्छाचरियाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ११ ॥

१०—इच्छामि भगवन् ! इमं निर्ग्रन्थं प्रवचनं अनुत्तरं केवलियं परिपूर्णं नैकायिकं सामायिकं संशुद्धं शल्यघट्टानां शल्यघातनं सिद्धिमार्गं श्रेणिमार्गं, क्षान्तिमार्गं, मुक्तिमार्गं प्रमुक्तिमार्गं मोक्षमार्गं प्रमोक्षमार्गं निर्याणमार्गं निर्वाणमार्गं सर्वदुःखपरिहानिमार्गं सुचरित्रपरिनिर्वाणमार्गं अविसंवादकं समाश्रयन्ति, प्रवचनं उत्तमं, तच्छ्रद्दधामि, तत्प्रतिपद्ये, तद्रोचे, तत्स्पृशामि, इत उत्तरमन्यन्नास्ति न भूतं [न भवति] न भविष्यति ज्ञानेन वा दर्शनेन वा चारित्रेण वा सूत्रेण वा । इतो जीवा सिद्ध्यन्ति बुद्ध्यन्ते मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति परिविजानन्ति, श्रमणोऽस्मि संयतोऽस्मि उपरतोऽस्मि उपशान्तोऽस्मि उपधिनिकृतिमानमायामृषामिथ्याज्ञानमिथ्यादर्शनमिथ्याचारित्रं च प्रतिविरतोऽस्मि, सम्यग्ज्ञानं सम्यग्दर्शनं सम्यग्चारित्रं च रोचे, यज्जिनवरैः प्रज्ञप्तं अत्र·········।

* इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गो जो मे देवसिओ राईओ अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चिंतीओ दुब्भासिओ दुप्परिणामीओ दुस्समिणीओ, णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं, गुत्तीणं, छण्हं जीवणिकायाणं, छण्हं आवासयाणं विराहणाए अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अण्णहा उस्सासिएण

११—प्रतिक्रमामि भदन्त ! सर्वस्य, सर्वकालिक्याः, ईर्यासमितेः भाषासमितेः एषणासमितेः आदाननिक्षेपणसमितेः उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंहानक-विकृतिप्रतिष्ठापनसमितेः मनोगुप्तेः वचोगुप्तेः कायगुप्तेः प्राणातिपाताद्विरमणायाः मृषावादाद्विरमणायाः अदत्तादानाद्विरमणायाः मैथुनाद्विरमणायाः परिग्रहाद्विरमणायाः रात्रिभोजनाद्विरमणायाः सर्वविराधनायाः सर्वधर्मातिक्रमणतायाः सर्वमिथ्याचरितायाः (विशुद्धेर्निमित्तं) अत्र······ ॥

* इच्छामि भदन्त ! वीरभक्तिकायोत्सर्गं यो मम दैवसिको रात्रिकोऽतिचारोऽनाचार आभोगोऽनाभोगः कायिको वाचिको मानसिकः दुश्चिन्तितः दुर्भाषितः दुष्परिणामितः दुःस्वप्नितः ज्ञाने दर्शने चारित्रे सूत्रे सामायिके पंचानां महाव्रतानां पंचानां समितीनां तिसृणां गुप्तीनां षण्णां जीवनिकायानां षण्णां आवश्यकाणां विराधनायां अष्टविधस्य कर्मणः निर्घातनस्य अन्यथा उच्छ्वासितेन वा निःश्वासितेन वा उन्मिषितेन वा निर्मिषितेन वा खात्कृतेन वा छीत्कृतेन वा जम्भायितेन वा सूक्ष्मैः अङ्गचलाचलैः दृष्टिचलाचलैः एतैः सर्वैः असमाधिप्राप्तैः आचारैः, यावदर्हतां भगवतां पर्युपासनं (दैवसिकप्रतिक्रमणायामष्टोत्तरशतोच्छ्वासैः षट्त्रिंशद्वारान् पंचनमस्कारोच्चारणं रात्रिप्रतिक्रमणायां तु चतुः पंचाशदुच्छ्वासैःअष्टादशवारान् पंचनमस्कारोच्चारणं पर्युपासनं) करोमि तावत्कायं पापकर्म दुश्चरितं व्युत्सृजामि ।

वा णिस्सासिएण वा उम्मिसिएण वा णिम्मिसिएण वा खासिएण वा छिंकिएण वा जंभाइएण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं असमाहिपत्तेहिं आयारेहिं जाव अरहंताणं भयवताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अथ सर्वातिचारविशुद्धयर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेणसकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इति प्रतिज्ञाप्य)

दिवसे १०८ रात्रौ च ५४ उच्छ्वासेषु णमो अरहंताणं इत्यादि (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् पश्चात्) थोस्सामीत्यादि (चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्)

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ।

वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ॥२॥

ये वीरमादौ प्रणमन्ति नित्यं
ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके
संसारदुर्गं विषमं तरंति ॥ ३॥

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः ॥४॥

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोघः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥५॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ॥६॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥७॥

धम्मो मंगलमुद्दिट्टं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु जम-णियम-संजम-सील-

मूलुत्तरगुणेसु सव्वमईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्ज-लोगअज्झवसाठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिंदियकसायगारवकि-रियासु मणवयणकायकरणदुप्पणिहाणाणि परिचिंतियाणि किण्ह-णीलकाउलेस्साओ विकहापलिकुंचिएण उम्मगहस्सरदिअरदिसोय-भयदुगंछवेयणविज्जंभजंभाइआणि अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि अणिहुदकरचरणमणवयणकायकरणेण अक्खित्त-बहुलपरायणेण अपडिपुण्णेण वासरक्खरावयपरिसंघायपडिवत्तिए वा अच्छाकारिदं मिच्छा मेलिदं आमेलिदं वा मेलिदं वा अण्ण-हादिण्णं अण्णहापडिच्छिदं आवासएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलुमूल गुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां कृत-दोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंद-नास्तवसमेतं चतुर्विंशतितीर्थकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इति प्रातज्ञाप्य) ।

णमो अरहंताणं इत्यादि (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गंकुर्यात्)
थोस्समीत्यादि (चतुर्विंशतिस्तवं पठेत)

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वे सगणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ १ ॥

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोधिकाः ।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवं ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षांतं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥ ३ ॥

विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥४॥

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ॥ ५ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं वत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहिदाणं वलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि-पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां श्रीसिद्धभक्ति-प्रतिक्रमणभक्ति-निष्ठितकरणवीरभक्ति -चतुर्विंशति-तीर्थकरभक्तीः कृत्वा तद्धीनादिकदोषविशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्

(इति विज्ञाप्य)

णमो अरहंताणं इत्यादि । (दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्)।
थोस्सामीत्यादि (स्तवं पठेत्)

अथेष्टप्रार्थनेत्यादि (पूर्वोक्तां समाधिभक्तिं पठेत्)।

इति दैवसिकप्रतिक्रमणं रात्रिप्रतिक्रमणं वा समाप्तम् ।

---

१ अस्मादग्रे पुस्तकान्तपाठो यथा—॥*॥ राम ॥*॥ सं०१७२४ वर्षे चैत्र वदि ११ तिथौ गुरूवासरे सीलोरग्रामे बघेरवालज्ञाति गोत्र वागरिया साह भोजा तस्य भार्या बाई धानो तस्य पुत्र साह वेना तस्य भार्या गोमा तस्य पुत्र टोडर स चान्यै पण्डितबिहारीदासाय दत्तं ज्ञानावरणाकर्मक्षयार्थं । ग्रन्थाग्र श्लोक संख्या............लख्यतं जोसी पुष्कर तथा रघूनाथ, मंगलं लेखकपाठकयोः ।

२—पाक्षिकादि-प्रतिक्रमणम् ।

(शिष्यसधर्माणः पाक्षिकादिप्रतिक्रमे लघ्वीभिः[1] सिद्धश्रुताचार्य-भक्तिभिराचार्यं[2] वन्देरन् ।)

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनसिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

(जाप्य ९)

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापनश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

(जाप्य ९)

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥१॥
अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥२॥

१—लघ्व्या सिद्धगणिस्तुत्या गणी वन्द्यो गवासनात् ।
सैद्धान्तोऽन्तः श्रुतस्तुत्या तथान्यस्तन्नुतिं विना ॥३१॥
२—पाक्षिक्यादिप्रतिक्रान्तौ वन्देरन् विधिवद्गुरुम् ।
अनगारधर्मामृत अ० ९ ।

एष लघुभक्तित्रयपाठः पुस्तके नास्ति सूचनानुसारेण योजितः ।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिनिष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

(जाप्य ९)

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥१॥
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥ २ ॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥ ३ ॥
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः ॥ ४ ॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ५ ॥

(ततः इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं "समता सर्वभूतेषु" इत्यादि पठित्वा गणी[1] शिष्यसधर्मगणयुक्तः "सिद्धानुद्धूतकर्म" इत्यादिकां गुर्वी सिद्धभक्तिं सांचलिकां, "येनेद्रान्" इत्यादिकां च चारित्रभक्तिं बृहदालोचनासहितां, अर्हद्भट्टारकस्याग्रे कुर्यात् । सैषा सूरेः शिष्यसधर्मणां च साधारणी क्रिया ।)

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

१—सिद्धवृत्तस्तुती कुर्याद्गुर्वी चालोचनां गणी ।
देवस्याग्रे..................................॥

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम्॥२॥

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

(णमो अरहंताणं इत्यादिदंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामि इत्यादिकं विधाय सिद्धानुद्धूतकर्म इत्यादिसिद्धभक्तिं सांचलिकां पठेत्।)

सिद्धिभक्तिः—

सिद्धानुध्दूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान्-
वन्दे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारा-
द्योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः॥१॥
नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक्तत्क्षयान्मोक्षभागी।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत्त इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः॥२
स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या-
संपद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः।
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः॥३॥

२—चातुरमासिकप्रतिक्रमणायां सांवत्सरिकप्रतिक्रमणायां चेति तत्तत्प्रतिक्रमणायां पठेत्।

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं सम्प्रतृप्यन्वितन्वन्
धुन्वन्ध्वान्तं नितांतं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम् ।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा-
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः ॥ ४ ॥

छिंदन् शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनंतस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः ।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वव्रज्यस्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेग्र्ये ॥ ५ ॥

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः ।
क्षुत्तृष्णाश्वासकामज्वरमरणजरानिष्टयोगप्रमोह-
व्यापत्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोस्य सौख्यस्य माता ॥ ६ ॥

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं
वृद्धिह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम् ।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं शाश्वतं सर्वकाल—
मुत्कृष्टानन्तसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥ ७ ॥

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या—
नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात् ।
आतङ्कार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥ ८ ॥

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि-
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः ।

भूता भव्या भवंतः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टै—
स्तान्सर्वान्नौम्य- तान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥ ९ ॥

(अञ्चलिका—)

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणका-लत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि, वंदामि, पूजेमि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगईगमणं समाहि-मरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं आलोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकमधीत्य "येनेन्द्रान्" इत्यादि चारित्रभक्तिं सालोचनां पठेत्—)

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारांगदान्
भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुंगोत्तमाङ्गान्नतान्।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा
वन्दे पंचतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ॥ १ ॥

अर्थव्यंजनतद्द्वयाविकलताकालोपधाप्रश्रयाः
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ॥ २ ॥

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् ।
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनम्
वन्दे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥ ३ ॥

एकांते शयनोपवेशनकृतिः सन्तापनं तानवम्
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम् ।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥ ४ ॥

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनं
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ ।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः षड्विधं
वन्देऽभ्यंतरमंतरंगबलवद्विद्वेषिविध्वंसनम् ॥ ५ ॥

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः श्रद्धानमर्हन्मते
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं वन्दे सतामर्चितम् ॥ ६ ॥

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम् ॥ ७ ॥

आचारं सहपंचभेदमुदितं तीर्थं परं मंगलं
निर्ग्रंथानपि सच्चरित्रमहतो वंदे समग्रान्यतीन् ।
आत्माधीनसुखोदयामनुपमां लक्ष्मीमविध्वंसिनी-
मिच्छन्केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्ज्वलाम् ॥ ८ ॥

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति ।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे स्वं निंदतो निंदितम् ॥ ९ ॥
संसारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिनः
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः ।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तरा—
मारोहन्तु चरित्रमुत्तममिदं जैनेन्द्रमोजस्विनः ॥ १० ॥

आलोचना—

इच्छामि[1] भंते ! अट्ठमियम्मि आलोचेउं, अट्ठण्हं दिवसाणं अट्ठण्हं राईणं अब्भंतरादो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरसण्हं राईणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! चाउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराईणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

१—श्रीगौतमस्वामी मुनीनां दुःषमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य पंचाचारगोचरस्यातीचारस्य दिनगणनया विशुद्ध्यर्थमालोचनालक्षणमुपायमुपदर्शयन्नाह—प्रभाचन्द्रपंडिताः ।

इच्छामि भंते संवच्छरियम्मि आलोचेउं, वारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं, तिण्हं छावट्ठिसय-राईणं अब्भंतराओ पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

तत्थ णाणायारो, काले, विणए, उवहाणे, वहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो[1], से[2] अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, पदहीणं वा, विंजणहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु[3] वा, थुईसु[4] वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले सज्झाओ कओ वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, काले वा परिहाविदो[5], अच्छाकारिदं[6], मिच्छा मेलिदं,[7] आमेलिदं,[8] वामेलिदं,[9] अण्णहादिण्णं,[10] अण्णहा पडिच्छिदं,[11] आवासएसु परिहीणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

दंसणायारो अट्ठविहो, णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य, उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा चेदि । अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णादिट्ठी-पसंसणदाए परपाखण्डपसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छल्ल-दाए अप्पहावणदाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

१—परिहापितः—अविकलतयाननुष्ठितः । २—तत् । ३—स्तवेषु-अनेकतीर्थंकरदेवगुणव्यावर्णनलक्षणेषु । ४— स्तुतिषु-एकतीर्थ-करदेवगुणव्यावर्णनलक्षणासु । ५—नानुष्ठितः । ६— सहसाकृतं । ७—मिश्रितं । ८—अन्यावयवमवयवेन संयोज्य पठनं । ९—विपर्यासितं । १०—अन्यथा कथितं । ११—अन्यथा प्रतिगृहीतं श्रुतमित्यर्थः ।

तवायारो वारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरिच्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं बाहिरं वारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण,[1] पडिक्कंतं,[2] तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहुत्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण णिगूहियं तवोकम्मं ण कमं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वयाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढममहव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं। से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता, हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तस्स उदावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खिकिमि[3]-शंख-खुल्लय[4]-वराडय-अक्ख[5]-रिट्ठ[6]-गंडवाल-संबुक्क[7]-सिप्पि-पुलविकाइया[8]

१—निषण्णेन—परीषहादिभिः पीडितेन। २—प्रतिक्रान्तं (किन्तु) परित्यक्तं। ३—कुक्षौ कृमयः कुक्षिकृमयः संविपाकाः, उपलक्षणं चैतद्व्रणादिकृमीणाम्। ४—क्षुल्लकः। ५—महान्तःकपर्दकाः। ६—बालकाः शरीरे समुद्भवास्तन्तुसमाना जीवविशेषाः। ७—लघुशंखाः। ८—जलूकाः।

तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद[1]-गोजूव[2]-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमंसय-मक्खिय-पयंग-कीड-भमर-महुयरि-गोमक्खियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया पोदाइया[3] जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

आहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा राएण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केणवि कारणेण जादेण वा सव्वो मुसावादो भासिओ भासाविओ भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

१— गोभिकाः। २—इन्द्रगोपकाः। ३—पोतो मार्जारादिगर्भविशेषस्तत्र कर्मवशादुत्पत्त्यर्थमायः स येषामस्ति ते पोतायिकाः।

आहावरे तव्वे महव्वदे अदिण्णदाणादो वेरमणं, से गामे वा णयरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंवे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसमे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं वा कट्ठं वा वियडिं वा मणि वा एवमाइयं अदत्तं गिण्हियं गेण्हावियं गेण्हिज्जंतं समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

आहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, से देविएसु वा माणुसिएसु वा तेरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा मणुणामणुणेसु रूवेसु मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणामणुणेसु गंधेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु चक्खिदियपरिणामे सोदिंदियपरिणामे घाणिंदियपरिणामे जिब्भिंदियपरिणामे फासिंदियपरिणामे णोइंदियपरिणामे अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण णवविहं बंभचरियं ण रक्खियं ण रक्खावियं ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

आहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, सो वि परग्गहो दुविहो, अब्भंतरो बाहिरो चेदि तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं दंसणावरणीयं वेयणीयं मोहणीयं आउग्गं णामं गोदं अंतरायं चेदि अट्ठविहो, तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरण-भंड-फलह-पीढ-कमंडलु-संथार-सेज्ज उवसेज्ज- भत्त-पाणादिभेएण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं बद्धावियं बद्धज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

आहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं, से असणं पाणं खाइयं रसाइयं चेदि चउव्विहो आहारो, से तित्तो वा कडुओ वा कसाइलो वा अमिलो वा महुरो वा लवणो वा दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ दुस्सिमिणिओ रत्तीए भुत्तो भुंजवियो भुज्जिजंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ६ ॥

पंचसमिदीओ ईरियासमिदी भासासमिदी एसणासमिदी आदावणणिक्खेवणसमिदी उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणयवियडिपइट्ठावणासमिदी चेदि । तत्थ ईरियासमिदी पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमचउदिसिविदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा दट्ठव्वा डवडवचरियाए पमाददोसेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ६ ॥

तत्थ भासासमिदी कक्कसा कडुया परुसा णिट्ठुरा परकोहिणी मज्झंकिसा अइमाणिणी अणयंकरा छेयंकरा भूयाण वहंकरा चेदि दसविहा भासा भासिया भासाविया भासिज्जंतो पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ७ ॥

तत्थ एसणासमिदी आहाकम्मेण वा पच्छाकम्मेण वा पुराकम्मेण वा उद्दिट्ठयडेण वा णिद्दिट्ठयडेण वा कीडयडेण वा साइया रसाइया सइंगाला सधूमिया अइगिद्धीए अग्गिव छण्हं जीवणिकायाणं विराहणं काऊण अपरिसुद्धं भिक्खं अण्णं पाणं आहारादियं आहारियं आहाराविियं आहारिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ८ ॥

तत्थ आदावणणिक्खवणसमिदी चक्कलं वा फलहं वा पोथयं वा कमंडलं वा वियडिं वा मणिं वा एवमाइयं उवयरणं अप्पडिलेहिऊण गेण्हंतेण वा ठवंतेण वा पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ९ ॥

तत्थ उच्चार--पस्सवण--खेल--सिंहाणय--वियडिपइट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा वियाले वा अचक्खुविसए अवत्थंडिले अब्भोवयासे सणिद्धे सवीए सहरिए एवमाइएसु अप्पासुगट्ठाणेसु पइट्ठावंतेण पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १० ॥

तिण्णि गुत्तीओ, मणगुत्तीओ वचिगुत्तीओ कायगुत्तीओ चेदि, तत्थ मणगुत्ती अट्टे झाणे रुद्दे झाणे इहलोयसण्णाए परलोयसण्णाए आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए एवमाइयासु जा मणगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ११ ॥

तत्थ वचिगुत्ती इत्थिकहाए अत्थकहाए भत्तकहाए रायकहाए चोरकहाए वेरकहाए परपासंडकहाए एवमाइयासु जा वचिगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खाविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १२ ॥

तत्थ कायगुत्ती चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा कट्ठकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा एवमाइयासु जा कायगुत्ती ण रक्खिया ण रक्खविया ण रक्खिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१३॥

णवसु बंभचेरगुत्तीसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, दोसु अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामेसु, तीसु अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु सुद्धीसु, (णवसु बंभचेरगुत्तीसु) दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-

सीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अट्ठमियम्मि पक्खियम्मि चउमासियम्मि संवच्छरियम्मि अइक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो जो तं पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं, तस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ती होउ मज्झं ।

(केवलमाचार्यो "णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादि भणित्वा "तवसिद्धे" इत्यादिगाथां साञ्चलिकां पठित्वा, पुनः प्रागुक्तविधिं कृत्वा "प्रावृट्काले सविद्युत्" इत्यादिकां योगिभक्तिं सांचलिकां पठित्वा "इच्छामि भंते ! चरित्ताचारो तेरसविहो" इत्यादि दण्डकपंचकमधीत्य तथा "वदसमिदिंदिय" इत्यादिकं "छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं" इत्यन्तं त्रिःपठित्वा स्वदोषान् देवस्याग्रे आलोचयेत् । दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं च गृहीत्वा "पंचमहाव्रत" इत्यादि पाठं त्रिर्भणित्वा योग्यशिष्यादेः प्रायश्चित्तं निवेद्य देवाय गुरुभक्तिं दद्यात् । ततः पुनः आचार्ययुक्ताः शिष्यसधर्माणः सूरेरग्रे इममेव पाठं पठित्वा प्रतिक्रान्तिस्तुतिं कुर्युः । तद्यथा—)

नमोऽस्तु[१] सर्वातीचारविशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

("णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामीत्यादि भणित्वा—)

---

१ ·····················परं सूरेः सिद्धयोगिस्तुती लघू ।
सवृत्तालोचनं कृत्वा प्रायश्चित्तमुपेत्य च ॥
वन्दित्वाचार्यमाचार्यभक्त्या लघ्व्या ससूरयः ।
प्रतिक्रान्तिस्तुतिं कुर्युः····················· ॥

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थमालोचनायोगिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

("णमो अरहंताणं" इत्यादि पंचपदान्युच्चार्य कायोत्सर्गं कृत्वा थोस्सामीति पठित्वा—)

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासाः
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः ।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्था—
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः ॥१॥
गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु ।
सिसिरे वाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥२॥
गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ॥३॥

इच्छामि भंते ! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोणवीरासणेक्कपासकुक्कुडासणचउछपक्खखवणादि-जोगजुत्ताणं सव्वसाहूणं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

(आलोचना—)

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि पंचसमिदीओ तीगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवीकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिम्मि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ--गंडवाल-संबुक्क--सिप्पि--पुलविकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २ ॥

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलिया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसयमक्खिय-पयंगकीडभमरमहुयरगोमक्खिया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्तशोधनरसपरित्यागः क्रियते ।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यकक्रियाद-योऽष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतप-स्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशील-सहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलसम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥ ३ ॥

नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गंकरोम्यहम्—

(६ जाप्य)

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥ १ ॥

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥ २ ॥

गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥ ३ ॥

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥ ४ ॥

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ५ ॥

इच्छामि भंते पक्खियम्मि आलोचेउं, पंचमहव्वयाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णदाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राईभोयणादो वेरमणं, तिसु गुत्तीसु णाणेसु दंसणेसु चरित्तेसु वावीसाए परीसहेसु पणवीसाए भावणासु पणवीसाए किरियासु अट्टारससीलसहस्सेसु चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु वारसण्हं संजमाणं वारसण्हं तवाणं वारसण्हं अंगाणं तेरसण्हं चरित्ताणं चउदसण्हं पुव्वाणं एयारण्हं पडिमाणं दसविहमुंडाणं दसविहसमणधम्माणं दसविहधम्मज्झाणाणं णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं णवण्हं णोकसायाणं सोलसण्हं कसायाणं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठण्हं पवयणमाउयाणं

सत्तण्हं भयाणं सत्तविहसंसाराणं छण्हं जीवणिकायाणं छण्हं आवासयाणं पंचण्हं इंदियाणं पंचण्हं महव्वयाणं पचण्हं समिदीणं पंचण्हं चरित्ताणं चउण्हं सण्णाणं चउण्हं पच्चयाणं चउण्हं उवसग्गाणं मूलगुणाणं उत्तरगुणाणं अट्ठण्हं सुद्धीणं दिट्ठियाए पुट्ठियाए पदोसियाए परिदावणियाए से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा एदेसिं अच्चासणदाए तिण्हं दंडाणं तिण्हं लेस्साणं तिण्हं गारवाणं तिण्हं अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामाणं दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं मिच्छणाण-मिच्छदंसण-मिच्छचरित्ताणं मिच्छत्तपाउग्गं असंजमपाउग्गं कसायपाउग्गं जोगपाउग्गं अप्पपाउग्गसेवणदाए पाउग्गगरहणदाए इत्थ मे जो कोई वि पक्खियम्मि चउमासीयम्मि संवच्छरियम्मि अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि पडिक्कमंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडियमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥२॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितिपञ्चेन्द्रियरोधलोचषडावश्यकक्रियादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्या-

गाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलसम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥ ३ ॥

प्रतिक्रमण-भक्तिः—

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्;—

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं समूरयः साधवः विदध्युः)

णमो अरहन्ताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसगाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं ।

करेमि भंते ! सामायियं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं ण समणुमणामि, तस्स भंते ! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

(सप्तविंशत्युच्छ्वासेषु ९ जाप्यं)

(यथोक्तपरिकर्मानन्तरं आचार्यः "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकं गणधरवलयं च पठित्वा प्रतिक्रमणदंडकान पठेत् । शिष्यसधर्माणस्तु तावत्कालं कायात्सर्गेण तिष्ठन्तः प्रतिक्रमणदंडकान् शृणुयुः)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे ।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥ १ ॥
लोयसुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चोवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयलसेयं च वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा ।
चोवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपयासंता ।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ८ ॥

गणधरवलयः—

जिनान् जितारातिगणान् गरिष्ठान् देशावधीन् सर्वपरावधींश्च।
सत्कोष्ठबीजादिपदानुसारीन् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥१॥
संभिन्नश्रोत्रान्वितसन्मुनीन्द्रान् प्रत्येकसम्बोधितबुद्धधर्मान्।
स्वयंप्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥२॥
द्विधामनःपर्ययचित्प्रयुक्तान् द्विपंचसप्तद्वयपूर्वसक्तान्।
अष्टाङ्गनैमित्तिकशास्त्रदक्षान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥३॥
विकुर्वणाख्यर्द्धिमहाप्रभावान् विद्याधरांश्चारणर्द्धिप्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रितान्नित्यखगामिनश्च स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥४॥
आशीर्विषान् दृष्टिविषान्मुनीन्द्रानुग्रातिदीप्तोत्तमतप्ततप्तान्।
महातिघोरप्रतपःप्रसक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥५॥
वन्द्यान् सुरैर्घोरगुणांश्च लोके पूज्यान् बुधैर्घोरपराक्रमांश्च।
घोरादिसंसद्गुणब्रह्मयुक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥६॥
आमर्द्धिखेलर्द्धिप्रजल्लविट्प्र—सर्वर्द्धिप्राप्तांश्च व्यथादिहंतृन्।
मनोवचःकायबलोपयुक्तान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥७॥
सत्क्षीरसर्पिर्मधुरामृतर्द्धीन् यतीन् वराक्षीणमहानसांश्च।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्प्रपूज्यान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥८॥
सिद्धायलयान् श्रीमहतोऽतिवीरान् श्रीवर्द्धमानर्द्धिविबुद्धिदक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरानृपीन्द्रान् स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥९॥

नृसुरखचरसेव्या विश्वश्रेष्ठर्द्धिभूषा
विविधगुणसमुद्रा मारमातङ्गसिंहाः।
भवजलनिधिपोता वन्दिता मे दिशन्तु
मुनिगणसकलान् श्रीसिद्धिदाः सदृषीन्द्रान्[1] ॥१०॥

१—संसूचितो गणधरवलयपाठः प्रतिक्रमणपुस्तके नोपलब्धोऽतः सकलकीर्तिकृतगणधरवलयपूजातो निष्कास्य संयोजितः।

प्रतिक्रमणदण्डकः—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

णमो[1] जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्गतवाणं, णमो दित्ततवाणं, णमो तत्ततवाणं, णमो महातवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोरपरक्कमाणं, णमो घोरगुणबंभयारीणं णमो, आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहिपत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पिसवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीणमहाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो

१—दोषा दैवसिकप्रतिक्रमणतो नश्यन्ति ये नो नृणां
तन्नाशार्थमिमां ब्रवीति गणभृच्छ्रीगौतमो निर्मलां।
सूक्ष्मस्थूलसमस्तदोषहननीं सर्वात्मशुद्धिप्रदां
यस्मान्नास्ति प्रतिक्रमणतस्तन्नाशहेतुः परः ॥ १ ॥

श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणाभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषाणां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह—णमो जिणाणमित्यादि।

सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदिमहावीरवड्ढमाणबुद्धरिसीणो चेदि ।

जस्संतियं धम्मपहं णियच्छे तस्संतियं वेणइयं पउंजे ।
काएण वाचा मणसावि णिच्चं सक्कारए तं सिरपंचमेण ॥१॥

सुदं मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण भयवदो महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हुणा सव्वलोगदरिसिणा सदेवासुरमाणुसस्स लोयस्स आगदिगदिचवणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं मणोमाणसियं भूतं कयं पडिसेवियं आदिकम्मं अरुहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण समणाणं पंचमहव्वदाणि राईभोयणवेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउगपदाणि सउत्तरपदाणि सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि । तं जहा—

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, छट्टे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं चेदि ।

तत्थ पढमे महव्वदे सव्वं भंते ! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से एइंदिया वा, वेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढविकाइए वा आउकाइए वा तेउकाइए वा वाउकाइए वा वणप्फदिकाइए वा तसकाइए वा अंडाइए वा पोदाइए वा जराइए वा रसाइए वा संसेदिमे वा सम्मुच्छिमे वा उब्भेदिमे वा उववादिमे वा तसे वा थावरे वा बादरे वा सुहुमे वा पाणे वा भूदे वा जीवे वा सत्ते वा पज्जत्ते वा अपज्जत्ते वा अवि चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज अण्णेहिं पाणे

अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणेज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं पाणे अदिवादिदे अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पावयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमावलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवबंभचेरगुत्तस्स नियतिलक्खणस्स परिचायफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा अण्णाणेण वा अदंसणेण वा अविरिएण वा असंयमेण वा असमणेण वा अणहिगमणेण वा अभिमंसिदाएण वा अवोहिदाएण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पेम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केण वि कारणेण जादेण वा आलसदाए कम्मभारिगदाए कम्मगुरुगदाए कम्मदुच्चरिदाए कम्मपुरुक्कडदाए तिगारवगुरुगदाए अवहुसुददाए अविदिदपरमट्ठदाए तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरिहामि आगमेसिंच, अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोच्चियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि अभयदाणं अब्भुट्ठेमि,

मोसं वोस्सरामि सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदत्तादाणं वोस्सरामि दिण्णं-कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राईभोयणं वोस्सरामि दिवाभोयणमेगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्टरुद्दज्झाणं वोस्सरामि धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्हणीलकाउलेस्सं वोस्सरामि तेउपम्मसुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदिसयणं वोस्सरामि खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदिभोयणं वोस्सरामि ठिदिभोयणमेगभत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि दुवालसविहतवोकम्मं अब्भुट्ठेमि, मिच्छत्तं परिवज्जामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं भावेमि भावियं ण भावेमि, इमं णिग्गंथं पव्वयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं

सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं ण भविस्सदि, णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरिएण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधि-णियडि-माण-माया-मोस-मूरण-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चाउम्मासिय-संवच्छरिय-इरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि। पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिन्ने अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु॥ १॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥ १॥

———

आहावरे त्रिदिए महव्वदे सव्वं भंते ! मुसावादं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से कोहेण वा माणेण वा माएण वा लोहेण वा रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा हस्सेण वा भएण वा पदोसेण वा पमादेण वा पिम्मेण वा पिवासेण वा लज्जेण वा गारवेण वा अणादरेण वा केणवि कारणेण जादेण वा णेव सयं मोसं भासेज्ज ण अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज अण्णेहि मोसं भासिज्जंतं पि ण समणुमणिज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं मोसं भासियं अण्णेहिं मोसं भासावियं अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं पि समणुमण्णिदं इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवसुबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसगस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स..........*
सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय-इरियावहिकेसलोचाइचारस्स पंथादिचारस्स सव्वातिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं उवट्ठाणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महा-

* 'से कोहेण वा' इत्यारभ्य 'उवधिणियडिमाणमायामोसमूरणमिच्छाणाणमिच्छादंसणमिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि' इत्यन्तः पाठोऽपि पठनीयोऽत्रेति ।

जसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्मि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु।

द्वितीयं महव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥२॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥२॥

आधावरे तदिये महव्वदे सव्वं भंते ! अदत्तादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से देसे वा गामे वा णगरे वा खेडे वा कव्वडे वा मडंवे वा मंडले वा पट्टणे वा दोणमुहे वा घोसे वा आसणे वा सहाए वा संवाहे वा सण्णिवेसे वा तिणं वा कट्ठं वा वियडिं वा मणिं वा खेत्ते वा खले वा जले वा थले वा पहे वा उप्पहे वा रण्णे वा अरण्णे वा णट्ठं वा पमुट्ठं वा पडिदं वा अपडिदं वा सुणिहिदं वा दुण्णिहिदं वा अप्पं वा बहुं वा अणुयं वा थूलं वा सचित्तं वा अचित्तं वा मज्झत्थं वा बहित्थं वा अवि दंतंतरसोहणमित्तं पि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्ज अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि ण समणुमणिज्ज, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि पुव्विंचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं अदत्तं गेण्हिदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं पि समणुमण्णिदो तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमा-

बलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसय-सहस्सविहूसियस्स णवसुबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्ग-पयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स ....

सम्मणाण--सम्मदंसण--सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय--राईय--पक्खिय--चउमासिय--संवच्छ-रियइरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथागादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वाइचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं रोचेमि । तदिए महव्वदे अदत्तादाणादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहु-सक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ॥३॥

तृतीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

आधावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते ! अबंभं पच्चक्खामि जाव-ज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से देविएसु वा माणुसिएसु वा तिरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लयकम्मेसु वा सिलाकम्मेसु वा गिह-कम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा भेदकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा धादुकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा हत्थसंघट्टणदाए पादसंघट्टणदाए पुग्गल-संघट्टणदाए मणुणामणुणेसु सद्देसु मणुणामणुणेसु रूवेसु मणुणा-

मणुणेसु गंधेसु मणुणामणुणेसु रसेसु मणुणामणुणेसु फासेसु सोदिंदियपरिणामे चक्खिंदियपरिणामे घाणिंदियपरिणामे जिब्भिंदियपरिणामे फासिंदियपरिणामे णोइंदियपरिणामे अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण णेव सयं अबंभं सेविज्ज णो अण्णेहिं अबंभं सेवाविज्ज णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि समणुमणिज्ज. तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचणं भंते ! जंपि मए रागस्स वा दोसस्स वा वसंगदेण सयं अबंभं सेवियं अण्णेहिं अबंभं सेवावियं अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं पि समणुमण्णिदं तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवसुबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स .... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसिय-राइय—पक्खिय—चउमासिय—संवच्छरिय—इरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वादिचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि । चउत्थे महव्वदे अबंभादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्पसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ॥ ३ ॥

चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

आधावरे पंचमे महव्वदे सव्वं भंते ! दुविहं परिग्गहं पच्चक्खामि तिविहेण मणसा वचिया काएण । सो परिग्गहो दुविहो अब्भिंतरो बाहिरो चेदि । तत्थ अब्भिंतरं परिग्गहं—"मिच्छत्तवेयराया तहेव हस्सादिया य छद्दोसा । चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा ॥ १ ॥" तत्थ बाहिरं परिग्गहं, से हिरण्णं वा सुवण्णं वा धणं वा खेत्तं वा खलं वा वत्थुं वा पवत्थुं वा कोसं वा कुठारं वा पुरं वा अंतउरं वा बलं वा वाहणं वा सयडं वा जाणं वा जपाणं वा जुगं वा गद्दियं वा रहं वा सदणं वा सिवियं वा दासीदासगोमहिसिगवेडयं मणिमोत्तियसंखसिप्पिपवालयं मणिभाजणं वा सुवण्णभाजणं वा रजतभाजणं वा कंसभाजणं वा लोहभाजणं वा तंवभाजणं वा अंडजं वा वोंडजं वा रोमजं वा वक्कजं वा वम्मजं वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा सचित्तं वा अचित्तं वा अमुत्थं वा बहित्थं वा अवि वालग्गकोडिमित्तंपि णेव सयं असमणपाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्ज णो अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिग्गहं गेण्हाविज्ज णो अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जंतं पि समणुमणिज्ज तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोस्सरामि पुव्विचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण सयं असमणपाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जं, अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिग्गहं गेण्हावियं, अण्णेहिं असमणपाउग्गं परिग्गहं गेण्हिज्जंतं पि समणुमणिदं, तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमावलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स

चउरासीगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवसुबंभचेरगुत्तस्स णियदिल-क्खणस्स परिचागफलास उवसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्ति-मग्गपयासयस्स सिद्धिमग्गपज्जवसाहणस्स ....

सम्मणाण--सम्मदंसण--सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्ते इत्थ जो मए देवसिय-राइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय-इरियावहिकेसलोचाइचारस्स संथाराइचारस्स पंथाइचारस्स सव्वा-इचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं रोचेमि। पंचमे महव्वदे परिग्ग-हादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महा-पुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं अप्प-सक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे महव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु, णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ॥ ३ ॥

पंचमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥ ३ ॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

आधावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते! राईभोयणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण, से असणं वा पाणं वा खादियं वा सादियं वा कडुयं वा कसायं वा आमिलं वा महुरं वा लवणं वा अलवणं वा सचित्तं वा अचित्तं वा तं सव्वं चउव्विहं आहारं णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविज्ज णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, वोसिरामि पुव्विचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा वसंगदेण चउव्विहो आहारो

सयं रत्तिं भुत्तो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविदो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतो त्ति समणुमण्णिदो, तं पि इमस्स णिग्गंथस्स पवयणस्स अणुत्तरस्स केवलियस्स केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसालक्खणस्स सच्चाहिट्ठियस्स विणयमूलस्स खमाबलस्स अट्ठारससीलसहस्सपरिमंडियस्स चउरासीदिगुणसयसहस्सविहूसियस्स णवसुबंभचेरगुत्तस्स णियदिलक्खणस्स परिचागफलस्स उपसमपहाणस्स खंतिमग्गदेसयस्स मुत्तिमग्गपयासयस्स सिद्धमग्गपज्जवसाहणस्स ... 'सम्मणाण—सम्मदंसण—सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ जो मए देवसियराइय-पक्खिय-चउमासिय-संवच्छरिय-इरियावहि केसलोचाइयारस्स संथारादिचारस्स पंथादिचारस्स सव्वाइचारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि, छट्ठे अणुव्वदे राईभोयणादो वेरमणं उवट्ठावणमंडले महत्थे महागुणे महाणुभावे महाजसे महापुरिसाणुचिण्णे अरहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं परसक्खियं देवतासक्खियं उत्तमट्ठम्हि इदं मे अणुव्वदं सुव्वदं दिढव्वदं होदु णित्थारयं पारयं तारयं आराहियं चावि ते मे भवतु ॥३॥

षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

चूलियंतु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी ।
पंच पंच अणुणादा एक्केक्कम्हि महव्वदे ॥१॥

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया—कायसंयदो ।
एसणासमिदिसंजुत्तो पढमं वदमस्सिदो ॥२॥

अक्कोहणो अलोहो य भयहस्सविवज्जिदो ।
अणुवीचिभासकुसलो विदियं वदमस्सिदो ॥३॥
अदेहणं भावणं चावि उग्गहं य परिग्गहे ।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु तिदियं वदमस्सिदो ॥४॥
इत्थिकहा इत्थिसंसग्गहासखेडपलोयणे ।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य चउत्थं वदमस्सिदो ॥३॥

सचित्ताचित्तदव्वेसु बज्झंब्भंतरेसु य ।
परिग्गहादो विरदो पंचमं वदमस्सिदो ॥६॥
धिदिमंतो खमाजुत्तो झाणजोगपरिट्ठिदो ।
परीसहाणउरं देंत्तो उत्तमं वदमस्सिदो ॥७॥
जो सारो सव्वसारेसु सो सारो एस गोयम ।।
सारं झाणंति णामेण सव्वं बुद्धेहिं देसिदं ॥८॥

इच्चेदाणि पंचमहव्वयाणि राईभोयणादो वेरमणछट्ठाणि सभावणाणि समाउग्गपदाणि सउत्तरपदाणि सम्मं धम्मं अणुपालइत्ता समणा भयवंता णिग्गंथादोओण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणियंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति परिविज्जाणंति । तं जहा—

पाणादिवादं चहि मोसगं च अदत्तमेहुणपरिग्गहं च ।
वदाणि सम्मं अणुपालइत्ता णिव्वाणमग्गं विरदा उवेंति ॥१॥
जाणि काणि वि सल्लाणि गरहिदाणि जिणसासणे ।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता णिसल्लो विहरदे सया मुणी ॥२॥
उप्पण्णाणुप्पण्णा माया अणुपुव्वं सो णिहंतव्वा ।
आलोयण पडिक्कमणं णिंदणगरहणदाए ॥३॥
अब्भुट्ठिदकरणदाए अब्भुट्ठिददुक्कडणिराकरणदाए ।
भवं भावपडिक्कमणं सेसा पुण दव्वदो भणिदा ॥४॥

एसो पडिक्कमणविही पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजमतवट्ठिदाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं ॥५॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं भवे एत्थ।
तं खमउ णाणदेवय ! देउ समाहिं च बोहिं च ॥६॥
काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं लोयम्मि य सव्वसाहूणं ॥७॥

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स मूलपदाणं उत्तर-पदाणमच्चासणदाए। तं जहा—

णमोक्कारपदे अरहंतपदे सिद्धपदे आइरियपदे उवज्झायपदे साहुपदे मंगलपदे लोगोत्तमपदे सरणपदे सामाइयपदे चउवीसतित्थयरपदे वंदणपदे पडिक्कमणपदे पच्चक्खाणपदे काउसग्गपदे असीहियपदे निसीहियपदे अंगंगेसु पुव्वंगेसु पइण्णएसु पाहुडेसु पाहुडपाहुडेसु कदकम्मेसु वा भूदकम्मेसु वा णाणस्य अइक्कमणदाए दंसणस्स अइक्कमणदाए चरित्तस्स अइक्कमणदाए तवस्स अइक्कमणदाए वीरियस्स अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा पदहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुईसु वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा जे भावा पण्णत्ता अरहंतेहिं भयवंतेहिं तित्थयरेहिं आदियरेहिं तिलोगणाहेहिं तिलोगबुद्धेहिं तिलोगदरसीहिं ते सद्दहामि ते पत्तियामि ते रोचेमि ते फासेमि, ते सद्दहंतस्य ते पत्तयंतस्स ते रोचयंतस्स ते फासयंतस्स जो मए देवसिओ राईओ पक्खिओ संवच्छरिओ अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो अकाले सज्झाओ कओ काले वा परिहाविदो

अत्थाकारिदं मिच्छामेलिदं वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवसएसु पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अह पडिवदाए विदिए तदिए चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए सत्तमीए अट्ठमीए णवमीए दसमीए एयारसीए वारसीए तेरसीए चउद्सीए पुण्णमासीए पण्णरसदिवसाणं पण्णरसराईणं, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराईणं, वारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्हं छावट्ठिसयदिवसाणं तिण्हं छावट्ठिसयराईणं, पंचवरिसादो परदो अब्भिंतरदो वा दोण्हं अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणं तिण्हं अप्पसत्थसंकिलेसपरिणामाणं तिण्हं दण्डाणं तिण्हं लेस्साणं तिण्हं गुत्तीणं तिण्हं गारवाणं तिण्हं सल्लाणं चउण्हं सण्णाणं चउण्हं कसायाणं चउण्हं उवसग्गाणं पंचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं इंदियाणं पंचण्हं समिदीणं पंचण्हं चरित्ताणं छण्हं आवासयाणं सत्तण्हं भयाणं सत्तविहसंसाराणं अट्ठण्हं मयाणं अट्ठण्हं सुद्धीणं अट्ठण्हं कम्माणं अट्ठण्हं पवयणमाउ-याणं णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं णवण्हं णोकसायाणं दसविहमुण्डाणं दसविहसमणधम्माणं दसविहधम्मज्झाणाणं बारसण्हं संजमाणं बारसण्हं तवाणं बारसण्हं अंगाणं तेरसण्हं किरियाणं चउदसण्हं पुव्वाण्हं पण्णरसण्हं पमायाणं सोलसण्हं कसायाणं पणवीसाए किरियासु पणवीसाए भावणासु बावीसाए परीसहेसु अट्ठारससी-लसहस्सेसु चउरासीदिगुणसयसहस्सेसु मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु अदिक्कमो वदिक्कमो अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि पडिक्कंतं कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदं तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं वोस्सरामि जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण भयवदा महदिमहावीरेण महाकस्सवेण सव्वण्हणाणेण सव्वलोयदरसिणा सावयाणं सावियाणं खुड्डयाणं खुड्डीयाणं कारणेण पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तदिए अणुव्वदे थूलयडे अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे थूलयडे सदारसंतोसपरदारागमणवेरमणं कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे थूलयडे इच्छाकदपरिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि, तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसिविदिसि पच्चक्खाणं, विदिए गुणव्वदे विविधअणत्थदण्डादो वेरमणं, तदिए गुणव्वदे भोगोपभोगपरिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि, तत्थ पढमे सामाइयं, विदिए पोसहोवासयं, तदिए अतिथिसंविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिमसल्लेहणामरणं, तिदियं अब्भोवस्साणं चेदि।

से अभिमदजीवाजीव-उवलद्धपुण्णपाव-आसवसंवरणिज्जरबंध-मोक्खमहिकुसले धम्माणुरायरत्तो पि माणुरागरत्तो अट्ठिमज्जाणुरायरत्तो मुच्छिदट्ठे गिहिदट्ठे विहिदट्ठे पालिदट्ठे सेविदट्ठे इणमेव णिग्गंथपावयणे अणुत्तरे सेअट्ठे सेवणुट्ठे—

णिस्संकियणिक्कंखिय णिव्विदिगिंछी य अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं वच्छल्लपहावणा य ते अट्ठ ॥ १ ॥

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि बारसविहं गिहत्थधम्ममणुपालइत्ता—

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ॥१॥
महुमंसमज्जजूआ वेसादिविवज्जणासीलो।
पंचाणुव्वयजुत्तो सत्तेहिं सिक्खावएहिं संपुण्णो ॥२॥

जो एदाइं वदाइं धरेइ सावया सवियाओ वा खुड्डय खुड्डियाओ वा अट्ठदहभवणवासियवाणविंतरजोइसियसोहम्मीसाणदेवीओ वदिक्कमित्तउवरिमअण्णदरमहड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।

तं जहा—सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबंभबंभुत्तरलांतवकापिट्ठसुक्कमहासुक्कसतारसहस्सारआणतपाणतआरणअच्चुतकप्पेसु उववज्जंति

अडयंबरसत्थधरा कडयंगदबद्धनउडकयसोहा।
भासुरवरबोहिधरा देवा य महड्ढिया होंति ॥१॥

उक्कस्सेण दोतिण्णिभवगहणाणि जहण्णे सत्तट्ठभवगहणाणि तदो सुमणुसुत्तादो सुदेवत्तं सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं तदो साइहत्था पच्छा णिग्गंथा होऊण सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

——

(अनन्तरं साधवः "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकं पठित्वा सूरिणा सहिताः "वदसमिदिंदियरोधो" इत्यादिकं चाधीत्य वीर-स्तुतिं कुर्युः)

वीरभक्तिः—

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं निष्ठितकरणवीरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं–(इत्युच्चार्य, "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं यथोक्तानुच्छ्वासान् ३०० कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादिदण्डकं पठित्वा "चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं" इत्यादि स्वयंभुवं "या सर्वाणि चराचराणि" इत्यादि वीरभक्तिं सांचलिकां पठित्वा "वदसमिदिंदियरोधो" इत्यादिकं पठेयुः । तद्यथा—)

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥१॥
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥
स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केसरिणो निनादैः॥३॥
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः ।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समस्तदुःखक्षयशासनश्च ॥४॥
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः ।
व्याक्रोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥५॥

१—वीरस्तुतिर्जिनस्तुत्या सह शान्तिनुतिर्मता ।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥ १ ॥

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ॥२॥

ये वीरमादौ प्रणमन्ति नित्यं
ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके
संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥ ३ ॥

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः ॥४॥

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययौघः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥५॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ॥ ६ ॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।

धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥७॥
धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउं, सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु यम-नियम-संजम-सील-मूलुत्तरगुणेसु सव्वमईचारं सावज्जजोगं पडिविरदोमि असंखेज्जलोग-अज्झवसाणठाणाणि अप्पसत्थजोगसण्णाणिंदियकसायगारवकिरियासु मणवयणकायकरणदुप्पणिहाणि परिचिंतियाणि किण्हणील-काउलेस्साओ विकहापलिकुंचिएण उम्मगहस्सरदिअरदिसोयभयदुगंछवेयणविज्जंभजंभाईआणि अट्टरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामिदाणि अणिहदकरचरणमणवयणकायकरणेण अक्खित्तबहुलयरायणेण अपडिपुण्णेण वा सक्खरावयसंघायपडिवत्तिएण अच्छाकारिदं मिच्छामेलिदं आमेलिदं वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवसएसु परिहीणदाए कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइयारादो णियत्तोहं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

———

शान्तिचतुर्विंशति-स्तुतिः—

सर्वातिचारविशुद्धयर्थं पाक्षिकप्रतिक्रमणक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं (इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायमुत्सृज्य "थोस्सामि" इत्यादि दंडकमधीत्य शान्तिकीर्तनां "विधाय रक्षां" इत्यादिकां चतुर्विंशतिकीर्तनां च "चउवीसं तित्थयरे" इत्यादिकां सांचलिकां "वदसमदिदियरोधो" इत्यादिकं चससूरयः संयताः पठेयुः। तद्यथा—)

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥ १ ॥
चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥ २ ॥
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतंत्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥ ३ ॥
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलिदेवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसिकृतान्तचक्रम् ॥ ४ ॥
स्वदोषशान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवाञ्छरण्यः ॥ ५ ॥

चउवीसे तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ १ ॥

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता—
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥३॥
विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥४॥
कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ॥५॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहिदाणं चउती-सातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहिदाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसहस्सणि-लयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो अवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

चारित्रालोचनासहिता बृहदाचार्यभक्तिः[1]—

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं चारित्रालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्—

(अत्रापि "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं विधाय "थोस्सामि" इत्यादि दण्डकं पठेत् ।)

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धूतरुषाग्निजालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान्मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥

मुनिमाहात्म्यविशेषाज्जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ॥२॥

गुणमणिविरचितवपुषः षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन्सततम् ।
रहितप्रमादचर्यान्दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टिकरान् ॥३॥

मोहच्छिदुग्रतपसः प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान् ।
प्रासुकनिलयाननघानाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ॥४॥

धारितविलसन्मुण्डान्वर्जितबहुदंडपिंडमंडलनिकरान् ।
सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥५॥

अचलान् व्यपेतनिद्रान् स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान् ।
विधिनानाश्रितवासानलिप्तदेहान्विनिर्जितेंद्रियकरिणः ॥६॥

अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्तचित्तानखंडितस्वाध्यायान् ।
दक्षिणभावसमग्रान्व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ॥७॥

1—वृत्तालोचनया सार्धं गुर्वी सूरिनुतिस्ततः ।

भिन्नार्तरौद्रपक्षान् संभावितधर्मशुक्लनिर्मलहृदयान् ।
नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान् ॥८॥
तरुमूलयोगयुक्तानवकाशातापयोगरागसनाथान् ।
बहुजनहितकरचर्यानभयाननघान्महानुभावविधानान् ॥९॥
ईदृशगुणसंपन्नान्युष्मान् भक्त्या विशालया स्थिरयोगान् ।
विधिनानारतमग्र्यान् मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥१०॥
अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबंधनमुक्तान् ।
शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥

लघुचारित्रालोचना—

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो, पंच-महव्वदाणि, पंच समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंता, हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा, तेसिं उद्दावणं परिदा-वणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुम-ण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि-किमी-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ-बाल-संबुक्क-सिप्पि-पुलविकाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छिआइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, अंडाइया-पोदाइया-जराइगा-रसाइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अवि-चउरासीदिजोणिपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

इच्छामिभंते! काओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो अवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च॥ १॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो आइचारादो णियत्तो हं॥ २॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

बृहदालोचनासहिता मध्याचार्यभक्तिः[1]:—

सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

१—गुर्वालोचनया सार्धं मध्याचार्यनुतिस्तथा।

(इत्युच्चार्य "णमो अरहंताणं" इत्यादि दंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा "थोस्सामि" इत्यादि दंडकमधीत्य "देसकुलजाइसुद्धा" इत्यादिकां मध्याचार्यनुतिं "इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि" आलोचेउं पण्णरसण्हं दिवसाणं" इत्यादिबृहदालोचनां च ससूरयः साधवः पठेयुः)

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता ।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥ १ ॥

सगपरसमयविदण्हू आगमहेदूहिं चाविजाणित्ता ।
सुसमत्था जिणवयणे विणये सत्ताणुरूवेण ॥ २ ॥

बालगुरुबुड्ढसेहे गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥ ३ ॥

वयसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपहे ठाविया पुणो अण्णे ।
अज्झावयगुणणिलये साहुगुणेणावि संजुत्ता ॥ ४ ॥

उत्तमखमाए पुढवी पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा ।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो ॥ ५ ॥

गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा ।
एरिसगुणणिलयाणं पायं पणमामि सुद्धमणो ॥६॥

संसारकाणणे पुण बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण ॥ ७ ॥

अविसुद्धलेस्सरहिया विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥ ८ ॥

उग्गहईहावायाधारणगुणसंपदेहिं संजुत्ता ।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहिं वंदामि ॥ ९ ॥

तुम्हं गुणगणसंथुदि अजाणमाणेण जो मया वुत्तो ।
देउ मम बोहिलाहं गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥१०॥

बृहदालोचना—

इच्छामि[1] भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरसण्हं राईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि[2] भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउँ, चउण्हं मासाणं अट्ठण्हं पक्खाणं वीसुत्तरसयदिवसाणं वीसुत्तरसयराईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि[3] भंते ! संवच्छरियं आलोचेउं, वारसण्हं मासाणं चउवीसण्हं पक्खाणं तिण्णिछावट्ठिसयदिवसाणं तिण्णिछावट्ठिसयराईणं अब्भिंतरदो पंचविहो आयारो णाणायारो दंसणायारो तवायारो वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

तत्थ णाणायारो काले विणए उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे, वंजण अत्थ तदुभये चेदि, तत्थ णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो से अक्खरहीणं वा सरहीणं वा वंजणहीणं वा पदहीणं वा अत्थहीणं वा गंथहीणं वा थएसु वा थुएसु वा अट्ठक्खाणेसु वा अणियोगेसु वा अणियोगद्दारेसु वा अकाले सज्झाओ कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो काले वा परिहाविदो अत्थाकारिदं वा मिच्छामेलिदं वा आमेलिदं वा वामेलिदं अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छदं आवासएसु परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

दंसणायारो अट्ठविहो-णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठीय । उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल पहावणा चेदि ॥१॥

१—इस दंडक को पाक्षिक-प्रतिक्रमण के समय पढ़े । २—इस को चातुर्मासिक-प्रतिक्रमण के समय पढ़े । ३—इसे सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण के समय पढ़े ।

अट्ठविहो परिहाविदो संकाए कंखाए विदिगिंछाए अण्णदि-ट्ठिपसंसणदाए परपाखंडपसंसणदाए अणायदणसेवणदाए अवच्छ-ल्लदाए अप्पहावणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

तवायारो बारसविहो, अब्भंतरो छव्विहो बाहिरो छव्विहो चेदि, तत्थ बाहिरो अणसणं आमोदरियं वित्तिपरिसंखा रसपरि-च्चाओ सरीरपरिच्चाओ विवित्तसयणासणं चेदि, तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो चेदि । अब्भंतरं बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरियपरिक्कमेण जहु-त्तमाणेण बलेण वीरिएण परिक्कमेण णिगूहियं तवोकम्मं ण कयं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंच महव्वदाणि पंचसमिदीओ तिगुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं । से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखे-ज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि-किम्मि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठ-गंडवाल--संबुक्क--सिप्पि--पुलविकाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथु-देहिय-विंछिय-गोभिंद-गोजूव-मक्कुण-पिपीलियाइया, तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छिया तेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया-पोदाइया-जराइया-संसेदिमा-सम्मुच्छिमा-उब्भेदिमा-उववादिमा अवि चउरासीदिजोणीपमुहसदसहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचो अवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

—— ——

क्षुल्लकालोचनासहिता क्षुल्लकाचार्यभक्तिः[१]—

सर्वातिचारविशुद्धयर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं विधाय 'प्राज्ञः प्राप्तसमस्तस्त्रशाहृदयः" इत्यादिकां "श्रुतजलधीत्यादि मोक्षमार्गोपिदेशका" इत्येवमन्तकां ससूरयः संयताः पठेयुः)

१—लघ्वी सूरिस्तुतिश्चेति पाक्षिकादौ प्रतिक्रमे।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥
श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने
परिणतिरुरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ॥२॥
श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥३॥
छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥४॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंति ॥ ५ ॥
ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटा प्रीणन्तु मां साधवः ॥६॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ७ ॥

आलोचना—

इच्छामि भंते ! आइरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसियाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुण-

पालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिन-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

वदसमदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ १ ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमादकदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥ २ ॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

'समाधिभक्तिः।

सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठितकरणवीर-शान्तिचतुर्विंशतितीर्थंकर-चारित्रालोचनाचार्य-बृहदालोचनाचार्य क्षुल्लकालोचनाचार्यभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिंकायोत्सर्गं करोम्यहं—(इत्युच्चार्य पूर्ववद्दंडकादिकं कृत्वा "शास्त्राभ्यासो जिनपति" इत्यादीष्टप्रार्थनां ससूरयः साधवः पठेयुः)।

अथेष्टप्रार्थना प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।

१—ऊनाधिक्यविशुद्ध्यर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिका।

२—अस्मादग्रे पुस्तकान्तपाठो—गाथा यथेष्टप्रार्थनामित्यादि। इति पाक्षिकबृहत्प्रतिक्रम संपूर्ण। आषाढ संवछरी उपवास १२, कार्तिक चातुर्मासी उपवास ८, फाल्गुण के उपवास, श्रुतपाठ आषाढ उपवास ४, कार्तिके उपवास १६, फाल्गुण के उपवास ८ इति संपूर्ण। संवत् १७२४ वर्षे चैत्र कृ० १० गुरु० पुस्त ल० जोसी पुष्कर।

सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ १ ॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ २ ॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमहु णाणदेव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ॥ ३ ॥

आलोचना—

इच्छामि भंते ! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तयपरूवपरमप्पज्झाणलक्खणसमाहिभत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खआ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

ततः (समाधिभक्तेरन्तरं) सिद्ध श्रुताचार्यभक्तिभिः (पूर्वोक्ताभिः) आचार्यं साधवो वन्देरन्।

इति ।

३—श्रावक-प्रतिक्रमणम् ।

जीवे¹ प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा

यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।

तस्मात्तदर्थममलं मुनिबोधनार्थं

वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम् ॥१॥

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना

रागद्वेषमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।

त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना

निन्दापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

²खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।

मेत्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि ॥ ३ ॥

³रागबंधपदोसं च हरिसं दीणभावयं ।

उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥ ४ ॥

१—इदं काव्यं टीकाकर्तुः ।

२—क्षमे सर्वजीवान् सर्वे जीवा क्षम्यतां मम ।

मैत्री मम सर्वभूतेषु वैरं मम न केनापि ॥ ३ ॥

३—रागबन्धप्रदोषं च हर्षं दीनभावकं ।

उत्सूत्रकं भयं शोकं रतिमरतिं च व्युत्सृजामि ॥ ४ ॥

हा[1] दुट्ठकयं हा दुट्ठचिंतियं भासियं च हा दुट्ठं ।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥ ५ ॥

दव्वे[2] खेत्ते काले भावे य कदावराहसोहणयं ।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवयकाएण पडिक्कमणं ॥ ६ ॥

एइंदिय--बेइंदिय-तेइंदिय--चउरिंदिय--पंचेंदिय--पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-तसकाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

दंसणवयसामाइयपोसहसचित्तरायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणुमणुमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥ १ ॥

एयासु[3] जधाकहिदपडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

अरहंतसिद्धआइरियउवज्झायसव्वसाहुसक्खियं सम्मत्तपुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु ।

देवसियपडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वाइरियकमेण आलोयणसिद्धभत्तिकाउस्सग्गं करेमि

१—हा ! दुष्कृतं हा ! दुष्टचिन्तितं भाषितं च हा ! दुष्टम् ।
अन्तोऽन्तः दह्ये पश्चात्तापेन वेदयन् ॥ ५ ॥

२—द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च कृतापराधशोधनकम् ।
निन्दागर्हायुक्तः मनोवचःकायैः प्रतिक्रमणं ॥ ६ ॥

३—एतासु यथाकथितप्रतिमासु प्रमादादिकृतातिचारशोधनार्थं छेदोपस्थापनं भवतु मम ।

सामायिकदण्डकः—

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगोत्तमा—अरहंतलोगोत्तमा, सिद्धलोगोत्तमा, साहु लोगोत्तमा, केवलिपण्णत्तो धमो लोगोत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वजामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वं सावज्जजोगं पच्चक्खामि, जावजीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण ण करेमि ण कारेमि अण्णं करंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

णमोकार ६ गुणिया। कायोत्सर्ग उच्छ्वास २७।

चतुर्विंशतिस्तवः—

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलीअणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महापण्णे ॥ १ ॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥
एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥
कित्तिय वंदिय महिया एए लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियं पयासंता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ८ ॥

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥ १ ॥

सिद्धभक्तिः—

तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ २ ॥

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्ममुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तसिद्धाणं अदीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

आलोचना—

इच्छामि भंते ! देवसियं आलोचेउं । तत्थ—

पंचुंबरसहियाइं सत्त वि वसणाइं जो विवज्जेइ ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणियो ॥ १ ॥
पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावयाइं चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि ॥ २ ॥
जिणवयणधम्मचेइयपरमेट्ठिजिणालयाण णिच्चं पि ।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु ॥ ३ ॥
उत्तममज्झजहण्णं तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठं ।
सगसत्तीए मासम्मि चउसु पव्वेसु कायव्वं ॥ ४ ॥

१—पंचोदम्बरसहितानि सप्तापि व्यसनानि यो विवर्जयति ।
सम्यक्त्वविशुद्धमतिः स दर्शनश्रावको भणितः ॥ १ ॥
२—पंच च अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि जानीहि द्वितीये स्थाने ॥ २ ॥
३—जिनवचन-धर्म-चैत्य-परमेष्ठि-जिनालयानां नित्यमपि ।
यद्वंदनं त्रिकालं करोति सामायिकं तत्खलु ॥ ३ ॥
४—उत्तममध्यजघन्यं त्रिविधं प्रोषधविधानमुद्दिष्टम् ।
स्वकशक्त्या मासे चतुर्षु पर्वसु कर्तव्यम् ॥ ४ ॥

जं वज्जिजदि हरिदं तयपत्तपवालकंदफलबीयं ।
अप्पासुगं च सलिलं सच्चित्तणिव्वत्तिमं ठाणं ॥ ५ ॥
मणवयणकायकदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावओ छट्ठो ॥ ६ ॥
पुव्वुत्तणवविहाणं णि मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ।
इत्थिकहादिणिवित्ती सत्तमगुणबंभचारी सो ॥ ७ ॥
जं किंपि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेदि ।
आरंभणिवित्तमदी सो अट्ठमसावओ भणिओ ॥ ८ ॥
मोत्तूण वत्थमित्तं परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं ।
तत्थ वि मुच्छं ण करदि वियाण सो सावओ णवमो ॥९॥
पुट्ठो वापुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं सग्गिहकज्जे ।
अणुमणणं जो ण कुणदि वियाण सो सावओ दसमो ॥१०॥

५—यद्विवर्जयति हरितं त्वक्पत्रप्रवालकन्दफलबीजम् ।
अप्रासुकं च सलिलं सचित्तनिवर्तिकं स्थानम् ॥ ५ ॥
६—मनोवचनकायकृतकारितानुमोदैः मैथुनं नवधा ।
दिवसे यो विवर्जयति गुणे स श्रावकः षष्ठः ॥ ६ ॥
७—पूर्वोक्तनवविधानमपि मैथुनं सर्वदा विवर्जयन् ।
स्त्रीकथादिनिवृत्तिः सप्तमगुणब्रह्मचारी सः ॥ ७ ॥
८—यत्किमपि गृहारंभं बहु स्तोकं वा सदा विवर्जयति ।
आरंभनिवृत्तमतिः सः अष्टमश्रावको भणितः ॥ ८ ॥
९—मुक्त्वा वस्त्रमात्रं परिग्रहं यो विवर्जयति शेषम् ।
तत्रापि मूर्छां न करोति विजानीहि स श्रावको नवमः ॥९॥
१०—पृष्टो वाऽपृष्टो वा निजकैः परैः सद्गृहकार्ये ।
अनुमननं यो न करोति विजानीहि स श्रावको दशमः ॥१०॥

णवकोडीसु विसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भुंजं ।
जायणरहियं जोग्गं एयारस सावओ सो दु ॥११॥
एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो ।
वत्थेयधरो पढमो कोवीणपरिग्गहो विदिओ ॥१२॥
तववयणियमावासयलोचं कारेदि पिच्छ गिण्हेदि ।
अणुवेहाधम्मझाणं करपत्ते एयठाणम्मि ॥१३॥

इत्थ मे जो कोई देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स भंते ! पडिक्कमामि पडिक्कम्मंतस्स मे सम्मत्तमरणं समाहिमरणं पंडिय-मरणं वीरियमरणं दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥१॥

एयासु यथाकहिदपडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं ।

—— ——

प्रतिक्रमणभक्तिः—

श्रीपडिक्कमणभत्ति—काउस्सग्गं करेमि—

णमो अरहंताणमित्यादि—थोस्सामीत्यादि ।

११—नवकोटीषु विशुद्धं भिक्षाचरणेन भुनक्ति भोजनं ।
याचनारहितं योग्यं एकादश श्रावकः स तु ॥११॥
१२—एकादशे स्थाने उत्कृष्टः श्रावकः भवेद्द्विविधः ।
वस्त्रैकधरः प्रथमः कौपीनपरिग्रहो द्वितीयः ॥१२॥
१३—तपोव्रतनियमावश्यकलोचं करोति पिच्छं गृह्णाति ।
अनुप्रेक्षाधर्मध्यानं करपात्रे एकस्थाने ॥१३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ३ ॥

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताण ! णिब्भय ! णिराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग ! णिस्सल्ल ! माणमायमोसमूरण ! तवप्पहावण ! गुणरयण ! सीलसायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदिमहावीरवड्ढमाण ! बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे ।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जयणाणिणो चउदसपुव्वंगामिणो सुदसमिदिसमिद्धा य, तवो य वारसविहो तवसी, गुणा य गुणवंतो य महारिसी तित्थं तित्थकरा य, पवयणं पवणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणीदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपरसमयविदू, खंति खवगा य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेईयरुक्खाय चेईयाणि ।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि सिद्धिणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वे य सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ का वि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि ईसिपब्भारतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरुआइरियउवज्झायाणं पव्वति-त्थेर-कुलयराणं चाउवण्णाय समणसंघा य भारहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदे हं

मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण मंजलिमत्थयम्मि पडिलेहिय अट्ठकत्तरिओ तिविहं तियरणसुद्धो।

पडिक्कमामि भंते! दंसणपडिमाए संकाए कंखाए विदिगिंछाए परपासंडाण पसंसाए पसंथुए जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ १ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे वहेण वा वंधेण वा छेएण वा अइभारारोहणेण वा अण्णपाणणिरोहणेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-१ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिआए विदिए थूलयडे असच्चविरदिवदे मिच्छोवदेसेण वा रहोअब्भक्खाणेण वा कूडलेहणकरणेण वा णायापहारेण वा सायारमंत्रभेएण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-२ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए तिदिए थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा विरुद्धरज्जाइक्कमणेण वा हीणाहियमाणुम्माणेण वा पडिरूवयववहारेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-३ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभविरदिवदे परविवाहकरणेण वा इत्तरियागमणेण वा परिग्गहिदापरिग्गाहिदागमणेण वा अणंगकीडणेण वा कामतिव्वाभिणिवेसेण वा जो

मए देवसियो अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-४॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमणेण वा धणधाणाणं परिमाणाइक्कमणेण वा दासीदासाणं परिमाणाइक्कमणेण वा हिरण्णसुवण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा कुप्पभांडपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-५ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे उड्ढवइक्कमणेण वा अहोवइक्कमणेण वा तिरियवइक्कमणेण वा खेत्तउड्ढीएण वा सदिअंतराधाणेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-६-१ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए विदिए गुणव्वदे आणयणेण वा विणिजोगेण वा सद्दाणुवाएण वा रूवाणुवाएण वा पुग्गलखेवेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-७-२॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए तिदिए गुणव्वदे कंदप्पेण वा कुकुवेएण वा मोक्खरिएण वा असमक्खियाहिकरणेण वा भोगोपभोगाणत्थकेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-८-३ ॥

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे फासिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदियभोगपरिणाइक्कमणेण वा

घाणिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा सवणिंदियभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जोमए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-९-१ ॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए विदिए सिक्खावदे फासिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदियपरिभोगपरमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा सवणिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसियो अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-१०-२ ॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तिदिए सिक्खावदे सचित्तणिक्खेवेण वा सचित्तापिहाणेण वा परउवएसेण वा कालाइक्कमणेण वा मच्छरिएण वा जो मए देवसियो अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-११-३॥

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए चउत्थे सिक्खावदे जीविदासंसणेण वा मरणासंसणेण वा मित्ताणुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णिदाणेण वा जो मए देवसियो अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ २-१२-४ ॥

पडिक्कमामि भंते ! सामाइयपडिमाए मणदुप्पणिधाणेण वा वायदुप्पणिधाणेण वा कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदिअणुवट्ठावणेण वा जो मए देवसियो अइचारो मणसा वाचिया

काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ३ ॥

पडिक्कमामि भंते ! पोसहपडिमाए अप्पडिवेक्खियापमज्जियोस्सग्गेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जियादाणेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जियासंथारोवक्कमणेण वा आवस्सयाणादरेण वा सदिअणुवट्ठावणेण वा जो मए देवसिओ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ४ ॥

पडिक्कमामि भंते ! सचित्तविरदिपडिमाए पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाइया जीवा अणंताअणंता हरिया बीया अंकुरा छिण्णा भिण्णा एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ५ ॥

पडिक्कमामि भंते ! राइभत्तपडिमाए णवविहबंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ६ ॥

पडिक्कमामि भंते ! बंभपडिमाए इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थिमणोहररंगणिरक्खणेण वा पुव्वरयाणुस्सरणेण वा कामकोवणरसासेवणेण वा सरीरमंडणेण वा जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ७ ॥

पडिक्कमामि भंते ! आरंभविरदिपडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसियो आरंभो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥ ८ ॥

पडिक्कमामि भंते ! परिग्गहविरदिपडिमाए वत्थमेत्तपरिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

पडिक्कमामि भंते ! अणुमणुविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा कारिदं वा कीरंतं वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

पडिक्कमामि भंते ! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोसबहुलं अहोरदियं आहारयं आहारावियं आहारिज्जंतं वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मोत्तिमग्गं पमोत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं अवितहमविसंतिपव्वयणमुत्तमं तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदो उत्तरं अण्णं णत्थि भूदं ण भयं ण भविस्सदि णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति परिवियाणंति समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडियमाणमायामोसमूरण मिच्छणाणमिच्छदंसणमिच्छचरित्तं च पडिविरदोमि सम्मणाणसम्मदंसणसम्म-

चरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो इत्थ मे जो कोइ देवसियो अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

इच्छामि भंते ! वीरभत्तिकाउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो काइओ वाइओ माणसिओ दुच्चरिओ दुच्चारिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ णाणे दंसणे चरित्ते सुत्ते सामाइए एयारसण्हं पडिमाणं विराहणाए अट्ठविहस्स कम्मस्स णिग्घादणाए अण्णहा उस्सासिदेण णिस्सासिदेण वा उम्मिसिदेण णिम्मिस्सिदेण खासिदेण वा छिंकिदेण वा जंभाइदेण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं एदेहिं सव्वेहिं असमाहिं पत्तेहिं आयारेहिं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तराइभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गहअणमणुमुद्दिठदेसविरदेदे ॥ १ ॥

वीरभत्तिकाउस्सग्गं करेमि—

(णमो अरहंताणमित्यादि, थोस्सामीत्यादि जाप्य ३६ देवा) ।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥ १ ॥
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य वीरं तपो
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ॥२॥

ये वीरमादौ प्रणमन्ति नित्यं ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः ।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥ ३ ॥

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः ॥४॥

शिवसुखफलदायी यो दयाछायशौघः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥५॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ॥६॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥७॥

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मो सया मणो ॥८॥

इच्छामि भंते ! पडिकमणाइचारमालोचेउं तत्थ देसासिआ आसणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ काओसग्गासिआ पाणमासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमासिए छसु आवासएसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य ।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ॥१॥

चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गं करेमि—

(णमो अरहंताणमित्यादि, थोस्सामीत्यादि)

चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वेसिं गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

ये लोकेष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गता
ये सम्यक्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोधिकाः ।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥३॥

विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥४॥

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ॥५॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहिदाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहिदाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं थुइसहस्सणिलयाणं उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-रायभत्ते य ।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ॥ १ ॥

श्रीसिद्धभक्ति-श्रीप्रतिक्रमणभक्ति-श्रीवीरभक्ति-श्रीचतुर्विंशतिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—

(णमोकार ६ गुणिवा)

अथेष्टप्रार्थना प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

१—तेसट्ठिसलायभेयं सत्थाण पुराणजाणभवकहणं ।
वयचारित्तफलाणं पढमाणिओ य जिणभणियं ॥१॥

२—अहउड्ढतिरियलोए दिसि विदिसि जं पमाणयं भणियं ।
करणाणिओ य सिद्धं दीवसमुद्दा य जिणगेहा ॥१॥

३—पुव्वाइरियकयाणं किरियाणं सयलरिद्धिसहियाणं ।
उवसग्गं सण्णासं चरणाणिओ य तं भणियं ॥१॥

४—बंधं च बंधकारणकिरिया मोक्खं च कारणं मोक्खं ।
हेयाहेयं गंथं दव्वाणिओ य मुणिभणियं ॥१॥

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥२॥

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहि-मरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

इति श्रीश्रावकप्रतिक्रमणं समाप्तम्।

इति प्रतिक्रमणाध्यायो द्वितीयः।

नमो जिनाय।

बृहद्भक्त्यध्यायस्तीय:।
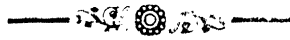
जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं, प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्।
अनन्तबोधादिभवं गुणौघं, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥१॥

सामायिक-दण्डक:।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

टीका—अरिहननाद्रजोहननाद्रहस्याभावाच्च परिप्राप्तानंतचतुष्टयस्वरूपा:, शतेन्द्रादिविनिर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हंतीत्यर्हंत:—

घातिक्षयजमनन्तज्ञानादिचतुष्टयं विभूत्याढ्यम्।
येषामस्त्यर्हन्तस्तेत्र जिनेन्द्रा: समुद्दिष्टा: ॥ १ ॥

विशिष्टशुक्लध्यान[1]महोदयान्निखिलकर्मापाये सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान् साधितवन्तो ये ते सिद्धा:—

शुक्लध्यानविशेषान्निरस्तनि:शेषकर्मसंघाता:।
सम्यक्त्वादिगुणाढ्या: सिद्धा: सिद्धिं प्रयच्छन्तु ॥२॥

स्वयं पंचधाचारमाचरंति शिष्यांश्चाचारयंति ये ते आचार्या:—

१—माहात्म्यान्, इत्यपि पाठ:।

पंचधाचरन्त्याचारं शिष्यानाचारयंति च।
सर्वशास्त्रविदो धीरास्तेऽत्राचार्याः प्रकीर्तिताः ॥३॥

ये स्वयं पंचाचारमाचरन्ति नान्यानाचारयन्त द्वादशांगादिशास्त्रं तु शिष्यानध्यापयंति ते उपाध्यायाः। उपेत्य अधीयते मोक्षार्थं शास्त्रमेतेभ्य इति व्युत्पत्तेः—

दिशंति द्वादशांगादिशास्त्रं लोभादिवर्जिताः।
स्वयं शुद्धव्रतोपेता उपाध्यायास्तु ते मताः ॥४॥

शिष्याणां दीक्षादिदानाध्यापनपराङ्मुखाः सकलकर्मोन्मूलनसमर्था मोक्षमार्गानुष्ठानपरा ये ते साधवः। सिद्धिं साधयंति साधयिष्यंतीति वा साधवः—

ये व्याख्यांति न शास्त्रं न ददति दीक्षादिकं च शिष्याणाम्।
कर्मोन्मूलनशक्ता ध्यानरतास्तेत्र साधवो ज्ञेयाः ॥ ५ ॥

सर्वशब्दः साधूनां विशेषणं, सर्वे च ते साधवश्चेति। तेषां अर्हदादीनां संबंधी नमो नमस्कारोऽस्तु। नमःशब्दयोगे चतुर्थी प्राप्नोतीति चेन्न प्राकृते चतुर्थ्या विधानासंभवात्। यदि वा पंचानामपि परमेष्ठिनां लुप्तविभक्तिकः सर्वशब्दो लोकशब्दश्च विशेषणं। ततो णमो लोए सव्व अरहंताणमित्यादिः संबंधः कर्तव्यः। नन्वर्हदादयः संज्ञाभेदाः किं नानात्मनामेते संभवंति किं वा एकस्यापीति चेत्, अर्हदादिलक्षणोपेतत्वे एकस्य नानात्मनां च तत्संज्ञाभेदाविरोधः। एकस्य तल्लक्षणभेदोऽपि कथं विरोधादिति चेन्नावस्थाभेद एकस्यापि तत्संभवाविरोधात् तल्लक्षणभेदश्चोक्तः प्रागिति।

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं,
साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

टीका—अर्हदादयश्चत्वारो भव्यानां मलगालनहेतुत्वात् मंगं सुखं तत्प्राप्तिहेतुत्वाद्वा मंगलम्। आचार्योपाध्याययोः पृथग्मंगलत्वप्रसङ्गा-

श्चत्वार इत्येतदयुक्तमिति चेन्न तयोर्निखिलकर्मोन्मूलनसमर्थध्यानपरत्वादिसाधुगुणोपेतत्वेन साधुष्वंतर्भावात् ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

टीका—उत्तमगुणोपेतत्वात, उत्तमपदप्राप्तत्वात्, उत्तममार्गाधिरुढत्वात्, भव्यानामुत्तमगुणादिप्राप्तिहेतुत्वाद्वा अर्हदादयश्चत्वार उत्तमाः ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि,
सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ।

टीका—दुर्जयकर्मारातिप्रभवदुःखार्णवोत्तरणहेतुभूतत्वादार्हदादीन् चतुरः शरणं प्रव्रजामि । संसारमहादुःखार्णवेऽन्यस्योत्तरणहेतुत्वासंभवात् ।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं, केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं चारित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं ।

टीकाः—क ते अर्हदादयः संभवंतीत्याह—अड्ढाइज्जेत्यादि । पण्णारसकम्मभूमिसु—पंचभरताः पंचैरावताः पंचविदेहाश्चेति कर्मभूमयस्तासूत्पन्ना येऽर्हदादयः अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु—जंबूद्वीपो धातकीखंडः पुष्करार्द्धश्चेत्यर्धतृतीयद्वीपाः, लवणोदः कालोदश्चेति द्वौ समुद्रौ तन्मध्ये ये व्यवस्थिताः, पंचदशसु कर्मभूमिषु हि स्वयमेवोत्पन्ना अन्यत्रोपसर्गवशादृद्धिवशाद्वार्हदादयो व्यवस्थिताः तेषां

सदा करोमि क्रियाकर्मेत्यनेनाभिसंबंधः। तत्र कीदृक्स्वरूपाणां अर्हतां सदा करोमि क्रियाकर्मेत्याह्–जाव अरहंताणमित्यादि। जाव–यावतां यत्परिमाणानामनाद्यनिधनकालप्रवृत्तानां, अरहंताणं–अर्हतां। भयवंताणं–भगवतां ज्ञानवतां पूज्यानां वा। आदियराणं—आदितीर्थप्रवर्तकानां। तित्थयराणं—तीर्थं श्रुतमर्हतां उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्मश्च संसारसागरोत्तरणहेतुत्वात्, तत्कृतवतां। जिणाणं—जिनानां अनेकविषमभवगहनव्यसनप्रापणहेतुकर्मारात्युन्मूलकानां। जिणोत्तमाणं–देशजिनेभ्यो गणधरदेवादिभ्य उत्कृष्टानां। केवलियाणं–केवलज्ञानसम्पन्नानां। तथा जाव सिद्धाणं–यत्परिमाणानां सिद्धानां सदा क्रियाकर्म करोमि। कथंभूतानां? बुद्धाणं—निखिलार्थज्ञानवतां। अनेन मुक्तात्मनां जडरूपता यौगोपकल्पिता प्रत्युक्ता। परिणिव्वुदाणं–परिनिर्वृतानां सुखीभूतानामित्यर्थः। अनेन सांख्यैर्मुक्तस्य शुद्धं यच्चैतन्यमात्रमिष्टं तन्निरस्तं। अंतयडाणं—अशेषकर्मणां तत्प्रभवसंसारस्य चान्तं विनाशं कृतवतामित्यनेन सदा मुक्तत्वमीश्वरस्य निराकृतं। यदि वा एकैकस्य तीर्थकरस्य काले दश दश अंतकृतो भवंति तद्रूपाणां। ये हि दुर्द्धरोपसर्गं प्राप्यांतर्मुहूर्तमध्ये घातिकर्मक्षयं कृत्वा केवलमुत्पाद्य शेषकर्मक्षयं च विधाय सिद्ध्यन्ति तेंतकृत इत्युच्यंते। पारयडाणं—संसारमहोदधेः पारं पर्यंतं कृतवतां। पारगयाणमिति पाठे पारंगतानां। तथा आचार्यादीनां यत्परिमाणानां सदा क्रियाकर्म करोमि। किंविशिष्टानां? धम्माइरियाणं—धर्मश्चारित्रं 'चारित्तं खलु धम्मो' इत्यभिधानात् उत्तमक्षमादिरूपो वा तमाचरतां आचारयतां वा आचार्याणां। धम्मदेसयाणं–उपाध्यायानामित्यर्थः। धम्मणायगाणं–धर्मानुष्ठातॄणां सर्वसाधूनामित्यर्थः। कथंभूतानामेतेषां पंचानामित्याह्—धम्मेत्यादि धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं—धर्म एव वरं चातुरंगं स्वकार्यकरणे अप्रतिहतप्रसरत्वात् तस्य चक्रवर्तिनां स्वामिनां। देवाहिदेवाणं–देवानां चतुर्णिकायरूपाणां अधिदेवानां—वंद्यानामित्यर्थः। अथ गुणिनः स्तुत्वा गुणांस्तो-

तुमाह--णाणाणमित्यादि ज्ञानदर्शनचारित्राणां सदा करोमि क्रियाकर्म। गुणानामानंत्यसंभवेऽपि रत्नत्रयस्य प्राधान्येन मोक्षोपायभूतत्वात्तदेव स्तुतं।

करेमि भंते सामाइयं, सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि। जाव-जीवं तिविहेण मणसा, वचसा, कायेण ण करेमि, ण कारेमि, करंतं पि ण समणुमणामि तस्स भंते अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि, गरहामि, जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

टीका—अर्हदादीनां क्रियाकर्म कुर्वाणो भंते—भगवन् प्रथम-तस्तावत्सामायिकं करोमि। किं पुनः सामायिकं इति चेत् माध्यस्थ्यं रागद्वेषयोरभावः। तदुक्तं।

जीवियमरणे लाहालाहे संजोगविप्पजोगे य।
बंधुरिसुहदुक्खादिसु समदा सामाइयं णाम ॥ १ ॥

तं च कुर्वाणः सव्वं-सर्वमपि सावज्जजोगं-अशुभमनोवाक्कायव्या-पारं पच्चक्खामि-परित्यजामि। कथं? जावजीवं-जीवितपर्यन्तं। कथं? तिविहेण—तदेव त्रैविध्यं दर्शयति मणसा वचिया कायेणेति। कायेन तावत्स्वयं न करोमि, वचसा न कारयामि, मनसा अन्यं कुर्वन्तमपि सावद्ययोगं न समनुमन्ये। एवं वचसा मनसा च न करोमीत्यादि योज्यम्। तस्सेत्यादि--तस्य अर्हदादिक्रियाकर्मणः संबंधिनमतीचारं दोषं भंते--भगवन् पडिक्कमामि निराकरोमि। कथं तत् पडिक्कमामि इत्याह णिंदामीत्यादि। कृतदोषस्यात्मसाक्षिकं हा दुष्टं कृतमिति चेतसि भावनं निंदा। गुर्वादिसाक्षिकं तदेव गर्हेत्युच्यते। न केवलं सावद्ययोगमेव प्रत्याख्यामि किन्तु जाव अरहंताणं-यावत्कालमर्हतां। भयवंताणं-भगवतां ज्ञानवतां पूज्यानां वा, पज्जुवासं करेमि-विशुद्धेन मनसा भगवतोऽनुचिंतनं पर्युपासनं सेवां तत्करोमि, तावकालं--तावत्कालं, पावकम्मं, पापं—अशुभं

संसारप्रवृद्धिनिमित्तं कर्म यस्मात्पापाय वा कर्म क्रिया व्यापारो यस्य, दुच्चरियं–दुष्टं संसारप्रवृत्तिनिमित्तं चरित्रं चेष्टितं व्यापारो यस्य वोस्सरामि —व्युत्सृजामि तत्रोदासीनो भवामि इत्यर्थः।

चतुर्विंशतिस्तवः।

थोस्सामिहं जिणवरे तित्थयरे केवलीअणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मंतित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥ २ ॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ ३ ॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ४ ॥
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ ५ ॥
एवं मए अभित्थुया विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ६ ॥
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ ७ ॥
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहासत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ८ ॥

टीका—थोस्सामीत्यादि गाहाबंधः। थोस्सामि–स्तोष्ये अहं। कान्? तित्थयरे-तीर्थकरान्। कथंभूतान्? जिणवरे–देशजिनेभ्यो गणधरादिभ्यो वरान् श्रेष्ठान्। केवलीअणंतजिणे–न विद्यतेऽन्तो यस्येत्यनन्तः संसारस्तं जितवंतः, यदि वा न विद्यते अंतो येषां ते अनंतास्ते च ते

जिनाश्च, केवलिनश्च ते अनंतजिनाश्च। णरपवरलोयमहिए-नरप्रवराश्च ते लोकाश्च चक्रवर्त्यादयः तैः महिताः पूजिताः। यदि वा नरप्रवराश्च ते लोकमहिताश्चेति ग्राह्यम्। विहुयरयमले-रजसी, ज्ञानदृगावरणे आत्मस्वरूपप्रच्छादकत्वात् त एव मला विधूता रजोमला यैस्ते। महप्पएणे-महः पूजा आपन्ना यैः अथवा महाप्रज्ञाः। ननु केवलज्ञानोपेतत्वात्तेषां कथं सांतज्ञानविशेषा प्रज्ञा स्यादित्ययुक्तं यतस्तदुपेतत्वेपि तेषां भूतपूर्वगत्या महाप्रज्ञत्वं द्रष्टव्यम्।

लोयस्सुज्जोययरे-केवलज्ञानेन लोकप्रकाशकान्। धम्मंतित्थंकरे-धर्मश्चारित्रं उत्तमक्षमादिश्च, तीर्थमागमस्तत्कृतवन्तः। तीर्थकरानेव स्तोतुमुद्यतो भवान् तदा मुण्डकेवलिनो भवतोऽवंद्याः प्राप्नुवंतीत्याशंकापनोदार्थमाह जिणे इत्यादि—जिनान् मुण्डकेवलिनो वन्दे, विहुयरयमले इत्यादि विशेषणचतुष्टयं अत्रापि संबंधनीयम्। इदानीं तीर्थकरान् स्तोष्ये इति संग्रहवाक्येन यत्प्रतिज्ञातं तत् अरहंते इत्यादिना विवृणोति। अरहंते-घातिकर्मक्षये अनंतज्ञानसंपन्नान् तीर्थकृतः, कित्तिस्से-निजनिजनामोपेतान्प्रणामपूर्वकं व्यावर्णयिष्ये। केवलिणो-केवलज्ञानोपेतान् ,चउवीसं चेव-इदानींतनावसर्पिणीचतुर्थकालसंबंधिनश्चतुर्विंशतिसंख्योपेतानेव उसहमित्यादि नामोपलक्षितानर्हतः कीर्तयिष्यामि।

स्वशक्त्या भक्त्या च स्तुतेभ्यः स्तावकः स्वात्मनः फलमभिलषन्नेवमित्यादिना आह—एवमुक्तप्रकारेण अशेषपापहारिभिः परस्परविलक्षणनामविशेषैरनुपमाचिन्त्यानंतगुणोपेताः मए-मया अभित्थुया-अभिष्टुता भगवंतः, विहुयरयमला-निरावरणा इत्यर्थः। पहीणजरमरणा—प्रक्षीणजरमरणा मुक्ता इत्यर्थः। चउवीसंपि चतुर्विंशतिरपि। तित्थयरा-तीर्थकराः, जिणवरा-देशजिनेभ्य उत्कृष्टा मे स्तावकस्य पसीयंतु-प्रसन्ना भवंतु।

कित्तिय वंदिय महिया—कीर्तिता वाचा, वंदिता मनसा, महिताः पूजिताः कायेन एदे—एते चतुर्विंशतितीर्थकराः लोगुत्तमा-सकलजनेभ्य

उत्कृष्टाः सिद्धा-कृतकृत्याः। इत्थंभूता भगवंतो दिंतु-प्रयच्छन्तु। किं तदि-त्याह आरोग्गेत्यादि। आरोग्गणाणलाहं-परिपूर्णज्ञानलाभं केवलज्ञान-प्राप्तिमित्यर्थः। कथं आरोग्यं ज्ञानं उच्यते इति चेत् व्युत्पत्तितः। तथाहि—रोग इव रोगो ज्ञानावरणं ज्ञानस्वरूपोपघातकत्वात्। न विद्यते रोगोऽस्येत्यरोगं तस्य भाव आरोग्यं तेन युक्तं ज्ञानं आरोग्यज्ञानं निखिल-ज्ञानावरणप्रत्त्ययप्रभवं ज्ञानमित्यथः। अथवा रोगो मिथ्यात्वं ज्ञानस्य विपर्ययहेतुतयोपपीडकत्वात्, तेन रहितं यद्विज्ञानपंचकं तदारोग्यज्ञान-मिति ग्राह्यम्। समाहिं च-धर्म्यं शुक्लध्यानं च समाधिः चारित्रमित्यर्थः। बोहिं-बुध्यते यथावत्पदार्थस्वरूपं येन स तावद्बोधिः सम्यग्दर्शनमित्यर्थः। रत्नत्रयलाभं मे प्रयच्छन्त्वित्यर्थः।

चंदेहिं णिम्मलयरा-चंद्रेभ्यो निर्मलतराः प्रक्षीणाशेपावरणत्वात्। आइच्चेहिं अहियपहा-आदित्येभ्योऽधिकप्रभाः अन्तः सकललोकोद्योत-केवलज्ञानप्रभासमन्वितत्वात्,बहिश्चासाधारणदेहदीप्तियुक्तत्वात्। सत्ता-प्रशस्ताः परमोपशमप्राप्ता वा। अहियं पयासंता इति च क्वचित्पाठः। आदित्येभ्योऽधिकं यथा भवत्येवं पदार्थान्प्रकाशयन्तः। सायर इव-गंभीरा-अलक्ष्यमाणगुणरत्नपरिमाणत्वात्,सिद्धा-परीतसंसारत्वात्। मम-मे स्तुतिकर्तुः सिद्धिं-सकलकर्मविप्रमोक्षं दिशंतु-प्रयच्छन्त्विति।

ईर्यापथ-विशुद्धिः।

पडिक्कमामि! भंते इरियावहियाए विराहणाए अणागुत्ते, अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीज्जुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणय-वियडियपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदा-

विदा वा, किरिच्छिदा वा, लेसिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाणचंकमणदो वा तस्स उत्तरगुणं तस्स पायच्छित्त-करणं तस्स विसोहिकरणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

टीका—पडिक्कमामीत्यादि। भंते-भगवन् पडिक्कमामि-कृतदोष-निराकरणं करोमि। कस्यां सत्यां? विराहणाए-विराधनायां प्राणिपीडायां। कथंभूतायां? इरयावहियाए—ऐर्यापथिक्यां। कथंभूते मयि सति या विराधना जाता? अणागुत्ते-मनोवाक्कायगुप्तिरहिते। क्वेत्याह अइगमणेत्यादि। अइगमणे—अतिगमने शीघ्रगमने। णिग्गमणे—निर्गमने प्रथम-क्रियाप्रारंभे। ठाणे-स्थितिक्रियायां। चंकमणे-पादविक्षेपे आकुंचनप्रसारणादिरूपे। पाणुग्गमणे-उच्छ्वासनिःश्वासलक्षणप्राणानामुद्गमने प्रवर्त्तमाने यदि वा द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्राणाः तेषु उद्गमने स्वप्रमादादुपरि गमने। बीजुग्गमणे—बीजस्योपरि गमने। हरिदुग्गमणे—हरितकायिकस्योपरि गमने, उच्चारपस्सवणेत्यादि उच्चारः पुरीषः, प्रस्रवणं मूत्रं, खेलसिंहाणय-खेलो निष्ठीवनं, सिंहाणयं-श्लेष्मा वियडिपयट्ठावणियाए-विकृतिप्रतिष्ठापनिकायामित्युपलक्षणं कुंडिकाद्युपकरणप्रतिष्ठापनिकायां। एतेषु स्थानेषु। ये जीवा-एकेंद्रियादयः पंचेंद्रियपर्यन्ताः। णोल्लिदा-स्वे स्वे स्थाने गच्छन्तो निरुद्धाः। पेल्लिदा-स्वेष्टस्थानादन्यत्र प्रक्षिप्ताः। संघट्टिदा-अन्योन्यं संघट्टनेन संपीडिताः। संघादिदा—पुंजीकृताः। उद्दाविदा-मारिताः। परिदाविदा-परितापिताः। किरिच्छिदा-चूर्णिताः। लेसिदा-मूर्च्छां प्रापिताः। छिंदिदा-कर्तिताः। भिंदिदा-विदारिताः। ठाणदो वा—स्वस्थाने एव स्थिताः। एते एवंविधाः कृताः। ठाणचंकमणदो वा-स्वस्थानाच्चंक्रमणतो गच्छन्तः। एवं विराधनायां जातायां प्रतिक्रमणाय प्रवृत्तोऽहं, जाव अरहंताणं-यावत्कालमर्हतां णमोक्कारं करेमि-नमस्कारं करोमि। ताव कायं वोस्सरामि-तावत्कालं कायं व्युत्सृजामि त्यजामि। कथंभूतं कायं? पावकम्मं—पापं

कर्म यस्य यस्माद्वा। दुच्चरियं-दुष्टं चरितं यस्य यस्माद्वा। किंविशिष्टं नमस्कारमित्याह तस्सेत्यादि—तस्य प्रतिक्रमणस्य क्रियमाणस्योत्तरगुणं कृतदोषनिराकरणहेतुतया उत्कृष्टं, तस्स पायच्छित्तकरणं—तस्य विराधनाप्रभवदोषस्य प्रायश्चित्तकरणं प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तं स क्रियते येन नमस्कारेण। तस्स विसोहिकरणं-तस्य विराधनोपार्जितदुष्कृतस्य विसोहिकरणं विशुद्धिकारकं ईर्यापथोपार्जितकर्मणः क्षयकारकमित्यर्थः ॥

आलोचना—

इच्छामि भंते, आलोचेउं इरियावहियस्स। पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमचउदिसविदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोसेण डवडवचरियाए पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

टीका—इच्छामीत्यादि। भंते!—भगवन् इच्छामि कर्तुं। कां? आलोचनां निंदागर्हारूपा ह्यालोचना। तत्र कृतस्य दोषस्य आत्मसाक्षिकं हा दुष्टं कृतमित्यादि चेतसि परीभावनं निंदा, गुर्वादिसाक्षिकं तदेव गर्हेति। कस्यालोचना? इरियावहियस्स—ऐर्यापथिकस्य प्रमाददोषस्य। मार्गे गच्छता हि भव्येनेत्थं गन्तव्यमित्याह पुव्वुत्तरेत्यादि। पुव्वुत्तर-दक्खिणपच्छिमचउदिसविदिसासु—पूर्वोत्तरदक्षिणपश्चिमलक्षणासु चतुर्दिक्षु तथा विदिक्षु, विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा—चतुर्हस्तप्रमाणं युगं तदन्तर्गतदृष्टिना, भव्वेण—भव्येन, दट्ठव्वा—द्रष्टव्या भवन्ति एकेन्द्रियादयो जीवाः। तत्र च पमाददोसेण—प्रमाददोषेण। डवडवचरियाए—अतिरभसादूर्ध्वमुखस्येतस्ततो गमनं डवडवचर्या तया, पाणभूदजीवसत्ताणं—तत्र विकलेंद्रियाः प्राणाः, वनस्पतिकायिका भूताः, पंचेंद्रियाः जीवाः, पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः सत्त्वाः। तदुक्तं—

द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्राणा भूतास्ते तरवः स्मृताः।
जीवाः पंचेंद्रिया ज्ञेयाः शेषाः सत्त्वाः प्रकीर्तिताः॥ १॥

इति तेषां उवघादो—उपघातः पीडा, कदो वा कारिंदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो—कृतः, कारितः, क्रियमाणो वा समनुमतः। तस्स मिच्छा मे दुक्कडे—तस्योपघातस्य संबंधिनि दुक्कडे—दुष्कृते मिच्छा—निष्फलता मे भवतु। दुक्कडमिति च क्वचित्पाठः। तत्र तस्यैकेंद्रियाद्युपघातस्य संबंधि दुष्कृतं पापं मे मिथ्या निष्फलं भवत्विति।

सिद्धभक्तिः।

(१)

परापरसिद्धिस्वरूपसंपन्नान्परमेष्ठिनः सिद्धानित्यादिना स्तौति—

सिद्धानुद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदयान्साधितात्मस्वभावान्
वंदे सिद्धिप्रसिद्ध्यै तदनुपमगुणप्रग्रहाकृष्टितुष्टः।
सिद्धिःस्वात्मोपलब्धिःप्रगुणगुणगणोच्छादिदोषापहारा-
द्योग्योपादानयुक्त्या दृषद इह यथा हेमभावोपलब्धिः॥१॥

—स्रग्धरा छंदः।

टीका—सिद्धान्वंदे इत्यादि। सिद्धान्—सदाकर्ममलैरस्पृष्टान्। अंजनगुटिकादिसिद्धानां च व्यवच्छेदार्थं उद्धूतकर्मप्रकृतिसमुदया-नित्याह—कर्मणां प्रकृतयः स्वभावाः तासां समुदयः संघातः उद्धूतो ध्वस्तः कर्मप्रकृतिसमुदयो यैस्ते तथोक्तास्तान्। पुनरपि कथम्भूतानित्याह साधितात्मस्वभावान्—साधित आत्मनः स्वभावोऽनंतज्ञानादिलक्षणं निजं स्वरूपं यैस्तान्। अनेन नित्यज्ञानाद्याधारतेश्वरस्य प्रत्युक्ता। किमर्थमित्थंभूतान्सिद्धान्वंदे इत्याह सिद्धिप्रसिद्ध्यै—सिद्धेः प्रसिद्धिः प्राप्तिस्तस्यै। किंविशिष्टः सन्नहं वंदे इत्याह तदनुपमेत्यादि—न विद्यते उपमा येषां ते अनुपमास्ते च ते गुणाश्च तदनुपमगुणास्त एव प्रग्रहो

रज्जुस्तेनाकर्षणमाकृष्टिस्तया तुष्टो हृष्टः । अथ का सिद्धिरित्याह सिद्धिरित्यादि—स्वस्य जीवस्यात्मा अनंतज्ञानादिस्वरूपं तस्योपलब्धिः प्राप्तिः सैवसिद्धिर्नान्या । कस्मादसौ भवति इत्याह, प्रगुणेत्यादि—प्रगुणा द्रव्यान्तरासाधारणा गुणा ज्ञानादयो धर्माः प्रकृष्टा वा यथार्थप्रकाशकत्वादयो गुणा धर्मा येषां प्रकृष्टो वा गुणो गुणाकारोऽनंतज्ञानलक्षणो येषां ते प्रगुणास्ते च ते गुणाश्च तेषां गणः संघातस्तमुच्छादयंति स्थगयन्ति इत्येवंशीलास्ते च ते दोषाश्च ज्ञानावरणादयस्तेषामपहारो निरासस्तस्मात्पूर्वोक्ता सिद्धिर्भवति । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन दृढयन्नाह योग्येत्यादि–योग्यानि उपकारकारकाणि तानि च तान्युपादानानि च धवनधापनादिकारणानि योजनं युक्तिस्तेषां युक्तिर्योग्योपादानयुक्तिस्तया । दृपदो धातुपाषाणादिह जगति यथा येन धवनधापनादिव्यापारतः किट्टकालिकादिविवेकेन हेमभावोपलब्धिः सुवर्णसद्भावाप्तिरिति ॥ १ ॥

नाभावः सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभागी ।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुपसमाहारविस्तारधर्मा
ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२

टीका–नाभाव इत्यादि, कैश्चिद्बौद्धवैशेषिकैरभावरूपा सिद्धिरभ्युपगता तस्याः प्रदीपनिर्वाणप्रख्यत्वाभ्युपगमात् । यथैव हि प्रदीपः स्नेहक्षयाद्दिशं विदिशं वा गत्वा न तिष्ठति किंतु निर्मूलतो नश्यति एवं चित्तसंततेः क्लेश-क्षयादभावो भवति इत्यत्राह–नाभावः सिद्धिरिष्टा । न हि कश्चित् प्रेक्षापूर्वकारी आत्मविनाशाय प्रयतते । तर्हि बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारलक्षणानां नवानामात्मविशेषगुणानां अत्यन्तोच्छेदः सिद्धि भवत्विति यौगास्तन्मतनिरासार्थमाह न निजगुणहतिरिति, सिद्धिरिति संबंधः । कुत एतदित्याह तदित्यादि—तेषां तपांसि तैर्न युक्तेर-

घटनात्। न हि कश्चित्सर्वथा आत्मविनाशाय आत्मगुणप्रध्वंसाय वा व्रतमनुतिष्ठति। आत्मनो दुर्गतिरक्षणार्थं गुणोत्कर्षार्थं च तदनुष्ठानप्रतीतेः। तथात्मन एवाभावात्कस्यासौ सिद्धिः स्यादिति चार्वाकः अत्राह अस्त्यात्मेति। किंविशिष्टः? अनादिबद्धः न विद्यते आदिरस्येत्यनादिः। अनेन गर्भादिमरणपर्यंतता तस्य निरस्ता। अनादिश्चासौ बद्धश्चेति। यदि वा न विद्यते आदिः अस्येत्यनादिः कर्मसन्तानोऽनादिना बद्धः अनादिबद्ध इत्यनेन प्रकृतिर्बध्यते प्रकृतिर्विमुच्यते आत्मा तु सदैव मुक्त इति ब्रुवाणः सांख्यः प्रत्युक्तः। पुनरप्यसौ विशेष्यते। स्वकृतजफलभुगिति—स्वेनात्मना कृतं स्वकृतं तस्माज्जातं तच्च तत्फलं च तद्भुंक्ते इति। अनेनापि कर्मणामकर्ता आत्मा तत्फलस्य भोक्तेति सांख्यमतं निरस्तम्। कथं तर्हि मुक्तोऽसौ स्यादित्यत्राह तदित्यादि—तस्य स्वकृतस्य कर्मणः फलोपभोगद्वारेण क्षयान्मोक्षं कृत्स्नकर्मप्रक्षयलक्षणं भजत इत्येवंशीलः। पुनरपि कथंभूतोसावित्याह ज्ञातेत्यादि–ज्ञाता द्रष्टा ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावः न पुनर्जडश्चैतन्यमात्रस्वरूपो वा। पुनरपि किंविशिष्टः? स्वदेहप्रमितिः—स्वदेहस्यैव प्रमितिः परिमाणं यस्यासौ स्वदेहप्रमितिरित्यनेन सांख्यमीमांसकयोगकल्पितमात्मनो व्यापित्वं प्रत्युक्तं, यदि स्वदेहप्रमितिरसौ कथं हस्तिशरीरपरिमाणः सन् कुंथुशरीरपरिमाणः स्यादित्याह उपसमेत्यादि—स्वोपात्तकर्मवशात्स्वप्रदेशानामुपसमाहरणं संकोचनं उपसमाहारः तद्वशात्तेषां विस्तरणं विसर्पणं विस्तारस्तौ धर्मौ यस्यासौ तद्धर्मा प्रदीपवत्। यथा प्रदीपो महदल्पभाजनप्रच्छादितः प्रदेशसंहरणोपसर्पणवशात्तद् व्याप्नोति एवमात्माऽपि महदणुशरीरमिति। पुनरपि कीदृशोसावित्याह ध्रौव्येत्यादि–ध्रौव्योत्पत्तिव्ययो आत्मा स्वभावो यस्यासौ सदात्मेत्यनेन सर्वथा नित्यत्वादात्मन उत्पादव्ययाभाव इति वदंतः सांख्यमीमांसकयौगाः प्रत्युक्ताः सुखादिरूपतया आत्मन उत्पादविनाशप्रतीतेः। उत्पादविनाशस्वभावतैव ज्ञानमात्रस्वभावे आत्मनि न ध्रौव्यरूपतेति बौद्धमतमप्यनेन प्रत्याख्यातं। स एवाहं बालकुमाराद्यवस्था-

यामिति प्रत्यभिज्ञानादात्मनो ध्रौव्यप्रतीतेः । पुनरपि कथंभूतोसावित्याह स्वेत्यादि--स्वे आत्मीयास्ते च ते ज्ञानादिगुणाश्च तैर्युतो ज्ञानाद्यात्मक इत्यर्थः । इतोऽस्मात्प्रकारादन्यथा स्वगुणात्मकत्वाभावप्रकारेण न साध्यसिद्धिः स्वरूपोपलब्धिरूपा ॥२॥

स त्वन्तर्बाह्यहेतुप्रभवविमलसद्दर्शनज्ञानचर्या—
संपद्धेतिप्रघातक्षतदुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्यसारैः ।
कैवल्यज्ञानदृष्टिप्रवरसुखमहावीर्यसम्यक्त्वलब्धि-
ज्योतिर्वातायनादिस्थिरपरमगुणैरद्भुतैर्भासमानः ॥३॥

टीका—स त्वतंर्बाह्येत्यादि । स पुनरात्मा भासमानः स्वयंभूः संपन्न इति संबंधः । कैरसौ भासमानो? वक्ष्यमाणगुणैः । किंविशिष्टैरित्याह अन्तर्बाह्येत्यादि अन्तरभ्यन्तरो हेतुर्दर्शनमोहादेः क्षयोपशमादिः, बाह्यो हेतुर्गुरूपदेशादिः ताभ्यां प्रभवो यासां ताश्च ता विगतमलाश्च ताः सत्यशोभनाश्च दर्शनज्ञानचर्याश्च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणीत्यर्थः, तासां संपत् संपत्तिः सैव हेतिः प्रहरणं तया प्रकृष्टो निर्मूलोन्मूलनसमर्थो घातः तेन क्षता निर्मूलता चासौ दुरितता च घातिकर्मचतुष्टयता तया व्यंजितः प्रकटीकृतोऽचिन्त्यः सारो माहात्म्यं येषां तैः । कैरित्याह कैवल्येत्यादि—ज्ञानं च दृष्टिश्च ज्ञानदृष्टी कैवल्ये च ते ज्ञानदृष्टी च ते च प्रवरसुखं च महावीर्यं च सम्यक्त्वं च । लब्धिशब्देन नवकेवललब्धीनां मध्ये दानलाभभोगोपभोगचारित्रलक्षणाश्चतस्रो लब्धयो गृह्यन्ते अन्यासां स्वरूपेणैवोपात्तत्वात् । लब्धयश्च ज्योतिश्च भामंडलं वातायनं च चामरं आदिशब्दाच्छत्रत्रयादिपरिग्रहः तान्येव स्थिराः शाश्वताः परमा अन्यजनासंभविनो गुणा घातिक्षयजा देवोपनीताश्च धर्माः । कथंभूतैस्तैरद्भुतैरचिन्त्यैः ॥ ३ ॥

किं कुर्वन्नसौ स्वयंभूः प्रवृत्त इत्याह—

जानन्पश्यन्समस्तं सममनुपरतं सम्प्रतृप्यन्वितन्वन्
धुन्वन्ध्वान्तं नितांतं निचितमनुसभं प्रीणयन्नीशभावम् ।
कुर्वन्सर्वप्रजानामपरमभिभवन् ज्योतिरात्मानमात्मा
आत्मन्येवात्मनासौ क्षणमुपजनयन्सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः ॥ ४ ॥

टीका—जानन्नित्यादि। जानन्पश्यन। किं तत् ? समस्तं–लोकालोकं। कथं ? समं युगपत्। किं कदाचिन्नेत्याह अनुपरतं–निरंतरं। संप्रतृप्यन्–सम्यक्तृप्तिं व्रजन्, वितन्वन्–अनंतं कालं व्याप्नुवन्। धुन्वन्–निराकुर्वन्। किं तत् ? ध्वान्तं मोहरूपं तमः। नितांतं–निरवशेषं अत्यर्थेन वा। निचितमुपार्जितं निबिडं वा। अनुसभं–सभामनु। प्रीणयन्नमृतोपमैर्वचोभिराप्याययन्। ईशभावं—प्रभुत्वं कुर्वन्। सर्वप्रजानां मध्ये अपरं ज्योतिरीश्वरादिज्ञानमादित्यादिप्रकाशं च केवलज्ञानेन देहदीप्त्या वाभिभवन्–तिरस्कुर्वन्। असौ ज्ञाता द्रष्टेत्यादि प्राक् प्रसाधितस्वभाव आत्मा, आत्मानं–स्वस्वरूपं। आत्मन्येव–स्वस्वरूपे एव न पररूपे। आत्मना–स्वस्वरूपेण। क्षणं–प्रतिक्षणं। उपजनयन् निमग्नं कुर्वन्। स्वयं परोपदेशानिरपेक्षतया मोक्षमार्गमवबुध्य अनुष्ठाय च अनन्तज्ञानादिरूपेण भवतीति स्वयंभूः, प्रवृत्तः–संपन्नः ॥ ४ ॥

छिंदन्शेषानशेषान्निगलबलकलींस्तैरनंतस्वभावैः
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरुलघुकगुणैः क्षायिकैः शोभमानः ।
अन्यैश्चान्यव्यपोहप्रवणविषयसंप्राप्तिलब्धिप्रभावै-
रूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ॥५॥

टीका—छिंदन्नित्यादि। योसौ स्वयंभूः प्रवृत्तः आत्मा स धाम्नि संतिष्ठते अग्र्ये इति संबंधः। किं कुर्वन् ? छिंदन् विदारयन्। कान् ? निगलबलकलीन् निगलवद्बलं सामर्थ्यं येषां ते निगलबलाः ते च ते कलयश्च, कल्यंते मूलोत्तरप्रकृतिभेदेन संख्यायंते इति कलयः कर्मप्रकृतिविशेषास्तान्।

किंविशिष्टान् ? शेषान्—घातिभ्योऽन्यान् । तद्विशेषणमाह अशेषान् निरवशेषान् । इत्थंभूतोऽसौ कैः शोभमानः इत्याह तैरित्यादि—तैः सम्यग्दर्शनादिभिः । किंविशिष्टैः ? अनंतस्वभावैः—अनंतः स्वभावो येषां । न केवलं तैरेव किंतु सूक्ष्मत्वादिभिरपि । सूक्ष्मत्वं चाग्रथावगाहश्चा गुरुलघुकं च तान्येव गुणास्तैः । किंविशिष्टैः ? क्षायिकैः, न केवलं तैरेवापि तु अन्यैश्चतुरशीतिलक्षगुणांतर्वर्तिभिरागमसिद्धैः । किंविशिष्टैः ? इत्याह अन्येत्यादि-अन्येषामुत्तरोत्तरकर्मप्रकृतिविशेषाणां व्यपोहो निरासस्तेन प्रवणः कर्मविशुद्धो विषयः स्वात्मलक्षणो गोचरो यस्याः सा चासौ संप्राप्तिश्च लब्धिश्च तया लब्धः प्रभावो माहात्म्यं यैस्ते तथोक्तास्तैः । तथाभूतैर्गुणैः शोभमानः आत्मा किं यत्रैव मुक्तः तत्रैव तिष्ठत्यन्यत्र वा इत्याह—धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रे लोकाग्रे गत्वास्ते । अधस्तात्तिर्यग्वा गत्वा कस्मान्नास्ते इति चेदूर्ध्वं व्रज्यास्वभावादूर्ध्वगतिस्वभावादित्यर्थः । कथंभूतः ? समयमुपगतः-अणोरण्वंतरव्यतिक्रमलक्षणः समयस्तन्मध्ये इत्यर्थः ॥ ५ ॥

तत्र संतिष्ठमान आत्मा किं शरीरपरिमाणादधिकपरिमाणो भवति हीनपरिमाणो वेत्यत्राह—

अन्याकाराप्तिहेतुर्न च भवति परो येन तेनाल्पहीनः
प्रागात्मोपात्तदेहप्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तिः ।
क्षुत्तृष्णाश्वासकासज्वरमरणचराानिष्टयोगप्रमोह— जरा
व्यापत्त्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

टीका—अन्याकारेत्यादि । चरमशरीराकारादन्यो विलक्षण आकारो व्यापित्वं वटकणिकामात्रत्वं वा तस्याप्तिः प्राप्तिः तस्या हेतुः, न च नैव भवति अस्ति, परो अन्यो, येन कारणेन, तेन प्रागात्मोपात्तदेहादल्पहीनो मनाग्न्यूनः । किंविशिष्टः सन्नित्याह प्रागित्यादि—प्रागात्मोपात्तदेहस्य प्रतिकृतिः प्रतिबिंबं तस्या इव रुचिरो दीप्यमान आकारो यस्य स तथोक्तः । एवकारोवधारणार्थः । ईदृगाकार एवासौ नान्याकार इति । हि

स्फुटार्थे। मूर्तिः रूपरसगंधस्पर्शशब्दात्मिका सा यस्य न विद्यते ऽसावमूर्तिः। 'अमूर्त' इति च क्वचित्पाठः। तत्रोक्तरूपा मूर्तिरस्यास्तीति मूर्तो न मूर्तो अमूर्तः। एवंविधस्यात्मनो यत्सौख्यं वर्तते तस्य न कश्चिदियत्तामवधारयितुं समर्थ इति दर्शयन् क्षुदित्याद्याह—क्षुच्च तृष्णा च श्वासश्च कासश्च ज्वरश्च मरणं च जरा चानिष्टयोगश्च प्रकृष्टो मोहः प्रमोहश्च विविधा आपत् आपत्तिर्व्यापत्तिश्च ता आदिर्येषां तानि च तान्युग्राणि रौद्राणि दुःखानि च तानि प्रभवन्ति यस्मात्स चासौ भवश्च संसारश्च तस्य हतेः हननाद्वा को न कश्चिदस्य एतस्य सौख्यस्य माता इयत्तावबोधकः॥ ६॥

किंविशिष्टं तत्सौख्यमित्याह—

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं
वृद्धि-ह्रासव्यपेतं विषयविरहितं निष्प्रतिद्वन्द्वभावम्।
अन्यद्रव्यानपेक्षं निरुपममितं शाश्वतं सर्वकालं
उत्कृष्टानंतसारं परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्॥७॥

टीका—आत्मेत्यादि। आत्मैवोपादानं तस्मात्सिद्धं, न प्रकृत्युपादानं, नापि नित्यं। स्वयमतिशयवत्परमातिशयं प्राप्तं। वीतबाधं बाधारहितं। विशालं विस्तीर्णं सर्वात्मप्रदेशव्यापीत्यर्थः। वृद्धिरुत्कर्षो ह्रासोऽपकर्षः ताभ्यां व्यपेतं तौ वा व्यपेतौ यस्य। विषयविरहितं संसारिकसुखवद्विषयोत्थं न भवति। प्रतिद्वंद्वेन प्रत्यनीकरूपेण भवनं प्रतिद्वंद्वभावः दुःखं तस्मान्निष्क्रांतं निष्प्रतिद्वंद्वभावं। अन्यच्च तद् द्रव्यं च सद्वेद्यादिकर्म दिव्यं स्रग्वनितादि चंदनादि च तन्नापेक्षत इत्यन्यद्रव्यानपेक्षं। उपमाया निष्क्रांतं निरुपमं। अमितं अनंतं। शाश्वतमविनश्वरं। सर्वः कृत्स्नो निरवशेषः कालो यस्य। अत्र हेतुहेतुमद्भावो द्रष्टव्यो यत एव शाश्वतं तत एव सर्वकालं। उत्कृष्टः परमप्रकर्षप्राप्तः अनन्तो निरवधिः सारो

माहात्म्यः यस्य परममिंद्रादिसुखातिशायि सुखं अतो हेतोस्तस्य पूर्वोक्त-लक्षणोपेतस्य। अग्रे धाम्नि संतिष्ठमानस्य सिद्धस्य जातमिति ॥७॥

अतः सांसारिकसुखसाधकैरन्नादिभिर्न तस्य किंचित्प्रयोजनमित्याह—

नार्थः क्षुत्तृड्विनाशाद्विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या—
नास्पृष्टैर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनैर्ग्लानिनिद्राद्यभावात्।
आतंकार्तेरभावे तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

टीका—नार्थ इत्यादि। नार्थो न प्रयोजनं। कैरन्नपानैः क्षुत्तृड्विनाशात्। कथंभूतैर्विविधरसयुतैः बहुप्रकाररसोपेतैः। तथा गंधमाल्यैर्नार्थः। गंधाः यक्षकर्दमादयो माल्यानि पुष्पाणि तैः। कुतो नार्थ इति चेत् अशुच्यानास्पृष्टेः न विद्यते शुचिगुणोस्या इति अशुचिस्तया इति अनास्पृष्टेः। तथा न हि नैव मृदुशयनैरर्थः। कुतो ग्लानिनिद्राद्यभावात्—ग्लानिनिद्रे प्रसिद्धे आदिशब्देन ज्वरादिपरिग्रहस्तेषामभावात्। अत्रार्थे दृष्टांतमाह आतंकेत्यादि। आतंकः सहसाभावो सद्यः प्राणहरो व्याधिः रोगः तेन कृता अर्तिः पीडा तस्या अभावे, उपशमनं उपशांतिः यस्मात्तच्च तद्भेषजं च तस्य अनर्थतावत् आनर्थक्यवत्। अत्रैवार्थे आबालप्रसिद्धमपरमपि दृष्टांतमाह दीपेत्यादि—दीपानर्थक्यमिव। क्क व्यपगततिमिरे देशे दृश्यमाने समस्ते वस्तुजाते ॥ ८ ॥

तादृक्सम्पत्समेता विविधनयतपःसंयमज्ञानदृष्टि—
चर्यासिद्धाः समन्तात्प्रविततयशसो विश्वदेवाधिदेवाः।
भूता भव्या भवंतः सकलजगति ये स्तूयमाना विशिष्टै—
स्तान्सर्वान्नौम्यनंतान्निजिगमिषुररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥

टीका—तादृगित्यादि। तादृशामनंतज्ञानादिगुणानां संपदा समेता युक्ताः। नया नैगमादयः, तपांसि अनशनादीनि द्वादशविधानि,

संयमाः सामायिकादयः पंच, ज्ञानानि मत्यादीनि पंच, दृष्टिः सम्यग्दर्शनं तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं, चर्या चारित्रं त्रयोदशप्रकारं, विविधाश्च ता नयतपःसंयमज्ञानदृष्टिचर्याश्च ताभिः सिद्धाः कृतकृत्यतामापन्नाः। समंतात्सर्वतः, प्रविततं प्रविजृम्भितं यशो येषां। विश्वे समस्ताः ते च ते देवाश्च तेषां अधिदेवाः स्वामिनः। भूताः अतीताः। भव्याः भाविनः। भवंतः वर्तमानाः। सकलजगति ये स्तूयमानाः नमस्क्रियमाणाः। कैर्विशिष्टैः भव्यजनैः। तान्पूर्वोक्तान् सिद्धान्सर्वान्नौमि। अनेन नमस्कर्तुः स्तुतिविषया भक्तिः स्तुत्या दर्शिता। कियंतः सर्वानित्याह अनंतान्। किं कर्तुमिच्छुः निजिगमिषुः नियमेन गंतुमिच्छुः प्राप्तुमिच्छुः। अरं झटिति। किं तत् तत्स्वरूपं तेषां सिद्धानां स्वरूपं अनंतज्ञानादि। कथं नौमीत्याह त्रिसन्ध्यमिति॥ ६॥

प्राकृत-सिद्धभक्तिः।

अट्ठविहकम्ममुक्के अट्ठगुणड्ढे अणोवमे सिद्धे।
अट्ठमपुढविणिविट्ठे णिट्ठियकज्जे य वंदिमो णिच्चं॥१॥

टीका—अट्ठविहेत्यादि गाहाबंधः। सिद्धे—सिद्धान्। वंदिमो—वंदामहे। कथं? णिच्चं—नित्यं सर्वकालं। किंविशिष्टान्? अट्ठविहकम्ममुक्के—ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मप्रकृतिरहितान्, अट्ठगुणड्ढे—'सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं। अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठगुणा हुंति सिद्धाणं' इत्यतैरष्टगुणैराढ्यान्। भूयोपि कथम्भूतान्? अणोवमे—अनुपमान्। पुनरपि कीदृशान्? अट्ठमपुढविणिविट्ठे—मोक्षशिलास्थितान्। पुनरपि कथंभूतान्? णिट्ठियकज्जे य—परिसमाप्तकार्यांश्च मोक्षलक्षणस्यापि कार्यस्य प्रसाधितत्वात्॥ १॥

अधुना सिद्धानां भेदान्कथयँस्तित्थयरेत्याद्याह—

तित्थयरेदरसिद्धे जलथलआयासणिव्वुदे सिद्धे।
अंतयडेदरसिद्धे उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे ॥ २ ॥

टीका—तित्थयरेत्यादि। तीर्थकरेतरसिद्धानिति स्वरूपतस्तेषां भेदः। जलथलआयासणिव्वुदे सिद्धे—जलादिषु निर्वृतान्निर्वाणं गतान्सिद्धानित्याधारभेदाद्भेदः। अंतयडेदरसिद्धे—अंतकृदितरसिद्धानिति धर्मभेदाद्भेदः। उक्कस्सजहण्णमज्झिमोगाहे—उत्कृष्टजघन्यमध्यमशरीरावगाहसिद्धानिति अयं शरीराश्रितावगाहधर्मभेदाद्भेदः ॥२॥

उड्ढमहतिरियलोए छव्विहकाले य णिव्वुदे सिद्धे।
उवसग्गणिरुवसग्गे दीवोदहिणिव्वुदे य वंदामि ॥ ३ ॥

टीका—उड्ढमहतिरियलोए—ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्विशिष्टे लोके सिद्धानित्ययं दिग्विशिष्टाधारभेदाद्भेदः। छव्विहकाले य—षड्विधकाले च णिव्वुदे सिद्धे—निर्वृतान्सिद्धानित्ययं कालभेदाद्भेदः। षड्विधः कालः दीक्षा, शिक्षा, आत्मसंस्कारः, गणपोषणः, भावना, सल्लेखना चेति षट्। अथवा अवसर्पिण्यास्त्रितयं तथोत्सर्पिण्याश्च। अथवा सामान्येन क्षेत्रांतरानीताः षट्सु कालेषु सिद्धाः। तथा च सुषमसुषमः, सुषमः, सुषमदुःषमः, दुःषमसुषमः, दुःषमाऽतिदुःषमश्चेति। उवसग्गणिरुवसग्गे—उपसर्गे तदभावे च सति निर्वृतानित्ययं उपसर्गजयादिधर्मकृतो भेदः। दीवोदहिणिव्वुदे य वंदामि—द्वीपोदधिनिर्वृतांश्च वंदे इत्याधारविशेषकृतो भेदः ॥ ३ ॥

पच्छायडेय सिद्धे दुगतिगचदुणाणपंचचदुरजमे।
परिवडिदापरिवडिदे संजमसम्मत्तणाणमादीहिं ॥ ४ ॥

टीका—पच्छायडेय सिद्धे दुगतिगचदुणाणपंचचदुरजमे—पश्चात्कृत्य द्वित्रिचतुर्ज्ञानानि, एकेन केवलज्ञानेन सिद्धाः। तत्र

केचिद् द्वयोर्मतिश्रुतज्ञानयोः पूर्वं स्थित्वा, केचित् त्रिषु मतिश्रुतावधिषु मतिश्रुतमनःपर्ययेषु वा, केचित्तु चतुर्षु मतिश्रुतावधिमनःपर्ययेषु पश्चात्केवलं उत्पाद्य सिद्ध्यन्तीति । तथा पंचसंयमान्—परिहार-शुद्धिसंयमस्य केषांचिदभावाच्चतुःसंयमान्पश्चोत्कृत्य उत्पाद्य यथाख्या-तेन एकेन सिद्धाः । इत्यनेन निर्वृत्तिहेतुभूतगुणभेदाद् भेदः । परि-वडिदापरिवडिदे--परिपतिताऽपरिपतितान् । केभ्य इत्याह संजमसं-मत्तणाणमादिहिं---संयमश्च, सम्यक्त्वं च, ज्ञानं च आदिशब्दाद् ध्यानलेश्यादिपरिग्रहः तेभ्यः ॥४॥

साहरणासाहरणे सम्मुग्घादेदरे य णिव्वादे ।
ठिदपलियंकणिसण्णे विगयमले परमणाणगे वंदे ॥५॥

टीका—साहरणासाहरणे—उपसर्गेतरवशात्साभरणासाभरणसिद्धाः साहृतासाहृतसिद्धा वा भवंति । सम्मुग्घादेदरे य णिव्वादे—समुद्घा-तेतरनिर्वृतान् । आयुष्यंतमुहूर्तेऽहीनतरकर्मणां विषमस्थितिकत्वं केवलज्ञानेन ज्ञात्वा दण्डकपाटादिकं विधाय समस्थितिकानि कर्माणि कृत्वा ये सिद्धास्ते समुद्घातसिद्धाः । ठिदपलियंकणिसण्णे—स्थित उर्ध्वकायोत्सर्गः पर्यंक उपविष्टकायोत्सर्गः ताभ्यां निषण्णान् व्यवस्थितान् । विगयमले—कर्ममलरहितान्, एतान् सर्वान् परम-णाणगे-परमज्ञानं केवलज्ञानं तद्गतं प्राप्तं यैस्तान् वंदे ॥५॥

इदानीं द्रव्यतो ये पुंवेदाः क्षपकश्रेण्यारूढाश्चात्मानस्ते सिद्ध्यन्ति भावतस्तु त्रिवेदा अपीति दर्शयति—

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा ।
सेसोदयेण वि तहा ज्झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ॥६॥

टीका—पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा—भावपुंवेद-मनुभवंतो ये पुरुषाः क्षपकश्रेणीमारूढाः, न केवलं भावपुंवेदेनैव अपि तु

सेसोदयेण वि तहा—अभिलाषरूपभावस्त्रीनपुंसकवेदोदयेनापि तथा क्षपकश्रेण्यारूढप्रकारेण। झाणुवजुत्ता य—शुक्लध्यानोपयुक्ताश्च ते द्रव्यपुंवेदास्तु सिज्झंति—सिद्ध्यन्ति ॥६॥

पत्तेयसयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा।
पत्तेयं पत्तेयं समये समयं पणिवदामि सदा ॥७॥

टीका—पत्तेयसयंबुद्धा बोहियबुद्धा य होंति ते सिद्धा—ये हि वैराग्यकारणं किंचिद् दृष्ट्वा वैराग्यं गतास्ते प्रत्येकबुद्धाः। प्रत्येकात्कारणाद्बुद्धाः प्रत्येकबुद्धाः यथा ऋषभादयः। ये तदद्दृष्ट्वा स्वयमेव वैराग्यं गतास्ते स्वयंबुद्धाः। ये भोगासक्ताः शरीरादिषु अशाश्वतादिरूपं प्रदर्श्य वैराग्यं नीतास्ते बोधितबुद्धाः। ते प्रागुक्ता सिद्धा एव भवंति। पत्तेयं पत्तेयं—प्रत्येकं। समये—एकस्मिन्समये। समयं च युगपच्च। तान् सिद्धान्। पणिवदामि सदा—प्रणिपतामि सदा। समयं समयं चेति पाठः, तत्र प्रतिसमयं प्रणिपतामीत्यर्थः ॥७॥

कतिकर्मप्रकृतिविनाशेन ते सिद्धा भवन्तीति चेदुच्यते—

पणणवदुअट्ठवीसाचउतियणवदी य दोण्णि पंचेव।
बावण्णहीणबियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा ॥८॥

टीका—पणणवदुअट्ठवीसाचउतियणवदीय दोण्णि पंचेव—ज्ञानावरणीयं पंचभेदं, दर्शनावरणीयं नवभेदं, वेदनीयं द्विभेदं, मोहनीयमष्टाविंशतिभेदं, आयुश्चतुर्भेदं, नाम त्रिनवतिभेदं, गोत्रं द्विभेदं, अंतरायं पंचभेदमिति। बावण्णहीणबियसयपयडिविणासेण होंति ते सिद्धा—द्विपंचाशद्धीनद्विशतप्रकृतिविनाशेन अष्टचत्वारिंशच्छतप्रकृतिविनाशेनेत्यर्थः भवंति ते सिद्धाः ॥८॥

ते चैवंविधं सुखं प्राप्ताः इति दर्शयति—

अइसयमव्वाबाहं सोक्खमणंतं अणोवमं परमं।
इंदियविसयातीदं अप्पत्तं अच्चवं च ते पत्ता ॥९॥

टीका—सुगमं। अइसयमव्वाबाहं ते—सिद्धाः पत्ता—प्राप्ताः। किं तत्? सौख्यं। किंविशिष्टं? अतिशयवत्, अव्याबाधं, अनंतं, अनुपमं, प्रकृष्टं, इंद्रियविषयातीतं, अप्राप्तं, अच्यवनमिति ॥९॥

क्व स्थिताः कीदृशाश्च ते इत्याह—

लोयग्गमत्थयत्था चरमसरीरेण ते हु किंचूणा।
गयसित्थमूमगब्भे जारिसआयार तारिसायारा ॥१०॥

टीका—लोयग्गेत्यादि। लोयग्गमत्थयत्था—लोकाग्रमस्तकस्थाः, चरमसरीरेण—अन्त्यशरीरपरिमाणेन किंचूणा—किंचिदूनाः निबिडरूपतया तदात्मप्रदेशानामवस्थानात् नखत्वगादिशरीरपरिमाणहीनत्वाच्च। गयसित्थमूसगब्भे जारिस आयार तारिसायारा—गतसिक्थमूषागर्भे यादृश आकारो भवति तादृशाकाराः सिद्धाः भवंति ॥१०॥

इदानीं स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयते—

जरमरणजम्मरहिया ते सिद्धा मम सुभत्तिजुत्तस्स।
दिंतु वरणाणलाहं बुहयणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥११॥

टीका—ते उक्तविशेषणविशिष्टाः सिद्धाः मुक्ताः जरा वृद्धत्वं, मरणं प्राणापानवियोगः, जन्म मातुरुदरे उत्पत्तिः, तै रहिताः। मम सुभत्तिजुत्तस्स—सुभक्त्या युक्तस्य, दिंतु—ददतु। वरणाणलाहं—केवलज्ञानप्राप्तिं। बुहयणपरिपत्थणं—बुधजनैः परिप्रार्थना यस्य। अन्यत्सुगमं ॥११॥

स्तुतेर्विधिं प्ररूपयन् किंच्चेत्याह—

किच्चा काउस्सग्गं चउरट्ठयदोसविरहियं सुपरिसुद्धं।
अइभत्तिसंपउत्तो जो वंदइ लहु लहइ परमसुहं ॥१२॥

टीका—कृत्वा। कं? कायोत्सर्गं द्वात्रिंशद्दोषवर्जितं सुपरिसुद्धं-अतिभक्तिसंयुक्तो यो वन्दते स लघु लभते सिद्धिसुखं। उक्तं च—

घोडयलदाय खंभे कूडे माले य सबरवधुणिगले।
लंबुत्तरथणदिट्ठी वायस खलिणे जुगकविट्ठे॥
सीसपकंपियमुइयं अंगुलिभूविकारवारुणीपेई।
काउस्सग्गमुवट्ठिदो एदे दोसा परिहरिज्जो॥
आलोयणं दिसाणं गीवा उण्णामणं पणमणं च।
णिट्ठवणं आमरिसं काउस्सग्गं व वज्जेज्जो॥

घोडय इति—कायोत्सर्गस्थितो हि कश्चिदेकं पादं चालयति, अन्यं च स्थिरीकरोति। लदाय—अन्यश्च लतावच्छरीरं कंपयति। खंभे—स्तंभे, कुड्डे—कुड्यं वावष्टभ्य। माले—तुलायां मस्तकेनावष्टंभं कृत्वा कायोत्सर्गं ददाति। सबरवधु—शबरवधूवत् अग्रे हस्तौ दत्वा। णियले—दंडी, निगलप्रक्षिप्तपादवदतीव पादौ प्रसार्य। लंबुत्तरेत्येको दोषः—लंबमस्तकं अधोमुखं कृत्वा। उत्तरमस्तकं—ऊर्ध्वमुखं कृत्वा। थणदिट्ठी—स्तनयोर्दृष्टिं कृत्वा। वायस—काकवत्तिर्यगवलोकनं कृत्वा। खलिणे—कपिके दत्ते यथा घोटको मुखं चालयति तद्वन्मुखं चालयन्। जुग—युगयुक्तबलीवर्दवद् ग्रीवां तिर्यक् कृत्वा। कविट्ठे—कपित्थवन्मुष्टिं बध्वा। सीसपकंपिय—शीर्षं प्रकंपयन्। मुइयं—मूकवत्संज्ञां कुर्वन्। अंगुलि—अंगुल्या संज्ञां अंगुलिगणनं वा कुर्वन्। भूवियारा—भ्रूयुगं चालयन्। वारुणीपेई—पीतमद्यवदंगं घूर्णयन्। आलोयणं दिसाणं—दशदिशोऽवलोकनं कुर्वन्निति दश दिग्दोषाः। गीवा उण्णामणं च—ग्रीवायाः प्रसारणं। पणमणं च—प्रणमनं च ग्रीवायाः संकोचनं च कुर्वन्। निट्ठवणं—निष्ठीवनं कुर्वन्। आमरिसं—कंडूवशादंगघर्षणं कुर्वन्। द्वात्रिंशद्दोषान्समासादयति, अत एतान्दोषान्कायोत्सर्गे वर्जयेत्। तथाविधं च कायोत्सर्गं कृत्वा। अइभत्तिसंपउत्तो जो वंदइ सो लहु लहइ सिद्धिसुहं—अतिभक्तिसंप्रयुक्तो यो भव्यो वंदते स शीघ्रं प्राप्नोति मोक्षसुखं। कथं वंदते? चउरट्ठयदोसविरहियं सुपरिसुद्धं—द्वात्रिंशद्दोष-

वर्जितं सुपरिशुद्धं सुष्ठु अतिशयेन परि समंतान्निर्दोषं यथा भवति तथा यो वंदते। के ते वंदनायां द्वात्रिंशद्दोषा इति चेदुच्यंते—

अणादिदं च थद्धं च पविट्ठं परिपीडिदं।
दोलाइयमकुसीयं तहा कच्छवरिंगियं॥
मच्छुवत्तं मणोदुट्ठं वेइयावद्धमेव य।
भयसा चेव भयत्तं इड्ढिगारवगारवं॥
तेणिदं पडिणिदं चावि पदुट्ठं तज्जिदं तथा।
सद्दं च हीलिदं चावि तहातिवलिदं कुंचिदं॥
दिट्ठमदिट्ठं चावि संघस्स करमोचणं।
अलद्धमाणलद्धं हीणमुत्तरचूलियं॥
मूगं च दद्दरं चावि सुललिदं च आपच्छिमं।
वत्तीसदोसपरिसुद्धं किदिकम्मं पउंजये॥

तत्र अणादिदं--आदररहितं यो वंदते तस्य स दोषो भवति। थद्धं च—स्तब्धो भूत्वा। पविट्ठं–देवस्यात्यासन्नो भूत्वा। परिपीडिदं–हस्ताभ्यां जानुनी परिपीड्य। दोलाइदं—दोलायमानः। अंकुसं--अंकुशवत्करांगुष्ठौ ललाटे निवेश्य। कच्छवरिंगिदं--कच्छपवदुपविष्टः संचरन्। मच्छुवत्तं—मत्स्योद्वर्तनवत् एकपार्श्वेन स्थित्वा। मणोदुट्ठं—आचार्यादीनामुपरि चेतसि खेदं कृत्वा। वेइयावद्धं--जानुनो अपरिपीडयन्, बाहुभ्यां योगपट्टं कृत्वा। भयसा--गुरुणा विभीपितो, यदि देवान्न वंदिष्यसे तदा ज्ञास्यसीति। भयत्तं--स्वयमेव गुरुभ्यो भीतः। इड्ढिगारवं—वंदनां कुर्वतो मम चातुर्वर्ण्यसंघो भक्तो भविष्यति इति गारवं आत्मनो महत्त्वमिच्छन् आहारादिप्राप्तिं वा वांछन्। तेणिदं–यथा कश्चिन्न जानाति तथा चौर्येण वंदते। पडिणिदं--गुरोः प्रातिकूल्येन आज्ञाखंडनं कृत्वा। पदुट्ठं--कलहं कृत्वा क्षंतव्यमकुर्वन्। तज्जिदं—पार्श्ववर्तिनो भीषयन्। सद्दं च--वार्तां कथयन्। हीलिदं--पार्श्ववर्तिनां उपहासं

कुर्वन् । तिवलिदं--कटिहृदयग्रीवामोटनं कृत्वा । कुंचिदं--अंगं संकोच्य उत्तभ्य मस्तकं पराभृशित्वा । दिट्ठमदिट्ठं वा--यदि कश्चित्पश्यति तदा न वंदते यदि वा कश्चित्पश्यति तदा सोत्साहो भूत्वा वंदते अन्यथा अन्यथेति । संघस्स करमोयणं—ऋषीणां चेष्टिरियमिति मन्यमानः । अलद्धमाणलद्धं—यदा गुर्वादिभ्यः किंचिल्लभते तदा वंदनां करोति यदा न लभते तदा न करोति । यदि वा लाभे सोत्साहं तां करोति अलाभे निरुत्साहमिति । हीणं--क्रियाकांडकाले प्रमाणं हीनं कृत्वा । उत्तरचूलियं--क्रियाकर्मणः कालस्य वृद्धिं कृत्वा । मूगं च--मौनेन । दद्दुरं--महता शब्देन । सुललिदं च—गीतेन । कथंभूतं ? आ समंतात्पश्चिममिति । एतैर्दोषैर्विवर्जिता देववंदना कर्तव्येति । संस्कृताः सर्वा भक्तयः पादपूज्यस्वामिकृताः प्राकृतास्तु कुंदकुंदाचार्यकृताः ॥ १२ ॥

[1]अंचलिका—

इच्छामि भंते सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पयट्ठियाणं, णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोलिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

१—एषांचलिकायस्याः कस्याः सिद्धभक्तेरन्ते पठनीया ।

२—श्रुतभक्तिः ।

(१)

इदानीं सिद्धांस्तुत्वा श्रुतं स्तुवन् स्तोष्ये इत्याद्याह ।

स्तोष्ये संज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि ।
लोकालोकविलोकनलोलितसल्लोकलोचनानि सदा ॥१॥

टीका—स्तोष्ये-वंदिष्ये । कानि ? संज्ञानानि, सम्‌शब्दः सम्यगर्थः सच्छब्दो वा प्रशस्तार्थः । सम्यञ्चि यथार्थपरिच्छेतॄणि संति, प्रशस्तानि वा ज्ञानानि संज्ञानानि । अनेन ज्ञानविशेषणेन मिथ्याज्ञाननिवृत्तिः कृताभवति । सम्यग्दृष्टेर्मिथ्याज्ञानस्तुत्यनुपपत्तेः । कभूतानि ? परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि-परोक्षश्च प्रत्यक्षश्च परोक्षप्रत्यक्षौ, तावेव भेदौ विशेषौ ताभ्यां भिन्नानि विविक्तानि । पुनरपि किंविशिष्टानि इत्याह लोकेत्यादि—लोकश्चालोकश्च तयोर्विलोकनं परिज्ञानं तत्र लोलितः सोत्कण्ठः सन् प्रशस्तो लोकः सल्लोकः सम्यग्दृष्टिः तस्य लोचनानि चक्षूंषि । यथा लोचनव्यापारेण प्राणिनां पटादिपदार्थपरिज्ञानं भवति तथा एवंविधज्ञानव्यापारेण भव्यानां लोकालोकपरिज्ञानमिति । तानि स्तोष्ये सदा, लोचनानि वा सदेति संबंधः ॥ १ ॥

तत्र पंच संज्ञानेषु मध्ये आद्यं मतिज्ञानं स्तोतुमिच्छन्नभिमुखे-त्याद्यार्याद्वयमाह—

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं ।
बह्वाद्यवग्रहादिककृतषट्त्रिंशत्त्रिशतभेदम् ॥ २ ॥
विविधर्द्धिबुद्धिकोष्ठस्फुटबीजपदानुसारिबुद्ध्यधिकं ।
संभिन्नश्रोतृतया सार्धं श्रुतभाजनं वन्दे ॥ ३ ॥

टीका—वन्दे—स्तुवे। किं तत्? आभिनिबोधिकं—मतिज्ञानस्य संज्ञेयं 'मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं' इति वचनात्। अन्वर्था चेयं संज्ञा। तथाहि। अभिराभिमुख्ये, आभिमुख्यं च ज्ञानस्य योग्यदेश-कालस्वार्थग्राहित्वं। निर्नियमेन। नियमश्च चक्षुरादिज्ञानस्य रूपादौ स्वविषये संकरव्यतिकरव्यतिरेकेण प्रवृत्तिः। अभिनिबोध एव आभिनि-बोधिकमिति, 'विनयादित्वाट्ठण्' अभिमुखनियमितबोधनमित्यनेन वास्य निरुक्तिरुक्ता। कथंभूतमित्याह अनिंद्रियेंद्रियजं-इंद्रियाणि चक्षुरादीनि, अनिंद्रियं मनः तेभ्यो जातमित्यनेन तदुत्पत्तिकारणं कथितं। गुणदोष-विचारस्मृत्यादेर्मनोनिबंधनत्वात्। ऐंद्रियस्योभयनिमित्तत्वात्; कथं तर्हि तस्येंद्रियजत्वमिति चेत्? इंद्रियप्रधानतया तथा व्यपदेशात्। किंभेदं तदित्याह बह्वित्यादि—बहुरादिर्येषां बहुविधादीनां ते बह्वादयः, अवग्रह आदिर्येषामीहादीनां ते अवग्रहादिकाः, बह्वादयश्च अवग्रहादिकाश्च तैः कृतास्तत्कृताः षड्भिरधिकास्त्रिंशत्येषु तानि षट्त्रिंशानि 'तदस्मिन्नधिकं' इति सदृशांताड्ड इति डः। षट्त्रिंशानि च तानि त्रिशतानि च, तान्येव भेदाः तत्कृतास्तद्भेदा यस्य तत्तथोक्तं। तथाहि-बह्वादयो द्वादश अव-ग्रहादिभिश्चतुर्भिराहता अष्टचत्वारिंशत्प्रतींद्रियं भवति। सा च नयन-मनोवर्जमितरेंद्रियाणां व्यंजनावग्रहद्वादशभेदैश्चतुर्भिर्युक्ता त्रिशती षट्त्रिंशा भवति। पुनरपि किंविशिष्टं तदित्याह—विविधा नाना प्रकारा ऋद्धयो बुद्ध्यादिकाः सप्त ताभिः वृद्धं प्रवृद्धं तच्च तत्कोष्ठस्फुटबीजपदा-नुसारिबुद्ध्यधिकं च, कोष्ठश्च स्फुटमनुपहतं तच्च तद्बीजं च पदानुसारिणी च तच्च ताश्च बुद्धयश्च ताभिरधिकमुत्कृष्टं ता अधिका यत्र तत्तथोक्तं। अथवा विधर्द्धिविवृद्धाः कोष्ठादिबुद्धयो यत्रेति ग्राह्यं। तत्र कोष्ठे कोष्ठा-गारिकधृतभूरिधान्यानां अविनष्टाव्यतिकीर्णानामवस्थानं यथा तथैवावस्था-नमवधारितग्रंथार्थानां यत्र बुद्धौ सा कोष्ठबुद्धिः। किंविशिष्टक्षेत्रे कालादि-साहाय्यं एकमप्युप्तं बीजमनेकबीजप्रदं भवति यथा तथैकबीजपदग्रहणाद्-

नेकपरार्थप्रतिपत्तिर्यस्यां बुद्धौ सा बीजबुद्धिः। आदावंते यत्र तत्रैकपद-ग्रहणात्समस्तग्रंथार्थस्यावधारणं यत्र बुद्धौ सा पदानुसारिबुद्धिः। सं सम्यक् संकरव्यतिकरव्यतिरेकेण भिन्नं विविक्तं शब्दस्वरूपं शृणोति इति संभिन्नश्रोतृ तस्य भावः संभिन्नश्रोतृता। द्वादशयोजनायामनवयोजन-विस्तारचक्रवर्तिस्कंधावारोत्पन्ननरकरभाद्यनक्षराक्षरात्मकशब्दसंदोहस्या-विभक्तस्य युगपत्प्रतिभासो यस्यां सत्यां सा संभिन्नश्रोतृता। सा च तद्भवे पूर्वभवे वा उपार्जितात्तपोविशेषापादितप्रकृष्टक्षयोपशममाहात्म्या-द्भवति तया सार्द्धं सहितं। कोष्ठबुद्धयादीनां बुद्धयर्द्धावंतर्भावेऽपि प्राधान्या-त्पृथगुपादानं। पुनरपि किंविशिष्टं तदित्याह श्रुतभाजनं—श्रुतस्य भाजनं श्रतोत्पत्तेरधिकरणं जनकमित्यर्थः श्रुतं मतिपूर्वमित्यभिधानात् ॥ २-३ ॥

मतिं स्तुत्वा श्रुतं स्तोतुमाह—

श्रुतमपि जिनवरविहितं गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।
अङ्गांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि ॥ ४ ॥

टीका—श्रुतमपीत्यादि। अपिशब्दः समुच्चये न केवलं मतिं,श्रुतं च नमस्यामि। कीदृशं तदित्याह जिनेत्यादि—देशजिनेभ्यो वरा उत्कृष्टाः तैर्विहितं। अर्थस्य अर्थपदानां च तत्प्रसादाद् गणधरैः परिज्ञानाद् गणधरै-रचितं अंगपूर्वादिपद्धत्या निबद्धं। तत्प्रकारप्रतिपत्तये द्वयनेकभेदस्थमि-त्याह द्वौ च अनेकश्च त एव भेदास्तैस्तेषु वा तिष्ठतीति तत्स्थं। तत्र द्वौ भेदौ दर्शयितुमंगेत्याह अंगेभ्यो बाह्यं अंगाबाह्यं अंगानि च अंगबाह्यं च तैः प्रकारैर्भावितं। अनंतो विषयोऽस्येत्यनंतविषयं। अनेकविधं श्रुतं भावरूपं द्रव्यरूपं च भवति ॥४॥

तत्र भावरूपं पर्यायेत्यादिना प्ररूपयति—

पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिकानुयोगविधीन्।
प्राभृतकप्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥ ५ ॥

तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान्समश्नुवानं तत्।
वंदे द्वादशधोक्तं गभीरवरशास्त्रपद्धत्या ॥६॥

टीका—तत्—श्रुतं वंदे। किं कुर्वत्? समश्नुवानं—व्याप्नुवत्। कान्? विंशतिभेदान्। के ते विंशतिभेदा इति चेदुच्यंते—पर्यायश्चाक्षरं च पदं च संघातश्च प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगविधिश्चेति षट्। प्राभृतक-प्राभृतकादयश्चत्वार इति दश। तेषां समासतोऽपि च अपिः संभावने, चः समुच्चये। तेषां पर्यायादीनां समासतः समासात् दशसमासानाश्रित्य ये विंशतिभेदाःसंपन्नास्तान्समश्नुवानं श्रुतं वंदे। इदानीं पर्यायादीनां स्वरूपं निरूप्यते—सूक्ष्मनित्यनिगोदजीवस्यापर्याप्तस्य यत्प्रथमसमये प्रवृत्तं सर्व-जघन्यं ज्ञानं तत्पर्यायशब्देनोच्यते। तद्धि ज्ञानं लब्ध्यक्षरापराभिधानं अक्षरश्रुतानंतभागपरिमाणत्वात्सर्वविज्ञानेभ्यो जघन्यं नित्योद्घाटितं निरावरणं। न हि भावतस्तस्य कदाचनाप्यभावो भवत्यात्मनोप्यभावप्रसं-गात् उपयोगलक्षणत्वात्तस्य। तदुक्तं—

णिच्चणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्मि।
हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥ १ ॥

तदेव ज्ञानं अनंतासंख्येयसंख्ययेभागवृद्धया संख्येयासंख्येयानंतगुणवृ-द्धया च वर्द्धमानं असंख्येयलोकपरिमाणं। प्रागक्षरश्रुतज्ञानात्पर्याय-समासोऽभिधीयते। अक्षरश्रुतज्ञानं तु एकाक्षराभिधेयावगमरूपं श्रुतज्ञानं असंख्येयभागमात्रं तस्योपरिष्टादक्षरसमासोक्षरवृद्धया वर्द्ध-मानो द्वित्राद्यक्षरावबोधस्वभावः पदावबोधात्पुरस्तात्। पदप्रमाणं चाग्रे वक्ष्यते। पदात्पुनः परतः पदसमासोक्षरादिवृद्धया वर्द्धमानः प्राक् संघा-तात्। संख्यातपदसहस्रपरिमाणः संघातो नरकाद्यन्यतमगतिप्रपंचप्ररू-पणप्रवणः। प्रतिपत्तिकात्संख्यातसंघातपरिमाणाद्गतिचतुष्टयव्यावर्णन-समर्थात् पूर्वं अक्षरादिवृद्धया वर्द्धमानः संघातसमासः। एवमुत्तरत्रापि

अनयैव दिशा समासवृद्धिः प्रतिपत्तव्या। प्रतिपत्तिकादप्यूर्ध्वं प्रतिपत्तिकसमासः संख्यातप्रतिपत्तिकरूपादनुयोगात्समस्तमार्गणानिरूपणसमर्थात् प्राक्। तस्मादप्युपरिष्टादनुयोगसमासः संख्यातानुयोगस्वरूपात्प्राभृतकप्राभृतकादधस्तात्। प्राभृतकप्राभृतकचतुर्विंशत्या भवति प्राभृतकं प्राभृतकात्प्राक् प्राभृतकप्राभृतकसमासः। प्राभृतकसमासोपि प्राभृतकविंशतिपरिमाणाद्वस्तुनः पूर्वं। वस्तु समासः पुनर्वस्तुनः परतो दशादिवस्तुपरिमाणात्पूर्वात्प्रागवगंतव्यः। ततः परं पूर्वसमास एव पूर्वसमुदये परमश्रुतसंज्ञाया अभावादिति। इदानीं द्रव्यश्रुतं वचनपद्धत्या निबद्धमनेकविधं निरूपयन्नङ्गप्रविष्टमनेकविधं तावद्द्वादशेत्यादिना निरूपयति तद्वंदे इत्येतदत्रापि संबध्यते। कथंभूतं? द्वादशधोक्तं। कया? गभीरवरशास्त्रपद्धत्या—अनंतार्थविषयत्वाद्गंभीराणि, अबाधितविषयत्वाद्वराणि यानि शास्त्राणि तेषां पद्धतिरनुपरिपाटी तया॥५—६॥

के ते द्वादश प्रकारा इत्याह आचारमित्यादि—

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवायनामधेयं च।
व्याख्याप्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने॥७॥
वंदेंतकृद्दशमनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि॥८॥

टीका—(१) अष्टादशपदसहस्रपरिमाणं गुप्तिसमित्यादियत्याचारसूचकं आचारांगम् १८०००। (२) षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणं ज्ञानविनयादिक्रियाविशेषप्ररूपकं सूत्रकृतम् ३६०००। (३) द्विचत्वारिंशत्पदसहस्रसंख्यं जीवादिद्रव्यैकाद्येकोत्तरस्थानप्रतिपादकं स्थानं ४२०००। (४) चतुःषष्टिसहस्रैकलक्षपदपरिमाणं द्रव्यतो धर्माधर्मलोकाकाशैकजीवानां, क्षेत्रतो जंबूद्वीपाप्रतिष्ठाननरकनंदीश्वरवापीसर्वार्थसिद्धिविमानादीनां, कालत उत्सर्पिण्यादीनां, भावतः क्षायिकज्ञानदर्शनादिभावानां

साम्यप्रतिपादकं समवायनामधेयं १६४००० । चः समुच्चये । (५) अष्टाविंशतिसहस्रलक्षद्वयपदपरिमाणा जीवः किमस्ति नास्तीत्यादिगणधरषष्टिसहस्रप्रश्नव्याख्याविधात्री व्याख्याप्रज्ञप्तिः २२८००० । (६) षट्पंचाशत्सहस्राधिकपंचलक्षपदपरिमाणा तीर्थकराणां गणधराणां च कथोपकथाप्रतिपादिका ज्ञातृकथा ५५६००० । (७) सप्ततिसहस्रैकादशलक्षपदसंख्यं श्रावकानुष्ठानप्ररूपकं उपासकाध्ययनम् ११७०००० । (८) अष्टाविंशतिसहस्रत्रयोविंशतिलक्षपदपरिमाणं प्रतितीर्थं दशदशानगाराणां निर्जितदारुणोपसर्गाणां निरूपकमंतकृद्दश, संसारस्य अंतं कृतवंतो दश दश यत्र निरूप्यंते, अंतकृतां वा दश दश यत्र निरूप्यंते तदंतकृद्दशं २३२८००० । (९) चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रद्विनवतिलक्षपदपरिमाणं प्रतितीर्थं निर्जितदुर्द्धरोपसर्गाणां समासादितपंचानुत्तरोपपादानां दशदशमुनीनां प्ररूपकमनुत्तरौपपादिकदशं । उपपादो जन्म प्रयोजनं येषां ते औपपादिका मुनयः, अनुत्तरेषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः ते दश यत्र निरूप्यंते तत्तथोक्तम् ९२४४००० । दशावस्थं-दश अवस्था निर्जितदारुणोपसर्गमुनिप्रतिपादनप्रकारा यत्र । एतच्च विशेषणं अनंतरोक्तमंगद्वयेऽपि संबंधनीयम् । (१०) षोडशसहस्रत्रिनवतिलक्षपदपरिमाणं नष्टमुष्टयादीन्परप्रश्नानाश्रित्य यथावत्तदर्थप्रतिपादकं, प्रश्नानां व्याकर्तृ प्रश्नव्याकरणं । हि वाक्यालंकारे पादपूरणे स्फुटार्थे वा ९३१६००० । (११) चतुरशीतिलक्षाधिकैककोटिपदपरिमाणं सुकृतदुष्कृतविपाकसूचकं विपाकसूत्रं १८४००००० । तद्विनमामि—विशुद्धिविशेषेण प्रणमामि । द्विसहस्राधिकपंचदशलक्षोत्तरकोटिचतुष्टयपरिमाणा एकादशांगानां समुदिता पदसंख्या ४१५०२००० ॥७—८॥

द्वादशमं त्वङ्गं दृष्टिवादाख्यं इदानीं स्तौमि—

परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते ।
सार्द्धं चूलिकयापि च पंचविधं दृष्टिवादं च ॥९॥

टीका—किंविशिष्टं ? पंचविधं-पंच विधाः प्रकाराः यस्य। तानेव पंच प्रकारान्परिकर्मेत्यादिना दर्शयति। तत्र चन्द्रसूर्यजंबूद्वीपद्वीपसागर-व्याख्याप्रज्ञप्तिभेदात्पंचविधं परिकर्म। तत्र (१) चंद्रायुर्गतिवैभवादि-प्रतिपादिका पंचसहस्रषट्त्रिंशल्लक्षपदपरिमाणा चंद्रप्रज्ञप्तिः ३६०५००० । (२) त्रिसहस्रपंचलक्षपदपरिमाणा सूर्यविभवादिप्रतिपादिका सूर्यप्रज्ञप्तिः ५०३०००। (३) पंचविंशतिसहस्रलक्षत्रयपदपरिमाणा जंबूद्वीपस्य अखिल-वर्षवर्षधरादिसमन्वितस्य प्ररूपिका जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः ३२५०००। (४) षट्त्रिंशत्सहस्रद्विपंचाशल्लक्षपदपरिमाणा असंख्यातद्वीपसमुद्रस्वरूप-प्ररूपिका द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः ५२३६०००। (५) चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंश-त्सहस्रपदपरिमाणा जीवादिद्रव्याणां रूपित्वारूपित्वादिस्वरूपनिरूपिका व्याख्याप्रज्ञप्तिः ८४३६०००। (६) अष्टाशीतिलक्षपदपरिमाणं जीवस्य कर्मकर्तृत्वतत्फलभोक्तृत्वासर्वगतत्वादिधर्मविधायकं पृथिव्यादिप्रभव-त्वाणुमात्रत्वसर्वगतत्वादिधर्मनिषेधकं च सूत्रं ८८०००००। (७) पंच-सहस्रपदपरिमाणः त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानां प्ररूपकः प्रथमानुयोगः ५०००। (८) पंचनवतिकोटिपंचाशल्लक्षपंचपदपरिमाणं निखिलार्थाना-मुत्पादव्ययध्रौव्याद्यभिधायकं पूर्वगतम् ९५५००००५। जलगता, स्थल-गता, मायागता, रूपगता, आकाशगता चेति पंचविधा चूलिका। तत्र कोटिद्वयनवलक्षैकोननवतिसहस्रशतद्वयपदपरिमाणा जलगमनस्तंभनादि-हेतूनां मंत्रतंत्रतपश्चरणानां प्रतिपादिका जलगता २०९८९०००२००। स्थलगताप्येतावत्पदपरिमाणैव भूगमनकारणमंत्रतंत्रादिसूचिका, पृथ्वी-सबंधवास्तुविद्याप्रतिपादिका च। मायागतापि एतावत्पदपरिमाणैव व्याघ्र-सिंहहरिणादिरूपेण परिणमनकारणमंत्रतंत्रादेश्चित्रकर्मादिलक्षणस्य प्रतिपादिका। आकाशगताप्येतावत्परिमाणैव आकाशगमनहेतुभूतमंत्र-तंत्रतपःप्रभृतीनां प्रकाशिका ॥ ९ ॥

सामान्यतः स्तुतमपि पूर्वगतं मुख्यबहुभेदसंभवात्पुनः स्तोतुं पूर्वगतमित्याद्याह—

पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदितमुत्पादपूर्वमाद्यमहम् ।
आग्रायणीयमीडे पुरुवीर्यानुप्रवादं च ॥१०॥
संततमहमभिवंदे तथास्तिनास्तिप्रवादपूर्वं च ।
ज्ञानप्रवादसत्यप्रवादमात्मप्रवादं च ॥११॥
कर्मप्रवादमीडेऽथ प्रत्याख्याननामधेयं च ।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ॥१२॥
कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च ।
अथ लोकबिंदुसारं वंदे लोकाग्रसारपदं ॥१३॥

टीका—पूर्वेषु गतं स्थितं श्रुतं यथानयनगतमञ्जनमिति । तत्पुनश्चतुर्दशधोदितं गणधरैरिति वाक्यशेषः । तत्र प्रत्यवयवं स्तुतिं दर्शयितुं उत्पादेत्याद्याह—(१) जीवादेरुत्पादव्ययध्रौव्यप्रतिपादककोटिपदं उत्पादपूर्वम् १०००००००। (२) षण्णवतिलक्षपदमंगानामग्रभूतार्थस्य प्रधानभूतार्थस्य प्रतिपादकं आग्रायणीयम् ९६०००००। ईडे—स्तौमि। पुरु—महत्। एतच्च विशेषणं सर्वत्र संबंधनीयं। (३) सप्ततिलक्षपदं चक्रधरसुरपतिधरणेन्द्रकेवल्यादीनां वीर्यमाहात्म्यव्यावर्णकं वीर्यानुप्रवादम् ७०००००। सततमनवरतं। तथा तेनैव भक्तिप्रकर्षप्रकारेणाहमभिवंदे। (४) षष्टिलक्षपदं षट्पदार्थानां अनेकप्रकारैरस्तित्वनास्तित्वधर्मसूचकं अस्तिनास्तिप्रवादं ६०००००० । (५) एकोनकोटिपदं अष्टज्ञानप्रकाराणां यदुदयहेतूनां तदाधाराणां च प्ररूपकं ज्ञानप्रवादम् ९९९९९९९। (६) षडधिककोटिपदं वाग्गुप्तेः वाक्संस्काराणां कंठादिस्थानानां आविष्कृतवक्तृत्वपर्यायद्वींद्रियादिवक्तॄणां शुभाशुभरूपवचःप्रयोगस्य सूचकं सत्यप्रवादं १००००००६। (७) षड्विंशतिकोटिपदं जीवस्य ज्ञानसुखादिमयत्वकर्तृत्वादि—धर्मप्रतिपादकं आत्मप्रवादम् २६०००००००। (८) अशीतिलक्षै—

ककोटिपदं कर्मणां बंधोदयोदीरणोपशमनिर्जरादिप्ररूपकं कर्म-प्रवादं १८०००००० । (९) चतुरशीतिलक्षपदं द्रव्यपर्यायाणां प्रत्याख्यानस्य निवृत्तेर्व्यावर्णकं प्रत्याख्यानं नामधेयं संज्ञा यस्य तत्प्रत्यख्याननामधेयं ८४००००० । (१०) दशलक्षैककोटिपदं क्षुद्र-विद्यासप्तशतीं महाविद्यापंचशतीं अष्टांगनिमित्तानि च प्ररूपयन् पृथु-विद्यानुप्रवादम् ११०००००० । (११) षड्विंशतिकोटिपदं अर्हद्बलदेव-वासुदेवचक्रवर्त्यादीनां कल्याणप्रतिपादकं कल्याणनामधेयम् २६०००००००। (१२) त्रयोदशकोटिपदं प्राणापानविभागायुर्वेदमंत्रवा-दगारुडवादादीनां प्ररूपकं प्राणावायम् १३०००००००। (१३) नव-कोटिपदं द्वासप्ततिकलानां छंदोलंकारादीनां च प्रतिपादकं क्रियाविशालं ९०००००००। (१४) पंचाशल्लक्षद्वादशकोटिपदं लोकबिंदुसारं चतु-र्दशं पूर्वम् १२५०००००० । अथ—अनंतरं, वंदे । कथंभूतं ? लोकाग्रसा रपदं—लोके यदग्रं सारं सर्वसाराणां प्रधानभूतं सारं मोक्षसुखतत्साधना नुष्ठानादिकं च तस्य पदं स्थानं तत्प्रतिपादकत्वात् । ॥१०—१३॥

स्तुत्वैवं पूर्वाणि पूर्वाधिकारवस्तूनां वस्त्वधिकारप्राभृतानां च संख्यापूर्वं स्तवनमाह दशेत्यादि—

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च ।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पंचदश च तथा ॥ १४ ॥
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम् ।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ॥ १५ ॥

टीका—पूर्वाणामुत्पादपूर्वादीनां अनुपूर्वं अनुक्रमेण दशादीनि यानि वस्तूनि १० । १४ । ८ । १८ । १२ । १२ । १६ । २० । ३० । १५ । १० १० । १० । १० । समुदायेन पंचनवतिशतसंख्यानि । यानि च एकैकस्मिन्वस्तुनि विंशतिविंशतिप्राभृतकानि । पिंडेन नवशतीत्रिसहस्रीसंख्यानि तानि नौमि ॥ १४—१५ ॥

पूर्वांतं ह्यपरान्तं ध्रुवमध्रुवच्यवनलब्धिनामानि ।
अध्रुवसंप्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥ १६ ॥
सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालं ।
सिद्धिमुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥ १७ ॥

टीका—यानि च पूर्वान्तं, अपरांतं, ध्रुवं, अध्रुवं, च्यवनलब्धिः, अध्रुवसप्रणिधिः, अर्थः, भौमावयाद्यं च, सर्वार्थकल्पनीयं, ज्ञानं, अतीतं कालं, अनागतकालं, सिद्धिं, उपाध्यमिति चतुर्दश वस्तूनि सम्प्रदाया-दुपलब्ध्यभिधानानि तानि च प्रत्येकं नौमि ॥ १६-१७ ॥

इदानीं पंचमवस्तुनश्च्यवनलब्धिनाम्नः चतुर्थप्राभृतकस्य कर्मप्रकृ-तिसंज्ञकस्य येनुयोगविशेषाः संप्रदायाव्यवच्छेदादुपलब्धनामानस्तेषां स्तुत्यर्थं कृर्तात्याग्राह—

पंचमवस्तुचतुर्थप्राभृतकस्यानुयोगनामानि ।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शनकर्म प्रकृतिमेव ॥ १८ ॥
बंधननिबंधनप्रक्रमानुपक्रममथाभ्युदयमोक्षौ ।
संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॥ १९ ॥
सातमसातं दीर्घं ह्रस्वं भवधारणीयसंज्ञं च ।
पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्तमनिधत्तमभिनौमि ॥ २० ॥
सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ ॥
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ॥२१॥

टीका—कृतिश्च वेदना च कृतिवेदने तथैव तेनैव प्रकारेण स्पर्शनं च कर्म चेति समाहारः। प्रकृतिमेव, चशब्दोव्ययः समुच्चयार्थः। बंधनं च निबंधनं च प्रक्रमश्च अनुपक्रमश्चेति चतुर्णां समाहारः । अथानंतरं अभ्युदयमोक्षौ नौमीति संबंधः। संक्रमलेश्ये च तथा तेनैव भक्तिनम्रोत्त-मांगप्रकारेण लेश्यायाः कर्मपरिणामौ नौमि । कर्मलेश्या द्रव्यलेश्या परि-

णामलेश्या भावलेश्या इति पंचदशानुयोगान् । सातमसातं इत्येकमनुयोगं नौमि इति क्रियाभिसंबंधात्सर्वत्र कर्मता । दीर्घमेकं ह्रस्वमेकं भवधारणीयमेकं भवधारणीय इति संज्ञा यस्य। पुरुमहत्उद्रलात्मनामैकं, निधत्तमनिधत्तमेकंसनिकाचितमनिकाचितमप्येकं । अथ अनंतरं कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ द्वाविति चतुर्विंशतिः । अल्पबहुत्वं च यजे । कथंभूतं ? चतुर्विंशं—चतुर्विंशतेः पूरणं । केषां तदिति चेत् तद्द्वाराणां तस्य चतुर्थप्राभृतस्य द्वाराणीव द्वाराणि अनुयोगाः, अर्थगर्भावगाहनहेतुत्वात् । तेषामिति चतुर्विंशमित्यनेन सर्वानुयोगसाधारणमस्योक्तं । वस्तुवृत्त्या पंचविंशोयमधिकारः । चतुर्विंशतेस्तद्द्वाराणां साधारणत्वात् तत्पूरण इत्युच्यते ॥१८—२१॥

इदानीं कोटीनामित्यादिना सर्वाङ्गपदानां समुदितसंख्यामाह—

कोटीनां द्वादशशतमष्टापंचाशतं सहस्राणाम् ।
लक्षत्र्यशीतिमेव च पंच च वंदे श्रुतपदानि ॥२२॥

टीका—द्वादशसहितं शतं कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टापंचाशत्सहस्राणि पंचपदानि श्रुतस्य वंदे । एवकारो नियमार्थः एतावत्येव हि श्रुतपदानि न हीनानि नाप्यधिकानि इति । ११२८३५८०००५ ॥२२॥

षोडशशतमित्यादिना पदवर्णानां स्तुतिमाह—

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत्कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि ।
शतसंख्याष्टासप्ततिमष्टाशीतिं च पदवर्णान् ॥२३॥

टीका—त्रिविधं हि पदं अर्थप्रमाणमध्यमपदभेदात् । तत्रानियताक्षरं अर्थपदं, यावंत्यक्षराणि अर्थादनपेतानि, तावत्प्रमाणं । प्रमाणपदं त्वष्टाक्षरमंगबाह्यश्रुतसंख्यानिरूपकं, श्लोकचतुर्थपादरूपं । अङ्गप्रविष्टश्रुतसंख्याख्यापकं मध्यमपदं । तस्मै वर्णसंख्याख्यापनाय षोडशशतमित्याद्याह—षोडशानां शतानां समाहारः षोडशशतं पात्रादेराकृतिगणत्वा ङीप्रतिषेधः । चतुस्त्रिंशच्च कोटीनां त्र्यशीतिलक्षाणि शत-

संख्याग्रसमात्, शतानां संख्या शतसंख्या अष्टाभिरधिका सप्ततिर-ष्टासप्ततिः शतसंख्या च सा अष्टासप्ततिश्च तां, अष्टाशीतिं च पदवर्णा-न्वंदे। १६३४८३०७८८८ इत्यंगप्रविष्टं श्रुतम्। मध्यमपदवर्णसंख्याहीनैः वर्णैरंगबाह्यं श्रुतमारब्धं, मध्यमपदस्य तैरारब्धुं अशक्यत्वात्। तद्वर्णानां संख्या अष्टकोट्यैकलक्षाष्टसहस्रैकशतं पंचसप्ततिरिति। ८०१०८१७५ ॥ २३ ॥

तत्र तदेवाङ्गबाह्यमनेकविधं श्रुतं स्तोतुमिच्छन्सामायिकमित्याद्याह–

सामयिकं चतुर्विंशतिस्तवं वंदना प्रतिक्रमणं।
वैनयिकं कृतिकर्म च पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥२४॥
वरमुत्तराध्ययनमपि कल्पव्यवहारमेवमभिवंदे।
कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुंडरीकं च ॥ २५ ॥
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुंडरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च प्रकीर्णकान्यंगबाह्यानि ॥ २६ ॥

टीका—अहं प्रणिपतितोऽस्मि प्रणतवान्भवामि। कानि? अंगबा-ह्यानि। कथं? परिपाट्या—क्रमेण। कथंभूतानि? प्रकीर्णकानि—प्रकीर्णा-परसंज्ञानि चतुर्दशाप्येतानि। पुनरपि कथंभूतानि? निपुणानि—सूक्ष्मार्थ-प्रतिपादकानि। १ तत्र अनगारेतरयतीनां नियतानियतकालः समयः समता तत्प्रतिपादनं प्रयोजनं यस्य तत्सामयिकं। २ वृषभादीनां चतु-स्त्रिंशदतिशयप्रातिहार्यलक्षणवर्णादिव्यावर्णकं चतुर्विंशतिस्तवं। ३ अर्हदादीनां एकैकशोऽभिवंदनाभिधानबोधिका वंदना। ४ दिवसरात्रिपक्ष-मासचतुर्मासंवत्सरेर्यापथिकोत्तमार्थप्रभवसप्तप्रतिक्रमणप्ररूपकं प्रतिक्र-मणं। ५ ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारलक्षणपंचविधविनयप्ररूपकं वैन-यिकं। ६ दीक्षाग्रहणादेः प्रतिपादकं कृतिकर्म। ७ द्रुमपुष्पिताादि-दशाधिकारैर्मुनिजनाचरणसूचकं दशवैकालिकं। ८ नानोपसर्गसहनत-त्फलादेर्निवेदकं उत्तराध्ययनम्। ९ यतीनां कल्प्यं योग्यमाचरणं आ-

चरणच्यवने तदुचितप्रायश्चित्तं च प्ररूपयत्कल्प्यव्यवहारं । १० सागारयतीनां कालविशेषमाश्रित्य योग्यायोग्यविकल्प्यमाचरणं निरूपयत्कल्प्याकल्प्यं स्तौति । ११ दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारभावनोत्तमार्थभेदेन षट्कालप्रतिबद्धयतीनामाचरणं प्रतिपादयन्महाकल्प्यं । १२ भवनवास्यादिदेवेषु उत्पत्तिकारणतपःप्रभृतिप्रतिपादकं पुंडरीकं । १३ अमरामरांगनाप्सरःसूत्पत्तिहेतुप्रतिपादकं महापुंडरीकं तन्नाम यस्य तन्महापुंडरीकनाम। १४ सूक्ष्मस्थूलदोषप्रायश्चित्तं पुरुषवयःसत्त्वाद्यपेक्षया प्ररूपयंतीमशीतिकां सूक्ष्मेक्षिकया अर्थस्वरूपनिवेदकत्वान्निपुणान्येतानि सामयिकादीनि नौमीति संबंधः । महापुंडरीकनामैव इत्ययमेवकारो नियमार्थो द्रष्टव्यः, अंगबाह्यान्येतावन्त्येव न हीनानि नाप्यधिकानि इति ॥ २४-२५-२६ ॥

अथेदानीं पुद्गलेत्यादिना अवधिं स्तौति—

पुद्गलमर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेदमवधिं च ।
देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदमभिवंदे ॥२७॥

टीका—अभिवन्दे । कं ? अवधिं । अव अधो बहुतरो विषयो धीयते निर्णीयते येनासौ अवधिस्तं । कथंभूत? पुद्गलमर्यादोक्तं—पुद्गला एव मर्यादा प्रवृत्तिविषयस्येयत्ता तयोक्तं रूपिविषयतया प्रतिपादितं । पुनरपि कथंभूतं ? प्रत्यक्षं—मतिश्रुतज्ञानवदवधिज्ञानं परोक्षं न भवति । पुनरपि किंविशिष्टं ? सप्रभेदं प्रकृष्टा अबाधिता भेदा विशेषाः सह तैर्वर्तते इति सप्रभेदास्तं । तानेव प्रभेदान् दर्शयितुं देशावधीत्याद्याह—देशावधिश्च परमावधिश्च सर्वावधिश्च ते भेदा यस्य तं तद्भेदं अभिवंदे । परमावधिसर्वावधी चरमदेहमहर्षीणां भवतः । देशावधिः सर्वेषामपि । देशावधिपरमावधी जघन्योत्कृष्टादिविकल्पौ तथाविधावधिज्ञानावरणक्षयोपशमादुत्पन्नत्वात् । सर्वावधिः पुनः उत्कृष्टविकल्प एव सकलावधिज्ञानावरणक्षयोपशमात्प्रादुर्भावात् ॥ २७ ॥

मनःपर्ययप्रत्यक्षं स्तोतुं परमनसीत्याद्याह—

परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मंत्रिमहितगुणम् ।
ऋजुविपुलमतिविकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ॥२८॥

टीका—स्तौमि । किं तत्? मनःपर्ययज्ञानं । कथंभूतं ? मंत्रिमहितगुणं अपारसंसारदुर्वारगरलापहारसमर्थापराजितमन्त्रो विद्यते येषां ते मंत्रिणो महर्षयः, तैर्महिता गुणा विशिष्टचारित्रैकार्थसमवायित्वादयो यस्य तत्तथोक्तं । यदि वा मंत्रृ परिच्छेत्तृ महितगुणं महर्षिभिरिति व्याख्येयं । किंकृतं तत्तैर्महितगुणं ? परिविद्य—परिच्छिद्य । कं ? अर्थं । केन ? मनसा । मनःपर्ययज्ञानावरणविविक्तेनात्मना । कथंभूतं ? परमनसि स्थितम् । नन्वेवं मनःपर्ययज्ञानस्य अतीन्द्रियप्रत्यक्षता न प्राप्नोति मनःसम्बन्धेन लब्धप्रवृत्तित्वात् इति चेत्तदयुक्तं, अभ्रे चंद्रमसं पश्येत्यत्र विषयभावेन निर्दिष्टस्य अभ्रस्य चंद्रज्ञानानिवर्तकत्ववत् परमनसस्तद्निवर्तकत्वात् । परमनसि स्थितं परमनोविषये वर्तमानमिति व्याख्यानात् तस्य तदनपेक्षित्वसिद्धेः, मनःपर्ययज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविशेषवशादेव तदुत्पत्तिप्रसिद्धेः, सिद्धं अतींद्रियत्वं । तद्भेदप्रदर्शनायाह ऋज्वित्यादि—ऋज्वी च विपुला च ते च ते मती ज्ञाने । ऋजुमतिर्मनःपर्ययस्त्रिविधो निर्वर्तितप्रगुणवाक्कायमनःकृतार्थस्य परमनोगतस्य ग्रहणात् । विपुलमतिस्तु षोढा निर्वर्तितानिर्वर्तितप्रगुणाप्रगुणवाक्काय-मनस्कृतार्थस्य परमनोगतस्य ग्रहणात् ॥ २८ ॥

केवलज्ञानं स्तोतुं क्षायिकमित्याद्याह—

क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासम् ।
सकलसुखधाम सततं वंदेऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥

टीका—अहं सततं वंदे । किं तत्केवलज्ञानं-असहायज्ञानं । कथंभूतं ? सततं । किंविशिष्टं ? क्षायिकं—सकलज्ञानावरणक्षये प्रादुर्भूतं । ज्ञानावरणादिचतुष्टयक्षयोत्पन्नं । पुनः किंविशिष्टं ? एकं—अद्वितीयं

असहायं अभेदं वा । पुनरपि कथंभूतं ? अनंतं—न विद्यतेऽन्तो विनाशो-ऽस्येत्यनन्तं । त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासं—सर्वे च ते अर्थाश्च सर्वार्थाः त्रयः काला भूतभविष्यद्वर्तमानलक्षणा येषां ते त्रिकालाः ते च ते सर्वार्थाश्च तेषां युगपदवभासो यत्र करणक्रमव्यवधानातिवर्तित्वात्, तत्तथोक्तम् । सकलसुखधाम—सकलसुखं अनंतसुखं तस्य धाम स्थानं, तस्मिन्सत्यवश्यं तत्संभवात् ॥२९॥

स्तुतेः फलं प्रार्थयमान एवमित्याद्याह—

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि ।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धिं ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम् ॥३०॥

टीका—एवमनंतरोक्तप्रकारेण । अभिष्टुवतो मे लघु शीघ्रं । भवतात्सं-पद्यतां । किं? सौख्यं । किंविशिष्टं ? अच्यवनं—न विद्यते च्यवनं विना-शोऽस्येति । पुनरपि किंविशिष्टं ? ज्ञानफलं—अनेन अतींद्रियत्वं तस्य दर्शितं, स्रग्वनितादिविषयादनुत्पत्तेः । पुनरपि कथम्भूतं ? ज्ञानर्द्धि—ज्ञानस्य ऋद्धिः परमप्रकर्षो यत्र । अनंतज्ञानसमन्वितं अनंतसौख्यं अंतर्भू-तानंतदर्शनवीर्यं मे भूयादित्यर्थः । किंविशिष्टानि ज्ञानानि अभिष्टुवत इत्याह—समस्तलोकचक्षूंषि ॥ ३० ॥

प्राकृत-श्रुतभक्तिः ।

सिद्धवरसासणाणं सिद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं ।
काऊण णमुक्कारं भत्तीए णमामि अंगाइं ॥१॥

सिद्धवरशासनानां सिद्धानां कर्मचक्रमुक्तानां ।
कृत्वा नमस्कारं भक्त्या नमाम्यंगानि ॥ १ ॥

टीका—काऊण—कृत्वा । किं ? णमुक्कारं—नमस्कारं । केषां ? सिद्धा-णं—सिद्धानां । कथंभूतानां ? सिद्धवरसासणाणं-सिद्धं सकललोकप्रसिद्धं वरं श्रेष्ठं शासनं गतं येषां । पुनरपि कथंभूतानां ? कम्मचक्कमुक्काणं-कर्मणां

चक्र संघातः तेन मुक्ता रहिताः तेषां नमस्कारं कृत्वा । भत्तीए णमामि अंगाइं—भक्त्या नमाम्यंगानि ॥१॥

किं नामानि तानि अंगानि नमामीत्याह—

आयारं सुद्दयडं ठाणं समवाय विहायपण्णत्ती ।
णाणाधम्मकहाओ उवासयाणं च अज्झयणं ॥२॥
वंदे अंतयडदसं अणुत्तरदसं च पण्हवायरणं ।
एयारसमं च तहा विवायसुत्तं णमंसामि ॥३॥
परियम्मसुत्त पढमाणुओयपुव्वगयचूलिया चेव ।
पवरवरदिट्ठिवादं तं पंचविहं पणिवदामि ॥४॥
उप्पायपुव्वमग्गायणीय वीरियत्थिणत्थि य पवादं ।
णाणासच्चपवादं आदाकम्मप्पवादं च ॥ ५ ॥
पच्चक्खाणं विज्जाणुवाय कल्लाणणामवरपुव्वं ।
पाणावायं किरियाविसालमथलोयबिंदुसारसुदं ॥६॥

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवायं व्याख्याप्रज्ञप्तिं ।
ज्ञातृधर्मकथां उपासकानां चाध्ययनम् ॥ २ ॥
वंदेऽन्तकृद्दशं अनुत्तरदशं च प्रश्नव्याकरणम् ।
एकादशं च तथा विपाकसूत्रं च नमस्यामि ॥ ३ ॥
परिकर्मसूत्रप्रथमानुयोगपूर्वगतचूलिकाश्चैव ।
प्रवरतरदृष्टिवादं तं पंचविधं प्रणिपतामि ॥ ४ ॥
उत्पादपूर्वं आग्रायणीयं वीर्यास्तिनास्तिप्रवादे ।
ज्ञानसत्यप्रवादे आत्मकर्मप्रवादे च ॥ ५ ॥
प्रत्याख्यानं विद्यानुवादे कल्याणनामवरपूर्वम् ।
प्राणावायं क्रियाविशालं अथ लोकबिंदुसारश्रुतम् ॥ ६ ॥

टीका—आयारं सुद्दयडं ठाणमित्यादि । अत्र सर्वासां गाथानामर्थ 'आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवायनामधेयं च' इत्याद्यार्यभ्यो ज्ञातव्यस्तासामेतट्टीकारूपत्वात् ॥२-६॥

दस चउदस अट्ठ ट्ठारस बारस तह य दोसु पुव्वेसु ।
सोलस वीसं तीसं दसमम्मिय पण्णरसवत्थू ॥ ७ ॥
एदेसिं पुव्वाणं जावदियो वत्थुसंगहो भणियो ।
सेसाणं पुव्वाणं दसदसवत्थू पणिवदामि ॥ ८ ॥
एक्केक्कम्मि य वत्थू वीसं वीसं पाहुडा भणिया ।
विसमसमाविय वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहि समा ॥ ९ ॥
पूव्वाणं वत्थुसयं पंचाणवदी हवंति वत्थूओ ।
पाहुड तिण्णिसहस्सा णवयसया चउदसाणं पि ॥ १० ॥

दश चतुर्दशाष्टौ अष्टादश द्वादश तथा च द्वयोः पूर्वयोः ।
षोडश विंशतिः त्रिंशत् दशमे पंचदशवस्तूनि ॥७॥
एतेषां पूर्वाणां यावान्वस्तुसंग्रहो भणितः ।
शेषाणां पूर्वाणां दश दश वस्तूनि प्रणिगतामि ॥८॥
एकैकस्मिन्वस्तुनि विंशतिप्राभृतकानि भणितानि ।
विषमसमान्यपि वस्तूनि सर्वाणि पुनः प्राभृतकैः समानि ॥९॥
पूर्वाणां वस्तूनि शतं पंचनवति भवन्ति वस्तुषु ।
प्राभृतानि त्रीणि सहस्राणि नवशतानि चतुर्दशानामपि ॥१०॥

टीका—विसमसमाविय वत्थू सव्वे पुण पाहुडेहि समा–विषमाणि समान्यपि च वस्तूनि । विषमाणि वस्तूनि चतुर्दश चाष्टावष्टदशेत्यादीनि । दश सर्वाणि समानि, तानि सर्वाणि प्राभृतैः पुनः समानि । सर्वेपु तेपु विंशतिविंशति प्राभृतानि भवंतीत्यर्थः । सर्वेपु पूर्वेपु कति वस्तूनि समुदितानि कति च प्राभृतानि भवंतीति प्रश्ने उत्तरमाह–पुव्वाणं वत्थुसयं पंचाणवदी हवंति वत्थूओ । पाहुडतिण्णिसहस्सा णवयसया चोद्साणं पि । चतुर्दशानां पूर्वाणां यानि दशादीनि वस्तूनि तानि सर्वाणि समुदितानि पंचनवतिशतसंख्यानि १९५ भवंति यानि च तेषामेकैकस्मि-

न्वस्तुनि विंशतिविंशतिप्राभृतानि भवंति तानि सर्वाणि पिंडितानि नवशतोत्रिसहस्रीसंख्यानि भवंति ३९०० ॥ ७-१० ॥

अधुना यदीयं श्रुतं स्तुतं तानेवमयेत्यादिना स्तुतेः फलं याचते—

एवमए सुदपवरा भत्तीराएण संथुया तच्चा ।
सिग्घं मे सुदलाहं जिणवरवसहा पयच्छंतु ॥ ११ ॥

एवं मया श्रुतप्रवराः भक्तिरागाभ्यां संस्तुतास्तत्त्वतः।
शीघ्रं मे श्रुतलाभं जिनवरवृषभाः प्रयच्छन्तु ॥ ११ ॥

टीका—एवमुक्तप्रकारेण मए-मया । संथुया-संस्तुताः। जिणवर-वसहा-जिना देशजिनाः तेषां वराः श्रेष्ठाः गणधरदेवास्तेषां वृषभाः प्रधानास्तीर्थकरदेवा इत्यर्थः। कथंभूताः ? सुदपवरा-श्रुतं द्वादशांगादिलक्षणं प्रवरं श्रेष्ठं येषां ते तथोक्ताः। कथं संस्तुताः ? भत्तीराएण-भक्त्यनुरागाभ्यां श्रद्धाप्रीतिभ्यां इत्यर्थः। पुनरपि कथं संस्तुताः ? तच्चा-तत्त्वतः परमार्थेन न व्यवहारेण मायया वेत्यर्थः। ते तथा संस्तुताः संतः सिग्घं मे सुदलाहं-शीघ्रं मम श्रुतलाभं। पयच्छंतु-प्रयच्छन्तु। द्वादशांगादिश्रुतलाभे केवलज्ञानप्राप्तेः सामर्थ्यसिद्धत्वात् सामर्थ्यात्तत्सिद्धिः प्रार्थिता भवति ॥ ११ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्मसुत्तपढमाणिओगपुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

३—चारित्रभक्तिः ।
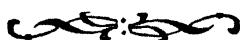
(१)

श्रुतं स्तुत्वा पंचधाचारं स्तुवन् येनेन्द्रानित्याद्याह—

येनेन्द्रान्भुवनत्रयस्य विलसत्केयूरहारांगदान्
भास्वन्मौलिमणिप्रभाप्रविसरोत्तुंगोत्तुमाङ्गान्नतान् ।
स्वेषां पादपयोरुहेषु मुनयश्चक्रुः प्रकामं सदा
वन्दे पंचतयं तमद्य निगदन्नाचारमभ्यर्चितम् ॥१॥

टीका—येनाचारेण नतान् चक्रुरिति संबंधः । कान् ? इन्द्रान् । स्वामिनः । कस्य ? भुवनत्रयस्य । किंविशिष्टानित्याह विलसदित्यादि—केयूराणि च हाराश्च अंगदानि च विलसन्तः कमनीयाः केयूरहारांगदा येषां ते तथोक्तास्तान् । पुनरपि कथम्भूतांस्तानित्याह भास्वदित्यादि—भास्वंतः शोभमाना मौलयो मुकुटानि तेषु मणयो रत्नानि तेषां प्रभास्तासां प्रविसरः सर्वतः प्रसर्पणं तेन उत्तुंगमुन्नतं उत्तमाङ्गं मस्तकं येषां ते तथोक्तास्तान् । किंविशिष्टान् चक्रुर्विदधुर्नतान्-प्रणतान् । प्रकाममत्यर्थं । के ते ? मुनयः । क ? पादपयोरुहेषु—पादावेव पयोरुहाणि सरोजानि तेषु । केषां पादपयोरुहेषु ? स्वेषां—आत्मीयानां, सदा—सर्वकालं । तमाचारं वंदे—स्तुवे अहं । कथंभूतं ? पंचतयं—ज्ञानाचारादिपंचावयवं । अथ श्रुतस्तवनानंतरकाले किं कुर्वन् ? निगदन्—ब्रुवन् । कं ? आचारं कथम्भूतं ? अभ्यर्हितं—पूजितम् ॥ १ ॥

तत्र ज्ञानाचाररूपं तावदाचारं निगदितुकामः अर्थेत्याद्याह—

अर्थव्यंजनतद्द्वयाविकलताकालोपधाप्रश्रयाः
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा
ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥

टीका—अर्थो वाच्यः, व्यंजनं वाचकः शब्दः तयोर्द्वयं च तैरविकलता परिपूर्णता, कालः पूर्वाह्लादिसंध्यादिविविक्तः, उपधा अवग्रहविशेषः, प्रश्रयो विनयः । स्वस्याचार्यः पंचाचारप्रणेता आदिशब्देन उपाध्यायादिपरिग्रहः तेषामनपह्नवोऽनिह्नवः । बहुमतिश्च बहुपूजा च इत्येवमष्टधा अष्टप्रकारं । व्याहृतं—प्रोक्तं । केन ? भगवता । किं विशिष्टेनेत्याह श्रीमदित्यादि—श्रीरनयोरस्तीति श्रीमती ते च ते जातिकुले च जातिर्मातृपक्षः कुलं पितृपक्षः तयोरिंदुश्चन्द्र उद्योतक इत्यर्थः । पुनरपि कीदृशेन ? तीर्थस्य कर्त्रा—तीर्थस्य धर्मस्य श्रुतस्य वा कर्त्रा प्रणेत्रा । अंजसा—परमार्थेन । ज्ञानाचारमहं त्रिधा मनोवाक्कायैः प्रणिपतामि-नमस्करोमि । किमर्थमित्याह उद्धूतये—प्रक्षयाय । केषां ? कर्मणाम् ॥ २ ॥

इदानीं दर्शनाचारं निगदन् शंकेत्याह—

शंकादृष्टिविमोहकांक्षणविधिव्यावृत्तिसन्नद्धतां
वात्सल्यं विचिकित्सनादुपरतिं धर्मोपबृंहक्रियाम् ।
शक्त्या शासनदीपनं हितपथाद्भ्रष्टस्य संस्थापनं
वंदे दर्शनगोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥ ३ ॥

टीका—शंका संदेहः सर्वज्ञस्तत्प्रतिपादिताश्चार्थाःसन्ति न सन्तीति वा । दृष्टिः तत्त्वार्थे श्रद्धानं तस्या विमोहो अन्यदृष्टिप्रशंसालक्षणः । कांक्षणं कांक्षा भाविभोगाभिलाप इति यावत् । शंका च दृष्टिविमोहश्च कांक्षणं च तेषां विधिः करणं तस्य व्यावृत्तिः निवृत्तिः तस्यां सन्नद्धता तत्परता तां । वात्सल्यं—सधर्मणि स्नेहः । विचिकित्सनं—जुगुप्सनं तस्मादुपरतिं-व्यावृत्तिं । धर्मस्य उत्तमक्षमादिलक्षणस्य उपबृंहः उपबृंहणं तस्य क्रिया करणं धर्मानुष्ठातृणां दोषप्रच्छादनेन धर्मप्रवर्द्धनमित्यर्थः तां । शक्त्या सामर्थ्येन शासनस्य जैनमतस्य दीपनं तपःप्रभृतिभिः प्रकाशनम् । हितपथाद्रत्नत्रयाद्भ्रष्टस्य प्रच्युतस्य संस्थापनं हेतुनयदृष्टान्तैः स्थिरीकरणं । दर्शनगोचरं—दर्शनगोचरो विषयो यस्य आचरस्य तं वंदे । कथम्भूतं ? सुचरितं शोभनं चरितं अनुष्ठानं यस्य शोभनैर्वा गणधरदेवादिभिः चरितं

अनुष्ठितं। कथं वंदे ? मूर्ध्ना—मस्तकेन। नमन्—प्रणमन् आदरात्—महाप्रयत्नात् ॥ ३ ॥

एकान्ते शयनोपवेशनकृतिः संतापनं तानवं
संख्यावृत्तिनिबन्धनामनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रियदन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशं
पोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥४॥

टीका—एकान्तेत्यादि। एकान्ते—स्त्रीपशुपंडुविवर्जितप्रदेशे शयनं चोपवेशनं च तयोः कृतिः करणं। संतापनं—क्लेशनं कथम्भूतं ? तानवं-तनौ भवं तानवं। संख्यां गणनां वृत्तिनिबन्धनां—वृत्तेर्वर्तनस्य निबन्धनां हेतुभूतां। अनशनं उपवासं। विष्वाणं-भोजनं। कीदृशं ? अर्द्धोदरं-अर्द्धोदरप्रमाणं अवमोदर्यमित्यर्थः। त्यागं च-वर्जनं। कथं ? अनिशं सर्वदा। कस्य ? रसस्य। कथंभूतस्य ? स्वादोः—सुस्वादस्य वृष्यस्य--वा। पुनरपि किं कुर्वतः ? मदयतः-दर्पयतः। कान् ? इंद्रियदन्तिनः—इन्द्रियाण्येव दन्तिनः दुर्द्धरत्वात्। पोढा--पट्प्रकारं। बाह्यं-बहिरंगं बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वादेव। तत्तपः स्तुवे-वंदे। किंविशिष्टं ? शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं—शिवस्य निर्वाणस्य गतिर्मार्गः तस्याः प्राप्तिः लाभः तस्या अभ्युपायः कारणं ॥४॥

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनं
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जनसत्क्रिया विनय इत्येवं तपः पड्विधं
वंदेऽभ्यंतरमन्तरंगबलवद्विद्वेपिविध्वंसनम् ॥ ५ ॥

टीका—स्वाध्यायेत्यादि। शोभनो लाभपूजाख्यातिनिरपेक्षतया आध्यायः पाठः स्वाध्यायः। शुभं प्रशस्तं कर्म अनुष्ठानं तस्माच्च्युतवतः तत्परित्यक्तवतः संप्रत्यवस्थापनं सम्यक्पुनः स्वस्थापनं चिरंतनभावेष्वारोपणं प्रायश्चित्तमित्यर्थः। ध्यानमेकाग्रचिन्तानिरोधः। व्यापृतिः कायादिव्यापारः। क ? आमयाविनि आमयो व्याधिरस्यास्तीति आम-

यावां 'आमयादीनां चेति' वक्तव्येन आमयशब्दाद्विन् भवति अकारस्य दीर्घत्वं च । व्याधिते गुरौ आचार्ये । वृद्धे च जरापरीततनौ । बाले शिशौ यतौ । कायोत्सर्जनसत्क्रिया कायस्योत्सर्जनं त्यजनं तदेव सत्क्रिया विनयो नम्रता । इत्येवं तपः षड्विधं--षड्भेदं । वंदे । अभ्यन्तरं-अन्तरंगं । कथंभूतं ? तदित्याह अन्तरंगेत्यादि—अन्तः अंगं स्वरूपं येषां ते । अन्तरंगाश्च ते बलवन्तश्च ते विद्वेषिणश्च क्रोधादिशत्रवः तेषां विशेषेण निर्मूलोन्मूलनलक्षणेन ध्वंसनं निराकरणं यस्मात् ॥ ५ ॥

सम्यग्ज्ञानविलोचनस्य दधतः श्रद्धानमर्हन्मते
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा लघ्वी भवोदन्वतो
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं वंदे सतामर्चितम् ॥६॥

टीका—सम्यग्ज्ञानेत्यादि । सम्यग्ज्ञानं यथावस्थितवस्तुग्राहि ज्ञानं तदेव विशिष्टे लोचने चक्षुषी यस्य स तथोक्तस्तस्य । किं कुर्वतः ? दधतः । किं तत् ? श्रद्धानं-रुचिं । क ? अर्हन्मते-अर्हतो मतं शासनं तस्मिन् । कस्य ? यतेः सम्यग्दर्शनज्ञानवतो मुनेरित्यर्थः । तस्य वीर्यस्य--सामर्थ्यस्य अविनिगूहनेन—अप्रच्छादनेन । किंविशिष्टस्य वीर्यस्य ? स्वस्य—आत्मीयस्य । या वृत्तिः । क ? तपसि—पूर्वोक्ते द्वादशविधे । कस्मात् ? प्रयत्नात् महादरात् । किंविशिष्टा ? तरणी । कस्य भवोदन्वतो भवसमुद्रस्य । पुनरपि कथंभूता सा ? अविवरा न विद्यते विवरं छिद्रं यस्या यस्यां वा सा अविवरा निरतिचारा इत्यर्थः । पुनरपि कथंभूता ? लघ्वी स्तोका संसारसमुद्रपारप्रापणीत्यर्थः । केव ? नौरिव यथा नौरविवरा लघ्वी चोदधेस्तरणी भवति तथा यतेर्वृत्तिस्तथाविधा भवोदधेस्तरणी भवति । एवंविधं वीर्याचारं वंदे । वीर्यस्य शक्तेराचरणं अनुष्ठानं तपोविधानद्वारेण । कथंभूतं ? ऊर्जितगुणं ऊर्जिता कर्मनिर्मूलने दुर्धरतपोविधाने च बलवन्तो गुणा यस्य यस्मिन्वा स ऊर्जितगुणः तं । पुनरपि कीदृशं ? सतामर्चितं —सद्भिर्गणधरदेवादिभिरर्चितं पूजितमित्यर्थः ॥६॥

तिस्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः
पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः पंचव्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै—
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्वीरं नमामो वयम् ॥ ७ ॥

टीका—तिस्र इत्यादि । तिस्रः । काः ? सत्तमगुप्तयः सत्तमाः शोभनाश्च ता गुप्तयश्च । कीदृश्यः ? तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः-तनुश्च मनश्च भाषा च ता एव निमित्तं तस्मादुदयो यासां तास्तथोक्ताः । पंचेर्यादिसमाश्रयाः समितयः—ईर्या आदिर्यस्यासावीर्यादिः समीचीनः आश्रयः आधारः समाश्रयः ईर्यादिः समाश्रयो यासां तास्तथोक्ताः समितयः । कति ? पंच 'इर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः' इत्यभिधानात् । पंचव्रतानीत्यपि—पंचव्रतानि हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिलक्षणानि इत्यपि-एतान्यपि मिलितानि चारित्रं संभवति । तेन चारित्रेणोपहितं युक्तं चारित्राचारमित्यर्थः । किंविशिष्टं ? त्रयोदशतयं-उक्तत्रयोदशप्रकारं । पुनरपि कथंभूतं ? न दृष्टं । कदा ? पूर्वं । कैः ? परैः-अन्यतीर्थकरैः । कस्मात्परैर्वीरादन्त्यतीर्थकरात् । किंविशिष्टात् ? जिनपतेः-जिनश्चासौ पतिश्च जिनानां वा पतिर्जिनपतिस्तस्मात् । पुनरपि किंविशिष्टात् ? परमेष्ठिनः-परमे अचिन्त्ये विभूतियुक्ते पदे संतिष्ठमानात् । परैरजितादिभिर्जिननाथैस्त्रयोदशभेदभिन्नं चारित्रं न कथितं सर्वसावद्यविरतिलक्षणमेकं चारित्रं तैर्विनिर्दिष्टं तत्कालीनशिष्याणां ऋजुजडमतित्वासंभवात् । वर्द्धमानस्वमिना तु जडमतिभव्याशयवशादादिदेवेन तु ऋजुमतिविनेयवशात्त्रयोदशविधं निर्दिष्टमाचारं नमामो वयम् ॥७॥

यः प्रत्येकं ज्ञानाचारादिभेदेन प्रतिपादित आचारस्तं समुदायीकृत्य स्तोतुकामस्तदाधारांश्च यतीनाचारमित्याद्याह—

आचारं सहपंचभेदमुदितं तीर्थं परं मंगलं
निर्ग्रंथानपि सच्चरित्रमहतो वंदे समग्रान्यतीन् ।

आत्माधीनसुखोदयामनुपमां लक्ष्मीमविध्वंसिनी-
मिच्छन्केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्ज्वलाम् ॥८॥

टीका—आचारं वंदे । कथंभूतं ? सहपंचभेदं—सह पंचभिर्भेदैर्वर्तत इति सहस्य सादेशो विकल्पेन भवत्यतोत्र स्वरूपेणावस्थानं । यथा च तत्पंचभेदं भवति तथा उदितं-निगदितं । पुनरपि कथंभूतं ? तीर्थं भवोदधिं भव्यास्तरंत्यनेनेति तीर्थं । पुनरपि कीदृशं ? परमुत्कृष्टं । मंगलं-मलं पापं गालयति विनाशयति इति मंगलं, मंगं पुण्यं लाति आदत्त इति वा मंगलं । न केवलं तमेव वंदे अपि तु यतीनपि । अपिशब्दो भिन्नप्रक्रमो द्रष्टव्यः । कथंभूतान् यतीन् ? निर्ग्रंथान् ग्रंथान्निष्क्रांता निरस्तो वा ग्रंथो यैस्ते वा निर्ग्रंथाः तान् । अनेन श्वेतपटादीना अवंद्यता कथिता । पुनरपि कथंभूतान् ? सच्चरित्रमहतः—सच्चरित्राश्च ते महान्तश्च सच्चरित्रेण वा महांतस्तान्वंदे । कति ? समग्रान्सकलान् । किंकुर्वन् ? इच्छन् । कां ? लक्ष्मीं । किंविशिष्टां ? अविध्वंसिनीं—अविनश्वरीं मोक्षलक्ष्मीमित्यर्थः । तस्या एवाविनश्वरत्वसंभवात् । पुनरपि कथंभूतां ? आत्माधीनसुखोदयां-आत्मन एव न विषयाणां आधीनं यत्सुखं अनंतसुखमित्यर्थः तस्योदय उत्पादो यस्यां । पुनरपि किंशिविष्टां इत्याह दर्शनेत्यादि—दर्शनं च केवलदर्शनं अवगमनं केवलज्ञानं ते एव तयोर्वा प्राज्यः प्रचुरतरः प्रकाशः तेन उज्ज्वला दीप्रा यत एव च उक्तविशेषणविशिष्टासौ तत एवानुपमा न विद्यते उपमा सादृश्यं इति अनुपमा ताम् ॥८॥

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति ।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं
तन्मिथ्या गुरु दुष्कृतं भवतु मे स्वं निंदतो निंदितम् ॥९॥

टीका—अज्ञानादित्यादि । अज्ञानाद्-व्यामोहात् । यदवीवृतं-वर्तितवान् । कान् ? नियमिनो-यतीन् । अवर्तिषि-वृत्तिवानहं च ।

अन्यथा—प्रवचनोक्तप्रकारलंघनेन । तस्मिन्नन्यथा वर्तने । यदर्जितं—उपार्जितं । एनः पापम् । तदस्यति—प्रतिक्षिपति । कस्मिन ? वृत्ते—चरित्रे । प्रतिनवं च—अभिनवं चैनो निराकुर्वंति । पुनरपि किं कुर्वंति ? नयति-प्रापयति । कां ? ऋद्धिं । केषां ? सुतपसां । कतिप्रकारां ? सप्ततयीम्—

"बुद्धितवोविय लद्धो विकुव्वणलद्धी तहेव ओसहिआ ।
रसबलअक्खीणाविय लद्धीओ सत्त पएणत्ता ॥ १ ॥" इति ।

किंविशिष्टां ? अद्भुतां आश्चर्यवतीं । कं नयति ? निधिं सुतपसां इत्येतत्संदंशकन्यायेन निधौ ऋद्धौ च संबध्यते । निधीयंते शोभनानि तपांसि यस्मिन्नसौ निधिः परममुनिस्तं । ननु कथमेका क्रिया कर्मद्वये संबध्यते इति चेत् नयतेर्द्विकर्म्मकत्वाद्यथा अजां नयति ग्राममिति । इत्थंभूते वृत्ते यद्दुष्कृतं दुष्टमनुष्ठितं । गुरु महत्पापं उपार्जितं । कथंभूतं ? निंदितं-गर्हितं । तन्मिथ्या भवतु-विफलं संपद्यताम् । मे-मम । कीदृशस्य ? स्वं निंदतः-आत्मानं जुगुप्समानस्य ॥ ६ ॥

संसारव्यसनाहतिप्रचलिता नित्योदयप्रार्थिनः
प्रत्यासन्नविमुक्तयः सुमतयः शांतैनसः प्राणिनः ।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपानमुच्चैस्तरा-
मारोहन्तु चरित्रमुत्तममिदं जैनेन्द्रमोजस्विनः ॥१०॥

टीका—संसारेत्यादि । संसारे व्यसनं दुःखं तेनाहतिरभिघातस्तया-प्रचलिताः प्रकंपिताः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? नित्योदयप्रार्थिनः—नित्यश्चासौ उदयश्च मोक्षलक्ष्मीः नित्यां वा सर्वकालं उदयां उत्तरोत्तरां वृद्धिस्तां प्रार्थयंते इत्येवंशीलाः । पुनरपि कथंभूताः ? प्रत्यासन्नविमुक्तयः—प्रत्यासन्ना निकटीभूता विमुक्तिर्मोक्षो येषां ते तथोक्ताः । पुनरपि कीदृशाः ?

सुमतयः—शोभना मतिर्येषां ते सुमतयः। पुनरपि किंविशिष्टाः? शांतैनसः शांतं उपशमं नीतं एनः पापं यैस्ते शांतैनसः। पुनरपि कथंभूताः? उद्यमिनः-तेजस्विनो वा। एवंविधा ये प्राणिनः—प्राणिनः इति सामान्यवचनेऽपि भव्या एव गृह्यन्ते अन्येषामेवंविधविशेषणविशिष्टत्वानुपपत्तेः। ते आरोहंतु। किं तच्चरित्रं। किंविशिष्टं? उत्तमं उत्कृष्टं। इदं उक्तप्रकारं। जैनेन्द्रं-जिनेन्द्राणामिदं जैनेन्द्रं। पुनरपि किंविशिष्टं तदित्याह मोक्षस्येत्यादि। इवशब्दः सोपानमित्यस्यानंतरं द्रष्टव्यः सोपानमिव कृतं। तत्कस्य? मोक्षस्य। किंविशिष्टं सोपानं? विशालं विस्तीर्णं। न केवलं विशालमेव किंतु उच्चैस्तरां—अतिशयेन उच्चं। पुनरपि कथंभूतं? अतुलं—न विद्यते तुला उपमा यस्य तदतुलं॥ १०॥

प्राकृत-चारित्रभक्तिः।

तिलोए सव्वजीवाणं हिदं धम्मोवदेसिणं।
वड्ढमाणं महावीरं वंदित्ता सव्ववेदिणं॥ १॥
घादिकम्मविघादत्थं घादिकम्मविणासिणा।
भासियं भव्वजीवाणं चारित्तं पंचभेददो॥ २॥

टीका—तिलोयेत्यादि। वंदित्ता-वंदित्वा। कं? वड्ढमाणं-अंतिमतीर्थकरदेवं। किंविशिष्टं? हिदं-हितं। केषां? तिलोए सव्वजीवाणं—त्रैलोक्यसर्वजीवानां। कथमसौ तेषां हितमित्याह धम्मोवदेसिणं—हितं सुखं तद्धेतुश्च धर्मश्चारित्रलक्षणः उत्तमक्षमादिलक्षणश्च तं तेषामुपदिशन् भगवान् हित इत्युच्यते। पुनरपि कथम्भूतं? महावीरं। विशिष्टां इंद्राद्यसंभविनीं ईं लक्ष्मीं रातीति वीरो महान् इंद्रादीनां

पूज्यः स चासौ वीरश्चेति। पुनरपि किंविशिष्टं ? सव्ववेदिणं-सर्वज्ञं। घादिकम्मेत्यादि। तं वंदित्वा। भासियं--प्रतिपादितं। किं तच्चारित्तं--चारित्रं। कथं ? पंचभेददो--पंचभेदानाश्रित्य। केन ? घादिकम्मविणासिणा-देशतो घातिकर्माणि विनाशितवान्, विनाशयतीति वा, साकल्येन विनाशयिष्यतीति वा एवंशीलो घातिकर्मविनाशी गौतमस्वामी तेन। केषां ? भव्वजीवाणं- भव्यजीवानां। किमर्थं ? घादिकम्मविघादत्थं—घातीनि च तानि कर्माणि च ज्ञानावरणादीनि तेषां विघातार्थं विनाशार्थं ॥ १-२ ॥

तानेव पंचचारित्रभेदान् दर्शयितुं आह सामाइयमित्याह--

सामाइयं तु चारित्तं छेदोवट्ठावणं तहा।
तं परिहारविसुद्धिं च संजमं सुहुमं पुणो ॥ ३ ॥
जहाखादं तु चारित्तं तहाखादं तु तं पुणो।
किच्चाहं पंचहाचारं मंगलं मलसोहणं ॥ ४ ॥

टीका—तुशब्दस्तावदर्थे। सामाइयं—सामायिकं सर्वसावद्यविरतिलक्षणं तावच्चारित्रं भाषितं तेन भगवता भव्यजीवानाम्। समित्येकत्वेन औदासीन्यपरिणामलक्षणेन अयनं गमनं स्थानं इत्यर्थः, यथा नयनगतं नयनस्थितं कज्जलं इति, समयः स एव प्रयोजनमस्येति सामायिकं। छेदोवट्ठावणं—छेदेन व्रतभेदेन पक्षमासादिप्रव्रज्याहापनेन वा उपस्थापना पुनर्व्रतारोपणं यत्र चारित्रे तच्छेदोपस्थापनं। तहा—तेनैव प्रकारेण भाषितं। तं—तत्। परिहारविसुद्धिं च—परिहारः प्राणिवधान्निवृत्तिः तेन विशिष्टा शुद्धिर्यत्र तत्परिहारविशुद्धिसंयमं चारित्रं। संजमं सुहुमं—अतिसूक्ष्मकषायत्वात्सूक्ष्मसांपरायचारित्रं। पुण—पुनः परिहारशुद्ध्यनंतरं भाषितं। जहाखादमित्यादि--मोहनीयस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्च यथावस्थितात्मस्वभावं यथाख्यातं तु पुनः चारित्रं।

तहाखादं तु पुणो—तथाख्यातमपि तत्पुनरुच्यते। तथा तेन निरवशेषमोहोपशमक्षयप्रकारेण प्राप्यते इत्याख्यातं तथाख्यातम्। किचाहं पंचहाचारं मंगलं मलसोहणं—इमं पंचधाचारं अहं तदनुष्ठाता कर्ममलशोधनस्वभावमंगलभूतं किच्चा—कृत्वा अनुष्ठाय लभे, मुत्तिजं सुहमित्यभिसम्बन्धः। अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति वचनाल्लभते इत्येतस्यास्मत्संज्ञकैकवचनांतस्य अहमित्यनेनाभिसम्बन्धात्॥ ३-४॥

अहिंसादीणि उत्ताणि महव्वयाणि पंच य।
समिदीओ तदो पंच पंचइंदियणिग्गहो ॥ ५॥
छब्भेयावास भूसिज्जा अण्हाणत्तमचेलदा।
लोयत्तं ठिदिभुत्तिं च अदंतधावणमेव य॥ ६॥
एयभत्तेण संजुत्ता रिसिमूलगुणा तहा।
दसधम्मा तिगुत्तीओ सीलाणि सयलाणि च॥ ७॥
सव्वेवि य परीसहा उत्तुत्तरगुणा तहा।
अण्णे वि भासिया संता तेसिं हाणिं मए कया॥ ८॥

टीका—अहिंसादीणीत्यादि। अहिंसादीणि उत्तानि—अहिंसादीनि उक्तानि घातिकर्मविनाशिना। महव्वयाणि—महाव्रतानि, पंच य—पंच च, समिदीओ समितयः। तदो—ततः पंचमहाव्रतेभ्यः पृथगुक्तास्तेनैव ये चैते पंचमहाव्रतादयः प्रत्येकमुक्ताः ते एकभक्तेन संयुक्ता ऋषिमूलगुणा अष्टाविंशतिरुक्ताः तेनैव भगवता। तांश्च तहा—तेनैव प्रकारेण मंगलं मलशोधनं कृत्वा। दसधम्मेत्यादि—ये दशधर्मत्रिगुप्तिसकलशीलसर्वपरीषहा उक्ताः भगवता। उत्तुत्तरगुणा—उक्ता उत्तरगुणा ये आतापनादयः तांश्च तह—यथा चारित्रादींस्तथा तेनैव प्रकारेणैव मंगलं कृत्वा। न केवलमेते पंचापि तु अण्णेवि—अन्ये अपि बाह्याभ्यंतरतपोविशेषेंद्रियप्राणसंयमादयो भासिया—घातिकर्मविनाशिना भगवता भाषिताः। संता—संतः प्रशस्तास्तांश्च सर्वान्मंगलं मलशोधनं कृत्वा सम्यगनुष्ठायाहं लभे, मुक्तिजं सुखमिति संबंधः। तदनुष्ठाने प्रवृत्तेन च यदि कदाचित् तेसिं—तेषां

भगवत्प्रतिपादितानां सामायिकादीनां हाणी—अननुष्ठानं मए—मया कदा—कृता ॥५-८॥ कथं ?—

जइ राएण दोसेण मोहेणण्णादरेण वा ।
वंदित्ता सव्वसिद्धाणं संजदा सा मुमुक्खुणा ॥९॥
संजदेण मए सम्मं सव्वसंजमभाविणा ।
सव्वसंजमसिद्धीओ लब्भदे मुत्तिजं सुहं ॥१०॥

टीका—जइ राएण—यदि तावद्रागेण स्वात्मनि परत्र वा प्रीत्यनुबंधेन। दोसेण—तत्रैवाप्रीत्यनुबंधलक्षणद्वेषेण। मोहेण—अज्ञानेन। अणादरेण वा—घातिकर्मविनाशिना प्रतिपादितेष्वपि तेषु रुच्यभावोऽनादरस्तेन सा तेषां हानिः संजदा—परित्यक्ता। किं कृत्वा ? वंदित्ता—वंदित्वा वंदनां कृत्वा। केषां ? सव्वसिद्धाणं। सर्वैरपि सिद्धैः तद्धानिपरित्यागेन मुक्तिजं सौख्यं लब्धं। ततो मयापि तान्वंदित्वा तद्धानिं परित्याज्या। संजदेणेत्यादि। संजदेण—यतिना। कथंभूतेन ? मुमुक्खुणा—सकलकर्मविप्रमोक्षमिच्छुना। पुनरपि कथंभूतेन ? सम्मं सव्वसंजमभाविणा—सम्यक्सकलचारित्रानुष्ठायिना। कुतः ? सव्वसंजमसिद्धीओ—सर्वसंयमानां सिद्धिः प्राप्तिर्निष्पत्तिर्वा तस्यास्तत्सिद्धितो। लब्भदे—लभ्यते मुत्तिजं—मुक्तिजं सुखमिति ॥९—१०॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते ! चारित्तभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणुज्जोयस्स, सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पंचमहव्वयसंपुण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाणसाहणस्स, समयाइवपवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

४—प्राकृत-योगिभक्तिः ।

थोस्सामि गुणधराणं अणयाराणं गुणेहिं तच्चेहिं ।
अंजलिमउलियहत्थो अभिवंदंतो सविभवेण ॥ १ ॥

टीका—थोस्सामीत्यादि । थोस्सामि—स्तुतिं करिष्यामि । केषां? अणयाराणं—न विद्यते अगारं गृहं येषां ते अनगारास्तेषां । किंविशिष्टानां? गुणधराणं-गुणान् सम्यग्दर्शनादीन् धरंतीति गुणधरास्तेषां । कैः कृत्वा स्तोष्यामि? गुणेहिं-गुणैर्वीतरागतादिभिः । कथंभूतैः? तच्चेहिं-तत्त्वभूतैः । कथंभूतोहं? अंजलिमउलियहत्थो-अंजलिकरणेन मुकुलितौ संकुटितौ हस्तौ येन । पुनरपि कथंभूतः? अभिवंदंतो-अभिमुखीभूय उत्तमांगेन प्रणामं कुर्वाणः । कथं स्तोष्ये? सविभवेण स्वविभवेन आत्मीयशक्तिव्युत्पत्यनुसारेण ॥ १ ॥

सम्मं चेव य भावे मिच्छाभावे तहेव बोधव्वा ।
चइऊण मिच्छभावे सम्मम्मि उवट्ठिदे वंदे ॥ २ ॥

टीका—सम्मं चेत्यादि । अनगारा द्विप्रकारा बोद्धव्याः । केचन सम्मं चेव य—सम्यग्रूपे एव भावे सम्यग्दर्शनादावुपस्थिताः । मिच्छाभावे तहेव-मिथ्यादर्शनादौ तथैव केचनाभव्यसेनादयः उपस्थिता बोद्धव्याः । तत्र चइऊण मिच्छाभावे—त्यक्त्वा मिथ्याभावे उपस्थिताननगारान् । सम्मम्मि उवट्ठिदे—सम्यग्दर्शनभावे उपस्थितान्वंदे ॥ २ ॥

दोदोसविप्पमुक्के तिदंडविरदे तिसल्लपरिसुद्धे ।
तिण्णियगारवरहिए तियरणसुद्धे णमंसामि ॥ ३ ॥

टीका—दोदोसेत्यादि । द्वौ च तौ दोषौ च रागद्वेषौ ताभ्यां विप्पमुक्केविप्रमुक्तास्तान् णमंसामि—नमस्यामि । तिदंडविरदे—दंडा इव दंडा

निष्ठुरतया परपीडाकारिणः त्रयोऽशुभमनोवाक्कायाः तेभ्यो विरतान्नमस्यामि। तिसल्लपरिसुद्धे—शल्यं शरीरांतर्गतं वाणादिकं तद्यथा बाधाकरं तथा शारीरमानसदुःखहेतुत्वान्मायामिथ्यात्वनिदानानि शल्यानीत्युच्यंते तैः त्रिभिः परि समन्तात् शुद्धान् रहितान्। तिण्णियगारवरहिए—शब्दर्द्धिरसस्वादलक्षणैस्त्रिभिरपि गारवै रहितान्। तियरणसुद्धे—त्रिभिः करणैर्मनोवाक्कायव्यापारैः शुद्धान्निर्मलान्नमस्यामि ॥ ३ ॥

चउविहकसायमहणे चउगइसंसारगमणभयभीए।
पंचासवपडिविरदे पंचिंदियणिज्जिदे वंदे ॥ ४ ॥

टीका—चउव्विहेत्यादि—यथा हरीतक्यादिकषायो रंगश्लेपहेतुस्तथा कर्मश्लेपहेतुत्वात्कषायाः क्रोधमानमायालोभाश्चतुर्विधाश्च ते कषायास्तेषां मथनास्तान्वंदे। चउगइसंसारगमणभयभीए—चतस्रो नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवयोनिप्रापिका गतयो यस्मिन्स चासौ संसारश्च तस्मिन् गमनं पर्यटनं तस्माद्भयभीतान्भयत्रस्तान्। पंचासवपडिविरदे—पंचास्रवा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगलक्षणाः कर्मास्रवहेतुत्वात्तेभ्यः प्रतिविरतान्। पंचिंदियणिज्जिदे—पंचेंद्रियाणि निर्जितानि यैस्तान्वंदे ॥४॥

छज्जीवदयावण्णे छडायदयणविवज्जिदे समिदभावे।
सत्तभयविप्पमुक्के सत्ताणभयंकरे वंदे ॥५॥

टीका—छज्जीवदयावण्णे इत्यादि। षट् च ते जीवाश्च पंचस्थावरास्त्रसाश्चेति तेषु दया करुणा तामापन्नाः प्राप्तास्तान्वंदे। छडायदणविवज्जिदे—षट् च तानि आयतनानि च छडायदणाणि अंतिमस्य लोपं कृत्वा निर्देशः कृतः तैर्मिथ्यादर्शनादित्रयतदाधारपुरुषत्रयरूपैर्विवर्जितान्। समिदभावे—शमिता उपशमं नीता भावाः क्रोधादिपरिणामाः यैः समितिषु भावो येषां इत्यर्थस्तान्। सत्तभयविप्पमुक्के—सप्तभयानि इहलोकभयं, परलोकभयं, अत्राणभयं, अगुप्तिभयं, मरणभयं, वेदनाभयं,

अकस्माद्भयं, इति। उक्तं च—"इहपरलोयत्ताणं अगुत्तिमरणं च वेयणा-कस्सं भयमिति" तैर्विप्रमुक्तान्। सत्ताणऽभयंकरे—सत्त्वानां प्राणिनां अभयंकरान्वंदे ॥५॥

णट्ठट्ठमयट्ठाणे पण कम्मट्ठणट्ठसंसारे।
परमट्ठणिट्ठियट्ठे अट्ठगुड्ढीसरे वंदे ॥६॥

टीका—णट्ठट्ठेत्यादि—नष्टान्यष्टौ जातिकुलबलैश्वर्यरूपतपाज्ञान-शिल्पकर्मलक्षणानि मदस्थानानि येषां तान्। पणट्ठकम्मट्ठणट्ठसंसारे—प्रकर्षेण नष्टानि कर्माणि अष्टौ येषां ते च ते नष्टसंसाराश्च नष्टः संसारो येषां तान्। परमट्ठणिट्ठियट्ठे—परम उत्कृष्टः स चासौ अर्थश्च मोक्षस्तस्य निष्ठितं निष्पत्तिस्तदेव अर्थः प्रयोजनं येषां तान्। अट्ठगुणड्ढीसरे—अष्टौ गुणाः भेदाः यस्याः सा चासौ ऋद्धिश्च तस्यास्तया वा ईश्वरान्स्वामिनः। अष्टौ गुणाः अणिमामहिमालघिमाप्राप्तिप्रागाम्येशित्ववशित्वका-मरूपित्वलक्षणाः। १—अणोः कायस्य करणं अणिमा। २—महिमा महतः कायस्य करणं। ३—लघिमा यल्लघुत्वाद्वायुवत्सर्वत्र संचरति। ४—प्राप्तिर्यद्यन्मनसा चिंतयति तत्तत्प्राप्नोति, भुवि स्थितस्यांगुल्यादिना मेरु-शिखरादिप्रापणशक्तिर्वा प्राप्तिः। ५—भूमाविव जलादौ सर्वत्राप्रतिहतग-मनं प्रागम्यं। न सर्वत्र गमनं अगमः प्रगतोऽगमो यस्मात्, प्रकृष्टो वा आ समंताद्गमो यस्मादसौ प्रागमस्तस्य भावः प्रागम्यं। ६—ईशित्वं त्रैलोक्यप्रभुत्वं। ७—वशित्वं सर्वजीववशीकरणं। ८—क्रमेण युगपद्वा-नेकाभिलषितरूपधारित्वं कामरूपित्वं ॥६॥

णवबंभचेरगुत्ते णवणयसब्भावजाणगे वंदे।
दहविहधम्मट्ठाई दससंजमसंजदे वंदे ॥७॥

टीका—नवबंभेत्यादि। नव च तानि ब्रह्मचर्याणि तानि गुप्तानि रक्षितानि यैस्तान्वंदे। मैथुनविषये प्रत्येकं मनोवाक्कायैः कृतकारिता-

नुमतपरिहरणान्नवविधं ब्रह्मचर्यं भवति। णवणयसब्भावजाणगे—नैगमादयः सप्त द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकौ च द्वौ इति नवनयास्तेषां स्वभावस्य सद्भावस्य सत्ताया वा ज्ञापकान् अत एव वंद्याः वंदनीयास्तान्वंदे। दसविहधम्मट्ठाई—दशविधो धर्म उत्तमक्षमादिविकल्पात् तत्र तिष्ठंति इति दशविधधर्मस्थायिनः तान्। दससंजमसंजदे—एकेन्द्रियादीनां पंचानां रक्षणं प्राणिसंयमः पंचविधः, स्पर्शनादीनां इन्द्रियाणां प्रसरपरिहार इन्द्रियसंयमः पंचविधः एते दशसंयमास्तेषु संयतान् सम्यग्यत्नपरान् वंदे ॥ ७ ॥

एयारसंगसुदसायरपारगे बारसंगसुदणिउणे।
बारसविहतवणिरदे तेरसकिरियादरे वंदे ॥८॥

टीका—एयारसंगेत्यादि—एकादश च तान्यंगानि च तान्येव श्रुतसागरस्तस्य पारं तीरं परिसमाप्तिं गताः प्राप्तास्तान्वंदे। बारसंगसुदणिउणे—द्वादश अंगानि यस्य तच्च तच्छ्रुतं च तत्र निपुणान् दक्षान्। बारसविहतवणिरदे—अनशनावमोदर्यादिकं षड्विधं बाह्यं तपः प्रायश्चित्तविनयादिकं च षड्विधं अन्तरंगमिति द्वादशविधं तपः तत्र निरतानासक्तान्। तेरसकिरियादरे—तिस्रो गुप्तयः पंच समितयः पंच महाव्रतानीति त्रयोदशविधं चारित्रं च त्रयोदश क्रियाः अथवा आवश्यकः षट् पंच नमस्काराः असहिका निषेधिका चेति त्रयोदशक्रियास्तासु आदरस्तात्पर्यं येषां तान्वंदे ॥ ८ ॥

भूदेसु दयावण्णे चउदस चउदससुगंथपरिसुद्धे।
चउदसपुव्वपगब्भे चउदसमलवज्जिदे वंदे ॥९॥

टीका—भूदेस्वित्यादि। भूतेषु जीवेषु दयामापन्नाः प्राप्तास्तान्वंदे। कियत्सु? चउदससु—एकेन्द्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदाश्चत्वारः, द्वित्रिचतुरिंद्रियाः पर्याप्तापर्याप्तभेदात्षट्, पंचेन्द्रियाः संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ता-

पर्याप्तभेदाच्चत्वार इति चतुर्दशजीवाः । चउदसेति लुप्तविभक्तिको निर्देशः । चउदसगुंथपरिसुद्धे–'**मिच्छत्तवेदरागा तहवि य हासादिया य छद्दोसा । चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरा गंथा ॥ १ ॥** एतैश्चतुर्दशभिः सुष्ठु ग्रंथैः परिशुद्धान्वर्जितान् । चउदसपुव्वपगब्भे—चतुर्दशसु पूर्वेषु प्रगल्भान् प्रवीणान् । चउदसमलविवज्जिदे—'**णहरोमजंतुअट्ठीकण-कोंडयपूयचम्ममंसरुहिराणि । बीयफलकंदमूला छिण्णमला चउदसा हुन्ति ॥ १ ॥**' एतैश्चतुर्दशभिर्मलैर्विवर्जितान्वंदे ॥ ९ ॥

वंदे चउत्थभत्तादिजावछम्मासखवणपडिवण्णे ।
वंदे आदावंते सूरस्स य अहिमुहट्ठिदे सूरे ॥ १० ॥

टीका—वंदे इत्यादि । चतुर्थभक्तमुपावास आदिर्यस्य षष्ठाष्टमादेः तच्चतुर्थभक्तादि यावत् षण्मासं तच्च तत्क्षमणं च उपवासाः ते परिपूर्णा येषां तान्वंदे । वंदे आदावंते सूरस्स य अहिमुहट्ठिए सूरे—आदावन्ते च पूर्वाह्णेऽपराह्णे च सूर्यस्य अभिमुखस्थितान् सूरान् कर्मारातिनिर्मूलनसमर्थान् ॥ १० ॥

बहुविहपडिमट्ठाई णिसिज्जवीरासणेक्कवासी य ।
अणिट्ठीवकंडुवदीवे चत्तदेहे य वंदामि ॥ ११ ॥

टीका—बहुविहेत्यादि । बहुविहपडिमट्ठाई बहुविधाश्च ताः प्रतिमाश्च सूर्यप्रतिमादिप्रकाराः तासु तिष्ठन्ति इत्येवंशीलाः बहुविधप्रतिमास्थायिनः । तान्वंदामि—स्तौमि । णिसेज्जवीरासणेक्कवासी य–निषद्या चोपविष्टकायोत्सर्गः वीरासनं च एकपार्श्वश्च ते विद्यंते येषां ते निषद्यवीरासनैकपार्श्विनः तान् । अणिट्ठीवकंडवदीवे—न निष्ठीवनं अनिष्ठीवनं न कंडूयनमकंडूयनं ते एव व्रते ते विद्येते येषां ते अनिष्ठीवनाकंडूयनव्रतिनः तान् । चत्तदेहे य वंदामि–त्यक्तो हेयरूपतयावबुद्धो देहो यैस्तांश्च वंदे ॥ ११ ॥

ठाणी मोणवदीए अब्भोवासी य रुक्खमूली य
धुवकेसमंसुलोमे णिप्पडियम्मे य वंदामि ।। १२ ।।

टीका—ठाणियेत्यादि । स्थानं ऊर्ध्वकायोत्सर्गस्तद्विद्यते येषां ते स्थानिनः । तान् वंदामि—स्तौमि । मोणवदीए-मौनव्रतं विद्यते येषां ते मौनव्रतिनस्तान् । अब्भोवासी य—अभ्रेऽवकाशोऽस्ति येषां ते अभ्राव-काशिनः शीतकाले बहिःशायिनः । रुक्खमूली य—वृक्षमूलमस्ति येषां ते वृक्षमूलिनः । धुवकेसमंसुलोमे—केशाः शिरोवालाः, श्मश्रुलोमानि कूर्चकचाः धुतानि स्फेटितानि केशश्मश्रुलोमानि यैस्तान् । णिप्पडियम्मे य—प्रतिकर्म प्रतिक्रिया रोगादिप्रतीकारः तस्या निष्क्रान्तास्तान्वंदामि-वंदे ॥ १२ ॥

जल्लमल्ललित्तगत्ते वंदे कम्ममलकलुसपरिसुद्धे ।
दीहणहमंसुलोमे तवसिरिभरिए णमंसामि ।। १३ ।।

टीका—जल्लेत्यादि—सर्वांगमलो जल्लः, शरीरैकदेशवर्ती मल्लः ताभ्यां लिप्तानि गात्राणि येषां ते तान्वंदे। कम्ममलकलुसपरिसुद्धे—कर्माण्येव मलाः तैः कलुषः कलुषितत्वं तेन परिशुद्धान् रहितान् । दीहणह-मंसुलोमे-नखाश्च श्मश्रुलोमानि च दीर्घाणि तानि येषां तान् । तवसिरि-भरिए—तपसः श्रीः संपूर्णा संपत् तया भृतान्संपूर्णान् । णमंसामि—नमस्करोमि ॥ १३ ॥

णाणोदयाहिसित्ते सीलगुणविहूसिए तवसुगंधे ।
ववगयरायसुदड्ढे सिवगइपहणायगे वंदे ।। १४ ।।

टीका—णाणोदयाहीत्यादि-ज्ञानमेवोदकं तेनाभिषिक्तान् । सील-गुणविहूसिए-अष्टादशशीलसहस्राणि चतुरशीतिगुणलक्षाणि तैर्विभूषि-तानलंकृतान् । तवसुगंधे-तपसा तपोमाहात्म्येन स्नानगंधानुलेपनाभावेऽपि सुगंधान् । ववगयरायसुदड्ढे—व्यपगतरागाश्च ते श्रुताढ्याश्च तान् ।

सिवगइपहणायगे वंदे—शिवगतेर्मोक्षप्राप्तेः पंथाः मार्गः तस्य नायकान् प्रवर्तकान्वंदे॥ १४ ॥

उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे य घोरतवे।
वंदामि तवमहंते तवसंजमइड्ढिसंजुत्ते ॥ १५ ॥

टीका—उग्गतवेत्यादि—पंचम्यामष्टम्यां चतुर्दश्यां च प्रतिज्ञातोपवासाः अलाभद्वये त्रये वा तथैव निर्वाहयन्ति एवंप्रकाराः उग्रतपसः। दित्ततवे—देहदीप्त्या प्रहतांधकारा दीप्ततपसः। तत्ततवे—तप्तायःपिंडपतितजलकणवद्गृहीताहारशोषणान्नीहाररहितास्तप्ततपसः। महातवे—पक्षमासोपवासाद्यनुष्ठानपरा महातपसः। घोरतवे—सिंहशार्दूलाद्याकुलेषु गिरिकंदरादिषु भयानकश्मशानेषु च प्रचुरतरशीतवातादियुक्तेषु गत्वा दुर्द्धरोपसर्गसहनपराः घोरतपसः। तान्वंदामि—वंदे। कथंभूतानेतान् ? तवमहंते-तपसा महान्तः इन्द्रादीनां पूज्यास्तान्। पुनः कथंभूतान् ? तवसंजमइड्ढि संपत्ते—तपो द्वादशविधं संयमो द्विविधः इंद्रियप्राणिसंयमभेदात्। ऋद्धयः सप्तविधाः। "**बुद्धितओ वि य लद्धी विउवणलद्धी तहेव ओसहिया। रसबलअक्खीणावि य ऋद्धीओ सत्त पण्णत्ता**"॥ १ ॥ इति। तपांसि च संयमौ च ऋद्धयश्च ताः संप्राप्ताः यैस्तान्॥ १५ ॥

आमोसहिए खेलोसहिए जल्लोसहिए तवसिद्धे।
विप्पोसहीए सव्वोसहीए वंदामि तिविहेण॥ १६ ॥

टीका—आमोसहियेत्यादि—आमो अपक्वाहारः स एवौषधिर्व्याधिहरो येषां। खेलो निष्ठीवनं औषधिर्येषां। जल्लौषधिर्येषां। तपसा सिद्धाः प्रसिद्धाः कृतकृत्या वा तपःसिद्धाः तान्। विप्पोसहीए—विप्रुष औषधिर्येषां। सव्वोसहीए—मूत्रपुरीषनखकेशादिकं सर्वं औषधिर्येषां तान्वंदामि—वंदे। तिविहेण—मनोवाक्कायैः॥ १६ ॥

अमयमहुखीरसप्पिसवीए अक्खिणमहाणसे वंदे।
मणबलिवचबलिकायबलिणो य वंदामि तिविहेण॥ १७ ॥

टीका—अमयेत्यादि अमृतं च मधु च क्षीरं च सर्पिश्च तेषां स्रवणं स्वादो वा सोऽस्ति येषां तथोक्ताः। कदशनमपि हि येषां पाणिपतितं तपोमाहात्म्यादमृतादि स्रवति, स्वदते वा तान्वंदे। अक्खीणमहाणसे-अक्षीणं महानसं रसवती येषां यस्माद्भांडकादुद्धृत्य भोजनं तेभ्यो दत्तं तच्चक्रवर्तिकटकेऽपि भोजिते न क्षीयते। मणबलिवचबलिकायबलिणो य—मनोबलं वचोबलं कायबलं च विद्यते येषां तान्वंदामि—नमस्करोमि। तिविहेण—मनोवाक्कायैः॥ १७॥

वरकुट्ठबीयबुद्धी पदाणुसारीय भिण्णसोदारे।
उग्गहईहसमत्थे सुत्तत्थविसारदे वंदे॥ १८॥

टीका—वरकुट्ठेत्यादि—कोष्ठं च बीजं च वरे श्रेष्ठे च ते कोष्ठबीजे च तद्वद् बुद्धिर्येषां तान्। पदानुसारो विद्यते येषां तान्। संभिन्नं शृण्वन्ति इति संभिन्नश्रोतारः तान्। उग्गहईहसमत्थे—अवग्रहश्च ईहा च ताभ्यां समर्थान् पदार्थस्वरूपनिश्चयकुशलान्। सुत्तत्थविसारदे—सूत्रार्थे आगमार्थे विशारदान् धारणायुक्तानित्यर्थः तान् अवग्रहेहावायधारणायुक्तान्वंदे॥ १८॥

आभिणिबोहियसुदओहिणाणिमणणाणिसव्वणाणी य।
वंदे जगप्पदीवे पच्चक्खपरोक्खणाणी य॥ १९॥

टीका—आभिणिबोहियेत्यादि—आभिनिबोधिकं च मतिज्ञानं श्रुतं चावधिश्च तानि च तानि ज्ञानानि च तानि विद्यंते येषां, मनोज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं तद्विद्यते येषां, सर्वस्य जीवादिपदार्थस्य ज्ञानं सर्वज्ञानं केवलज्ञानं तद्विद्यते येषां तान्वंदे। जगप्पदीवे-जगतः प्रदीपकान् प्रकाशकान्। पच्चक्खपरोक्खणाणी य-प्रत्यक्षं च अवधिमनःपर्ययकेवलाख्यं परोक्षं च मतिश्रुते ते च ज्ञाने च विद्येते येषां तान्॥ १६॥

आयासतंतुजलसेढिचारणे जंघचारणे वंदे।
विउवणइड्ढिपहाणे विज्जाहरपण्णसवणे य॥ २०॥

टीका—आयासेत्यादि—आकाशं च तंतुश्च जलं च श्रेणिश्च पर्वतकटिनी तेषु चारणा गन्तारः तान्वंदे। जंघाचारणे-जंघाभ्यां क्षणार्द्धे योजनशतादिकमक्लेशेन गंतारश्च, जंघायां वा अग्रे तिर्यक्कृतायामपि चारणा अप्रतिहतगमनास्तान्वंदे। विउवणइड्ढिपहाणे-विकुर्वणऋद्धेः प्रधानस्वामिनः। विज्जाहरपण्णसवणे य-विद्याधराः सन्तो ये तपोऽनुगृह्णन्ति येषां प्रज्ञातिशयस्तदैव संपद्यते इति विद्याधराश्च ते प्रज्ञाश्रमणाश्च, यदि वा विद्याधरानिव अप्रतिहतगतित्वेनैतान्प्रज्ञयोपलक्षितान् श्रमणयतीन् ॥ २० ॥

गइचउरंगुलगमणे तहेव फलफुल्लचारणे वंदे।
अणुवमतवमहंते देवासुरवंदिदे वंदे ॥२१॥

टीका—गइचउरंगुलगमणेत्यादि—गम्यते यत्रासौ गतिर्मार्गो गतौ चतुरंगुलैर्भूमिमस्पृशतां गमनं येषां तान्वंदे। तहेव—तथैव फलानि च पुष्पाणि च तेषु चारणान् तद्विघातमकुर्वतः तदुपरि गन्तन्। अणुवमतवमहन्ते—अनुपमं तपो येषां ते च ते महांतश्च उत्तमास्तान्वंदे। देवासुरवंदिदे—देवैरसुरैश्च वंदितान्वंदे ॥ २१ ॥

जियभयजियउवसग्गे जियइंदियपरीसहे जियकसाए।
जियरायदोसमोहे जियसुहदुक्खे णमंसामि ॥ २२ ॥

टीका—जियभयेत्यादि—जितं भयं यैर्जिता उपसर्गा यैस्तान्वंदे। जियइंदियपरीसहे—जिता इंद्रियपरीषहा यैस्तान्वंदे। जियकसाए—जिताः कषायाः क्रोधादयो यैस्तान्। जियरागदोसमोहे—रागः शुभे प्रीतिः द्वेषोऽशुभेऽप्रीतिः, मोहो मूढता जितास्ते यैस्तान्। जियसुहदुक्खे—जितं सुखं दुःखं च यैस्तान्। णमंसामि—नमस्करोमि ॥ २२ ॥

एवं मए भित्थुया अणयारा रायदोसपरिसुद्धा।
संघस्स वरसमाहिं मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥ २३ ॥

टीका—एवमित्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं याचते। एवं पूर्वोक्त-क्रमेण। मयाऽभिष्टुता अभिवंदिताः। न विद्यते अगारं गृहं येषां ते अनगाराः यतयः। रायदोसपरिसुद्धा—रागद्वेषैः परिशुद्धा रहिताः। संघस्स-संघस्य तावद्वरं श्रेष्ठं समाहिं-धर्म्यशुक्लध्यानपरतां। मज्झवि-मह्यमपि दुक्खक्खयं-संसारदुःखोच्छित्तिं ददतु-प्रयच्छंतु॥ २३॥

संस्कृत-योगिभक्तिः।

(२)
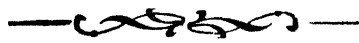
दुवई छन्दः।

जातिजरोरुरोगमरणातुरशोकसहस्रदीपिता
दुःसहनरकपतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्धचेतसः।
जीवितमंबुबिंदुचपलं तडिदभ्रसमा विभूतयः
सकलमिदं विचिन्त्य मुनयः प्रशमाय वनान्तमाश्रिताः॥१॥

टीका—जातिजरोरुरोगेत्यादि। वनांतं वनमध्यं आश्रिता गताः। के ते? मुनयः। किं कृत्वा? विचिन्त्य। किं तत्? जीवितं। किंविशिष्टं? अंबुबिंदुवच्चपलं चंचलं। तडिदभ्रसमा विभूतयः-तडिता विद्युता अभ्रेण च मेघपटलेन च समा क्षणदृष्टनष्टरूपा विभूतयो लक्ष्म्यः। इति इदं सकलं विचिन्त्य। किंविशिष्टा मुनय इत्याह जातीत्यादि—जातिश्च जन्म च जरा च वृद्धत्वं उरुरोगाश्च महारोगाः भगंदरजलोदरादयः मरणं च तैरातुराः पीडितास्ते च ते शोकसहस्रैः पुत्रकलत्रादिवियोगजातसंतापविशेषैः दीपिताश्च प्रज्वलिताः। पुनरपि कथंभूता इत्याह दुःसहेत्यादि—दुःसहमसह्यं यन्नरकपतनं नरकगमनं तस्मात्संत्रस्तधियो भीतमतयः। पुनरपि किंविशिष्टाः? प्रतिबुद्धचेतसः-प्रतिबुद्धं हेयोपादेयविवेकचतुरं

चेतो येषां । किमर्थं इत्थंभूतास्ते वनांतमाश्रिताः ? प्रशमाय-प्रकृष्टश्चासौ शमश्च रागद्वेषोपरमः संसारोच्छित्तिर्वा तस्मै ॥ १ ॥

ते च मुनयः तदाश्रिताः सन्तः किं कुर्वन्तीत्याह—

भद्रिका ।

व्रतसमितिगुप्तिसंयुताः शिवसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः ।
ध्यानाध्ययनवशंगता विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥२॥

टीका—व्रतेत्यादि । चरन्त्यनुतिष्ठंति । किं तत् ? तपो बाह्यं कायक्लेशलक्षणं । कथंभूता इत्याह व्रतेत्यादि—व्रतसमितिगुप्तिषु संयताः यत्नपराः । किं कृत्वा ? आधाय—संप्रधार्य । क ? मनसि । किं ? शिवसुखं—मोक्षसुखं शमसुखमिति च कचित्पाठः । तत्र शमे सकलरागाद्युपशमे वीतरागतायां यत्सुखं आत्मोत्थं अतीन्द्रियमिति ग्राह्यं । वीतमोहाः—विशेषेण इतो गतो मोहो येषां । ध्यानाध्ययनवशंगताः—ध्यानाध्ययनयोर्वशमाधीनतां गताः । किमर्थं तत्ते चरंति ? विशुद्धये । केषां ? कर्मणाम् ॥२॥

दुवई ।

दिनकरकिरणनिकरसंतप्तशिलानिचयेषु निःस्पृहा
मलपटलावलिप्ततनवः शिथिलीकृतकर्मबंधनाः ।
व्यपगतमदनदर्परतिदोषकषायविरक्तमत्सरा
गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभिमुखस्थितयो दिगंबराः ॥३॥

टीका—दिनकरेत्यादि । चंडकिरण आदित्यस्तस्य अभिमुखा सन्मुखा स्थितिः स्थानं येषां ते इत्थंभूता दिगंबरास्तपश्चरंति । केत्याह दिनकरेत्त्यादि—दिनकरस्य किरणानां निकरेण रश्मिसमूहेन संतप्ताश्च ते शिलानिचयाश्च पाषाणसंघातास्तेषु । क ते शिलानिचयाः ? गिरिशिखरेषु गिरीणां शिखराणि अग्रभागास्तेषु । कथंभूताः ? निःस्पृहाः—निरीहाः ।

मलपटलावलिप्ततनवः—मलपटलेनावलिप्तास्तनवो येषां ते । शिथलीकृत-कर्मबंधनाः—शिथलीकृतानि स्थित्यनुभवबंधस्वरूपात्प्रच्यावितानि कर्म-बंधनानि यैः । व्यपगतेत्यादि—मदनदर्पश्च, रतिश्चेष्टे प्रीतिः, दोषाश्च मोहादयः, कषायाश्च क्रोधादयो विशेषेण अपगता नष्टा एते एषां ते च ते विरक्तमत्सराश्च विरक्तः पराङ्मुखो जातः मत्सरो मात्सर्यं येषां ते ॥३॥

अतिरौद्रतापश्च ग्रीष्मे किंविशिष्टैः तैः सह्यते इत्याह—

भद्रिका।

सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयःसिच्यमानपुण्यकायैः ।
धृतसंतोषच्छत्रकैस्तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥

टीका—सज्ज्ञानेत्यादि—सज्ज्ञानं मत्यादि पंचविधं एतदेवमृतं आप्यायकत्वात् तत्पिबन्तीत्येवं शीलास्तैः। क्षांतिरेव पयः तेन सिच्यमानः पुण्यः प्रशस्तः कायः शरीरं, पुण्यानां वा कायः संघातः सिच्यमानो वृद्धिं नीयमानो यैः । धृतं संतोष एव छत्रं यैः । इत्थंभूतैर्मुनीन्द्रैस्तीव्रोप्यसह्योऽपि तापः सह्यते ॥४॥

ग्रीष्मानंतरं प्रावृषः प्रवेशे मुनयः किं कुर्वन्तीत्याह—

दुवई ।

शिखिगलकज्जलालिमलिनैर्विबुधाधिपचापचित्रितै—
भींमरवैर्विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभिः ।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशंकमासते ॥५॥

टीका—शिखीत्यादि—शिखिनो मयूरस्य गलश्च कज्जलं चालयश्च भ्रमरास्तद्वन्मलिनैः कृष्णैः । विबुधाधिपस्येंद्रस्य चापेन इन्द्रधनुषा चित्रितैः । भीमरवैः—भयानकशब्दैः । विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायुवृष्टिभिः—विशेषेण सृष्टा विसर्जिताश्चण्डाः प्रचण्डाः अशनिशीतलवायुवृ-

ष्टयः यैः इत्थंभूतैः जलदैर्मेघैः गगनतलं आकाशोपरितनभागं। स्थगितं—पिहितं। विलोक्य। सहसा—झटिति। तपोधनाः आतापनं विधाय पुनरपि तरुतलेषु वृक्षमूलेषु। विषमासु—भयानकासु निशासु रात्रिषु। विशंकं विगतशंकं यथा भवत्येवं। आसते—तिष्ठन्ति ॥५॥

तत्र च तिष्ठन्तस्तेऽनवरतं जलधारापीड्यमानवपुषोऽपि प्रतिज्ञातव्रतान्न चलंतीत्याह—

भद्रिका।

जलधाराशरताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःखभीरवः परीषहारातिघातिनः प्रवीराः ॥६॥

टीका—जलधारेत्यादि। न चलंन्ति। कस्मात्? चरित्रतः—कायक्लेशरूपाद्बाह्यतपसः। के ते? नृसिंहाः—नृणां सिंहाः प्रधानाः। किं कदाचित्? सदा—सर्वकालं। कथंभूता इत्याह जलधारेत्यादि—जलधारा एव शराः पीडाकारित्वात् तैः ताडिताः अभिहताः। संसारदुःखभीरवः—संसारे दुःखं तस्माद्भीरवः। परीषहारातिघातिनः—परीषहा एव अरातयः शत्रवः तान् घ्नंतीत्येवंशीलाः अत एव प्रवीराः। अथवा प्रकृष्टां परमप्रकर्षप्राप्तां विशिष्टां अन्यजनातिशायिनीं ईं मोक्षलक्ष्मीं रांतीति प्रवीराः ॥६॥

दुवई।

अविरतबहलतुहिनकणवारिभिरंघ्रिपपत्रपातनै—
रनवरतमुक्तसात्काररवैः परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः।
इह श्रमणा धृतिकंबलावृताः शिशिरनिशां
तुषारविषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः ॥७॥

टीका—अविरतेत्यादि। अथ—वर्षाकालानंतरं। इह—लोके। श्रमणाः—मुनयः। शिशिरनिशां—शीतकालरात्रिं। गमयन्ति—नयंति। किंविशिष्टां? तुषारविषमां—तुषारेण हिमेन विषमां असह्यां। कथंभूताः?

चतुःपथे स्थिताः। पुनरपि कथंभूताः? शोषितगात्रयष्टयः। कैः? अनिलैः वायुभिः। किंविशिष्टैरित्याह अविरतेत्यादि—अविरतं निरंतरं बहुलं प्रचुरं तुहिनकणवारि हिमबिन्दुजलं येषां तैः। अंघ्रिपपत्रपातनैः—वृक्षपत्रपातनैः। अनवरतप्रमुक्तसात्काररवैः—अनवरतं संततं प्रकृष्टो महान्मुक्तः सात्काररूपो रवःशब्दो यैः। परुषैः-निष्ठुरैः इत्थंभूताः संतोऽपि धृतिकम्बलावृताः एतां सुखेन गमयन्ति॥ ७॥

इतीत्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं याचते—भद्रिका।

इति योगत्रयधारिणः सकलतपःशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः।
परमानंदसुखैषिणः समाधिमग्र्यं दिशंतु नो भदन्ताः।८॥

टीका—एवं उक्तप्रकारेण। योगत्रयधारिणः-आतापनवृक्षमूल चतुःपथावस्थिताः मनोवाक्कायनिरोधकारिणः। सकलतपःशालिनः-सकलं बाह्यं अभ्यंतरं च यत्तपस्तेन शालिनः शोभमानाः। प्रवृद्धपुण्य-कायाः—प्रवृद्धः परमातिशयं प्राप्तः पुण्यानां कायः संघातः, अथवा प्रवृद्ध उक्तप्रकारतपोविधाने सोत्साहः पुण्यः प्रगल्भः कायः शरीरं येषां। परमानंदसुखैषिणः—मोक्षसुखाभिलाषिणः। समाधि-धर्मध्यानं, अग्र्यं—परमशुक्लध्यानरूपं। दिशन्तु—प्रयच्छन्तु। के ते? भदंताः। नोऽस्माकं स्तुतिकर्तॄणाम्॥८॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोणविरासणेक्कपासकुक्कुडासणचउत्थपक्खखवणादि-योगजुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

५—आचार्यभक्तिः

(१)

स्कंदछंद

सिद्धगुणस्तुतिनिरतानुद्धूतरुषाग्निजालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसंपूर्णान्मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥
मुनिमाहात्म्यविशेषाञ्जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ॥२॥

टीका—सिद्धगुणस्तुतीत्यादि—सिद्धानां गुणा अष्टौ सम्यक्त्वादयस्तेषां स्तुतिस्तत्र निरतांस्तत्परान्युष्मानभिनौमि इति संबंधः। रुषा क्रोधः सैवाग्निः संतापहेतुत्वात् रुषेत्युपलक्षणं मानमायालोभानां तस्य जालं संघातस्तस्य ये बहुला अनंतानुबंध्यादिबहुप्रकाराः विशेषभेदाः उद्धूता उन्मूलितास्तद्विशेषा यैस्तान् । गुप्तिभिस्तिसृभिरभिसंपूर्णान् परिपूर्णान् । मुक्तियुतः-मुक्तिसंबंधवतः । सत्यवचनेन लक्षितो भावोऽवंचकत्वं येषां तान् । मुनीत्यादि—मुनीनां माहात्म्यविशेषो ज्ञानाद्यतिशयविशेषो येषां तान् । जिनशासने सत्प्रदीपास्तदुद्योतकत्वात् भासुरमूर्तयश्च-सत्प्रदीपवद्भासुरा तपोमाहात्म्याद्दीप्रा मूर्तिः शरीरं येषां तान् । सिद्धिं-मुक्तिं प्रपित्सु जिगमिषु मनो येषां तान् । बद्धं उपार्जितं यद्रजो ज्ञानाद्यावरणं तदुपार्जने च यद्विपुलं प्रचुरं मूलं तत्प्रदोषनिह्नवादिकारणं तयोर्घातने विनाशने कुशलान् दक्षान् ॥१-२॥

गुणमणिविरचितवपुषः षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन्सततम् ।
रहितप्रमादचर्यान्दर्शनशुद्धान्गणस्य संतुष्टिकरान् ॥३॥

टीका—गुणेत्यादि—गुणा एव मणयस्तैर्विरचितं वपुर्यैस्तान् । षड्द्रव्याणां विनिश्चितं विनिश्चयः तस्य धातॄनाधारान् । सततं सर्वदा । रहिता वर्जिता विकथादिपंचदशप्रमादैरनुपलक्षिता चर्या चारित्रं यैः । दर्शनं शुद्धं शंकादिदोषरहितं येषां तान् । गणस्य संघस्य संतुष्टिकरान् ३॥

मोहच्छिदुग्रतपसः प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान् ।
प्रासुकनिलयाननघानाशाविध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ॥४॥

टीका—मोहेत्यादि—मोहच्छित् अवध्यादिज्ञानहेतुतया अज्ञाननाशकं उग्रं तपो येषां। प्रशस्तेन धर्मानुबंधिना परिशुद्धेन लाभादिवर्जितेन हृदयेन शोभनः स्वपरोपकारको व्यवहारो विकल्पाभिधानरूपो येषां। प्रासुको जंतुसन्मूर्च्छनरहितो निलय आवासस्थानं येषां। न विद्यते अघं पापं येषां। इहलोकपरलोकाशाया विध्वंसि विनाशकं चेतो येषां। हतः स्फोटितः कुपथो मिथ्यादर्शनादिलक्षणो यैः ॥ ४ ॥

धारितविलसन्मुंडान्वर्जितबहुदंडपिंडमंडलनिकरान् ।
सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥५॥

टीका—धारितेत्यादि—धारिताः विलसंतः शोभमानाः मुंडाः प्रशस्तमनोवाक्कायपंचेन्द्रियहस्तपादलक्षणाः यैः। बहुदंडः प्रचुरप्रायश्चित्तः पिंड आहारो येषु मंडलप्रकरेषु अथवा पिंडाश्च मंडलनिकराश्च बहुदंडाश्च ते वर्जिता यैः। सकलपरीषहजयिनः। काभिः ? क्रियाभिर्विशिष्टानुष्ठानैः। कदाचित्सप्रमादास्ते भविष्यंति इत्यतो न तेषां सर्वथा तज्जयः स्यादित्याह अनिशमित्यादि—अनिशं अनवरतं। प्रमादतः प्रमादेन परिसमन्ताद्रहितानतोऽनिशं तज्जयिनस्ते ॥ ५ ॥

अचलान्व्यपेतनिद्रान् स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्याहीनान् ।
विधिनानाश्रितवासानलिप्तदेहान्विनिर्जितेंद्रियकरिणः ॥६॥

टीका—अचलानित्यादि—यतस्ते तज्जयिनोऽतोऽचला न चलंति प्रतिज्ञानादनुष्ठानात्कुतश्चिदपि परीषहोपनिपाते। विशेषेण अपेता नष्टा निद्रा येषां ते। स्थानं ऊर्ध्वकायोत्सर्गस्तेन युतान्युक्तान्। कष्टा दुःखदायित्वात् दुष्टा दुर्गतिहेतुत्वात् ताश्च ता लेश्याश्च कृष्णाद्यास्तिस्रस्ताभिर्हीनान्। यदि वा विधिना आगमोक्तविधानेन नानागिरिगह्वराद्यनेकप्रकारा आश्रिता वासा यैः। अलिप्तस्तपोमाहात्म्यान्निर्मलो विलप्त इति च

क्वचित्पाठे विलिप्तः सर्वाङ्गमलयुक्तो देहो येषां। विनिर्जिता इन्द्रिय-करिणो यैः ॥ ६ ॥

अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्तचित्तानखंडितस्वाध्यायान्।
दक्षिणभावसमग्रान्व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ॥ ७ ॥

टीका—अतुलानित्यादि। अतुलान्—न विद्यते तुला सादृश्यं येषां। उत्कुटिकया आसं आसनं येषां। विविक्तं शयनं हेयोपादेयविवेकोपेतं चित्तं चारित्रं येषां। अखंडितः स्वाध्यायो यैः। दक्षिणेन प्रशस्तेन भावेन परिणामेन समग्रान् परिपूर्णान्। व्यपगतेत्यादि सुगमं ॥७॥

भिन्नार्तरौद्रपक्षान्संभावितधर्मशुक्लनिर्मलहृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन्पुण्यान् गण्योदयान्विलीनगारवचर्यान् ॥८॥

टीका—भिन्नेत्यादि। भिन्नौ विनाशितौ आर्तरौद्रयोः पक्षावग्रौ यैः। सम्यग्भाविते अनुभूते धर्मशुक्लध्याने निर्मलेन हृदयेन यैः। नित्यं सर्वदा। पिनद्धा निराकृता कुगतिर्यैः। पुण्यान्प्रशस्तान्पवित्रीभूतान्वा। गण्यः श्लाघ्यः उदयः ऋद्ध्यादिविशेषप्राप्तिर्येषां। विलीना नष्टा गारवाणां ऋद्धिरसास्वादलक्षणानां चर्या प्रवृत्तिर्येषां ॥८॥

तरुमूलयोगयुक्तानवकाशातापयोगरागसनाथान्।
बहुजनहितकरचर्यानभयाननघान्महानुभावविधानान् ॥९॥

टीका—तरुमूलेत्यादि। वर्षाकाले तरुमूलयोगयुक्तान्। शीतकाले ग्रीष्मकाले च यथासंख्यं अनवकाशश्च अभ्रावकाशश्च, आतपयोगश्चातापन-योगस्तत्रानुरागः प्रीतिस्तेन सनाथान् समन्वितान्। बहुजनानां हितकरा सुखकरा चर्या चारित्रं मनोवाक्कायप्रवृत्तिर्वा येषां। अभयान्सप्तभयवर्जि-तान्। अनघान् निष्पापान्। पुण्यमाहात्म्यान्महतोऽनुभावस्य प्रभावस्य माहात्म्यस्य धर्मशुक्लध्यानपरिणामस्य वा विधानं कारणं येषां ॥९॥

ईदृशगुणसंपन्नान्युष्मान्भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारतमग्र्यान्मुकुलीकृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥१०॥

अभिनौमि सकलकलुषप्रभवोदयजन्मजरामरणबंधनमुक्तान्
शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम्।११

टीका—ईदृशेत्यादि। ईदृशगुणैः प्राक्प्रतिपादितप्रकारगुणैः संपन्नान्युक्तान्। यतो युष्मान्भगवतस्ततोऽभिनौमि। कया? भक्त्या। विशालया महत्या। स्थिराः परीषहादिभ्यो अक्षोभा योगा मनोवाक्कायाः येषां। विधिना आचार्यभक्त्यादिप्रकारेण। अनारतं—अनवरतं अग्रयान्—सकलगुणोपेततया प्रधानभूतान्। कथं अभिनौमि? इत्याह मुकुलीकृतेत्यादि—सुगमं। पुनरपि किंविशिष्टान्युष्मानित्याह सकलेत्यादि—कलुषात्कर्मणः प्रभव उदयो येषां तानि च तानि जन्मजरामरणानि च सकलानि च तानि तानि च तेषां बंधनं प्रबंधः संबंधो वा तेन मुक्तान् रहितान्। किमर्थं सततमभिनौमीत्याह शिवमित्यादि—मुक्तिसौख्यमस्त्वित्येवमर्थं। किं विशिष्टं तत्? शिवं—प्रशस्तं। अचलं—हीनाधिकभावरहितं। अनघं—निर्दोषं। अक्षयं—अविनश्वरं। अव्याहतं—विगतबाधमिति ॥१०—११॥

प्राकृताचार्यभक्तिः।

(२)

देसकुलजाइसुद्धा विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्च ॥१॥

देशकुलजातिशुद्धाः विशुद्धमनोवचनकायसंयुक्ताः।
युष्माकं पादपयोरुहं इह मगलं अस्तु मे नित्यम् ॥१॥

टीका—देशकुलेत्यादि गाथाबन्धः। कुलं पितृपक्षः। जातिर्मातृपक्षः। तुम्हं युष्माकं। अत्थु मे णिच्चं—अस्तु मम नित्यं ॥१॥

सगपरसमयविदण्हू :आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता ।
सुसमत्था जिणवयणे विणये सत्ताणुरूवेण ॥२॥

स्वकीयपरसमयविदः आगमहेतुभिः चापि ज्ञात्वा ।
सुसमर्था जिनवचने विनये सत्त्वानुरूपेण ॥

टीका--सगपरसमयविदण्हू--स्वकीयपरकीयमतविचारकाः। किं कृत्वा ? जाणित्ता--जीवादिपदार्थान्ज्ञात्वा। कैः ? आगमहेदूहिं चावि--आगमेन हेतुभिश्चापि। इत्थंभूताश्च संतस्ते । सुसमत्था--सुसमर्थाः। जिणवयणे--जिनवचनप्रतिपादितार्थसमर्थने सुष्ठु समर्थाः तथा विनये सत्त्वानुरूपेण सुसमर्थाः ॥ २ ॥

बालगुरुबुड्ढसेहे गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥३॥

बालगुरुवृद्धशिक्षकाः ग्लानस्थविराश्च क्षपणसंयुक्ताः ।
प्रवर्तयितारः अन्यान् दुःशीलांश्चापि ज्ञात्वा ॥

वयसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपहे ठावया पुणो अण्णे ।
अज्झावयगुणणिलये साहुगुणेणावि संजुत्ता ॥ ४ ॥

व्रतसमितिगुप्तियुक्ताः मुक्तिपथे स्थापकाः पुनरन्ये ।
अध्यापकगुणनिलयाः साधुगुणेनापि संयुक्ताः ॥

उत्तमखमाए पुढवी पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा ।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो ॥५॥

उत्तमक्षमायाः पृथ्वी प्रसन्नभावेन अच्छजलसदृशाः ।
कर्मेंधनदहनतः अग्निः वायुरसंगात् ॥

गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा ।
एरिसगुणणिलयाणं पायं पणमामि सुद्धमणो ॥६॥

गगनमिव निरुपलेपाः सागर इव मुनिवृषभाः ।
ईदृशगुणनिलयानां पादौ प्रणमामि शुद्धमनाः ॥

संसारकाणणे पुण बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण ॥७॥

संसारकानने पुनर्बंभ्रम्यमानैर्भव्यजीवैः ।
निर्वाणस्य स्फुटं मार्गो लब्धो युष्माकं प्रसादेन ॥

अविसुद्धलेस्सरहिया विसद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥ ८ ॥

अविशुद्धलेश्यारहिता विशुद्धलेश्याभिः परिणताः शुद्धाः ।
रौद्रार्तान्पुनस्त्यक्त्वा धर्म्ये शुक्ले च संयुक्ताः ॥

टीका—बाल इत्यादि । बाल—बालकः वयसा, गुरु—तपसा श्रुतेन बृहन्, बुड्ढ—मध्यमवयसः, सेहे-शिक्षकाः, गिलाण—व्याधिपीडिताः, खमण-संजुत्ता—उपवासोपेताः, वट्टावयगा—सन्मार्गे प्रवर्तयितारः, अण्णे—अन्यान् शिष्यान् । दुस्सीले चावि जाणित्ता-विरूपकानुष्ठानान् ज्ञात्वा । पसण्णभावेण—अकषायपरिणामेन । णिरुवलेवा—निरुपलेपाः अबंधका इत्यर्थः । बंभममाणेहिं—बंभ्रम्यमानैः । तुम्हं-पसाएण-युष्माकं प्रसादेन, सुद्धा—रागद्वेषरहिताः ॥३-८॥

उग्गहईहावायाधारणगुणसंपदेहि संजुत्ता ।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहि वंदामि ॥९॥

अवग्रहेहावायधारणागुणसंपद्भिः संयुक्ताः ।
श्रुतार्थभावनायाः आविर्भाविकाभिर्वंदे ॥

टीका—उग्गहईहावायाधारणगुण संपदेहि संजुत्ता—अवग्रहेहा-वायधारणाः एव गुणाः तासां वा गुणाः यथावत्स्वविषयपरिच्छेदकत्व-धर्मास्तेषां संपदाभिः संयुक्ताः समन्वितास्तान्वंदामि वंदे । कथंभूताभि-

स्ताभिः? भावियमाणेहि—आविर्भाविकाभिः। कस्याः? सुत्तत्थभावणाए—श्रुतार्थभावनायाः श्रुतज्ञानस्य। मतिपूर्वं श्रुतमिति वचनात् तस्य जनिका न विरुध्यन्ते ॥९॥

तुम्हमित्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं याचते—

तुम्हं गुणगणसंथुदि अजाणमाणेण जो मया वुत्तो ।
देउ मम बोहिलाहं गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥१०॥

युष्माकं गुणगणसंस्तुतिः अजानता यो मयोक्तः ।
ददातु मम बोधिलाभं गुरुभक्तियुतस्तवो नित्यम् ॥

टीका—देउ-ददातु। कं? बोहिलाहं-बोधिलाभं बोधिशब्देनेह रत्नत्रयं गृह्यते बुध्यते अनंतचतुष्टयं अनुभूयते यन्माहात्म्यादसौ बोधिः रत्नत्रयं तस्य लाभं प्राप्तिं। णिच्चं-सर्वकालं। मम—स्तुतिकर्तुः। कोसौ? गुरुभत्तिजुदत्थओ—गुर्वी महती भक्तिस्तया युक्तः स्तवः। किं विशिष्टोसौ? तुम्हं—युष्माकं। गुणगणसंथुदि—देशकुलजातिशुद्धत्वादिगुणोपेतानां गुणानां गणः संघातस्तस्य संस्तुतिर्व्यावर्णनं यत्र स्तवे। इत्थंभूतः। जो मया वुत्तो—यः स्तवो मया स्तवकेन उक्तः। कथंभूतेन? अजाणमाणेण—भगवद्गुणगणस्तुतिं यथावदजानता ॥१०॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसणसम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

६-निर्वाणभक्तिः।

(१)

विबुधपतिखगपनरपतिधनदोरगभूतयक्षपतिमहितम्।
अतुलसुखविमलनिरुपमशिवमचलमनामयं संप्राप्तम् ॥१॥
कल्याणैः संस्तोष्ये पंचभिरनघं त्रिलोकपरमगुरुम्।
भव्यजनतुष्टिजननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या ॥ २ ॥

टीका—संस्तोष्ये इति द्वितीयार्यागतेन क्रियापदेनाभिसम्बन्धः। कं? सन्मतिं अंतिमतीर्थकरदेवं। कया? भक्त्या। कैः कृत्वा संस्तोष्ये? कल्याणैः। किंविशिष्टैः? पंचभिर्गर्भावतारजन्माभिषेकनिःक्रमणज्ञानलक्षणैः? पुनरपि किंविशिष्टैः? भव्यजनतुष्टिजननैः—भव्यजनसंतोषकरैः। दुरवापैः—महता कष्टेन प्राप्यैः? कथंभूतं सन्मतिं? अनघं—निःपापं अत एव त्रिलोकपरमगुरुं। पुनरपि कथंभूतमित्याह विबुधेत्यादि–विबुधा देवाः तेषां पतय इंद्राः, खे गच्छन्ति इति खगाः विद्याधरास्तान्पांति रक्षंति इति खगपाः विद्याधरचक्रवर्तिनः,नरपतयश्चक्रवर्तिनः, धनदाश्च उरगाश्च भूतानि च यक्षाश्च तेषां पतयस्तैर्महितं पूजितं। तथा संप्राप्तं। किं तदित्याह—अतुलं अनुपमं सुखं यत्र तच्च तद्विमलं च विनष्टकर्ममलं च अतएव निरुपमं, तच्च तच्छिवं च निर्वाणं अचलं हीनाधिकसुखादिस्वरूपरहितं। यदि वा न चलति न नश्यति इत्यचलं अनेन मुक्तः पुनः कदाचित्संसारे परिभ्रमति इति वैशेषिकादिमतं निरस्तं तद्भ्रमणे कारणाभावात्। तत्र हि प्राणिनां परिभ्रमणे कर्मकारणं न च मुक्तस्य तदस्तीति। अनामयं—न विद्यते आमयो व्याधिर्यत्र ॥१—२॥

आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः ॥ ३ ॥

सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुंडपुरे ।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान्संप्रदर्श्य विभुः ॥ ४ ॥

टीका—अच्युतस्वर्गसंबंधिनः पुष्पोत्तरविमानात् ईशो वर्द्धमान-स्वामी । यदि वा ईशः पुष्पोत्तरविमानासक्तदेवानां प्रभुः अत्रायातः ॥३-४॥

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्यां ।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥ ५ ॥
हस्ताश्रिते शशांके चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे ।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ॥ ६ ॥

टीका—फाल्गुनि—उत्तरफाल्गुनि । जज्ञे—जातः । स्वोच्चस्थेषु स्वकीयस्वकीयराशेः उच्चस्थेषु अनुकूलस्थानस्थेषु । चैत्रज्योत्स्ने—चैत्री ज्योत्स्ना यत्र चक्रुः, कृतवंतः ॥५-६॥

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनंतगुणराशिः ।
अमरोपनीतभोगान्सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः ॥ ७ ॥
नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम् ।
चंद्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनिष्क्रान्तः ॥ ८ ॥
मार्गशिरकृष्णदशमीहस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे ।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिनः प्रवव्राज ॥ ९ ॥

टीका—अनंतगुणराशिः—अनंतगुणानां राशिः संघातो यत्र । अमरोपनीतभोगान्—अमरैर्देवैरुपनीताः संपादिताः ये भोगा गंधमाल्यादयः उपलक्षणमेतद्वस्त्राभरणाद्युपभोगानाम् । सहसा—झटिति । अभिनिबोधितो लौकान्तिकैः प्रबोधितः अन्येद्युरन्यस्मिन्दिवसे । नानाविधरूपचितां—बहुप्रकाररूपोपेतां । विचित्रकूटोच्छ्रितां—नानाप्रकारकूटैः कृत्वा उच्चां । मणिविभूषां—मणिभिर्मुक्ताफलादिभिर्विशिष्टा भूषा भूषणं अलंकारो यस्याः विनिष्क्रान्तो विनिर्गतः । षष्ठेन द्वयेन भक्तेन उपवासेन । प्रवव्राज प्रव्रजितवान् ॥७-९॥

ग्रामपुरखेटकर्वटमटंबघोषाकरान्प्रविजहार ।
उग्रैस्तपोविधानैर्द्वादशवर्षाण्यमरपूज्यः ॥ १० ॥
ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे ।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥ ११ ॥
वैशाखसितदशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे ।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ १२ ॥
चातुर्वर्ण्यसुसंघस्तत्राभूद्गौतमप्रभृति ॥ १३ ॥
छत्राशोकौ घोषं सिंहासनदुंदुभी कुसुमवृष्टिम् ।
वरचामरभामण्डलदिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥ १४ ॥
दशविधमनगाराणामेकादशधोत्तरं तथा धर्मं ।
देशयमानो व्यहरंस्त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥ १५ ॥

टीका—ग्रामादीनां लक्षणं, श्लोकः—

ग्रामो वृत्त्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोद्भासिशालं
खेटं नद्यद्रिवेष्ट्यं परिवृतमभितः कर्वटं पर्वतेन ।
ग्रामैर्युक्तं मटंबं दलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि—
द्रोणाख्यं सिंधुवेलाजलधिवलयितं वाहनं चाद्रिरूढं ॥१॥

पुरं नगरविशेषः । घोषो गोकुलं । आकरो नवसारिकापत्रादि-विशिष्टवस्तूत्पत्तिस्थानं । ग्रामादिग्रहणमत्रोपलक्षणार्थं द्रोणाख्यसंवाहन-पत्तनानां । तान् प्रविजहार विहृतवान् । शालद्रुमसंश्रिते शालवृक्षसंबंधे । चातुर्वर्ण्यः ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकालक्षणः स चासौ संघश्च । शोभनो रत्नत्रयोपेतः संघः समुदायः सुसंघः । घोषं ध्वनिं । वरचामरभामंडलदिव्यान्यन्यानि च । न केवलं छत्रादीन्यपि त्वन्यानि च गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षतागगनगमनादीनि । कथंभूतानीत्याह वरेत्यादि—वरचामरभामंडले दिव्ये देवोपनीते अन्यजनासंभाविनीये ताभ्यां वा युक्तानि च तानि दिव्यानि । दशविधमुत्तमक्षमादिदशप्रकारं

अनगाराणां मुनीनां। एकादशधा दर्शनव्रताद्येकादशप्रकारं। तथा तेनैव प्रकारेण इतरं सागाराणां धर्मं ॥१०-१५॥

पद्मवनदीर्घिकाकुलविविधद्रुमखंडमंडिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥ १६ ॥
कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥ १७ ॥

टीका--पद्मवनेत्यादि-पद्मैरुपलक्षितं वनं पानीयं यत्र पद्मानां वा वनं संघातो यासु दीर्घिकासु तासां कुलं समूहो दीर्घिका इत्युपलक्षणं तडागादीनां। विविधद्रुमखंडा नानाप्रकारवृक्षसंघातास्तैर्मंडिते अलंकृते। व्युत्सर्गे स्थितः कायोत्सर्गेण व्यवस्थितः। स मुनिः यस्त्रिंशद्वर्षाणि देशयमानो विहृतवान्। निहत्य निराकृत्य। कर्मरजः कर्ममलं। अवशेषं—उद्धृतशेषं दग्धरज्जुसमानं। संप्रापत्संप्राप्तवान्। किं तत्? सौख्यं। व्यजरामरं—जरा च मरश्च मरणं न विद्येते जरामरौ यत्र तदजरामरं विशेषेण अजरामरं व्यजरामरम्। अक्षयं—अविनश्वरम् ॥ १६-१७ ॥

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचंदनकालागुरुसुरभिगोशीर्षैः ॥ १८ ॥
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने ॥ १९ ॥

टीका—परिनिर्वृतं—निर्वाणगतं। जिनेन्द्रं—वर्धमानस्वामिनं। 'ज्ञात्वा परिनिर्वृते' इति च क्वचित्पाठः। परिनिर्वृते जिनेन्द्रे सति पश्चान्निर्वाणगतो भगवानित्येवं ज्ञात्वा विबुधा देवाः। हि स्फुटं। अथ तत्परिज्ञानानंतरं। आशु च शीघ्रमेव, तथा शुचेति क्वचित्पाठः। तथा यथा गर्भावतारादिकल्याणे एवमत्रापि आशु च शीघ्रमेव, शुचा शोकेन वा। देवतरु देवदारु। जिनदेहमभ्यर्च्य पूजापूर्वकं संस्कारं कृत्वा। गणधरानप्यभ्यर्च्य पूजयित्वा गता देवाः कल्पवासिनो दिवं स्वर्गं। ज्योतिष्काः

स्वमाकोशवर्तिनं स्वविमानं। व्यन्तरभवनवासिनौ वनभवने देबारण्यं भूतारण्यं वनं व्यंतरा गताः। भवनवासिनो भवनं गता इति ॥ १८-१९ ॥

इत्येवं भगवति वर्धमानचंद्रे यः स्तोत्रं पठति सुसंध्ययोर्द्वयोर्हि ।
सोऽनंतं परमसुखं नृदेवलोके भुक्त्वांते शिवपदमक्षयं प्रयाति ॥२०॥

वसन्ततिलका।

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुतपारगाणां
निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम् ।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः
संस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ॥ २१ ॥

टीका—यत्रार्हतामित्यादि। तां निर्वाणभूमिं परि समंतान्नौमि। केषां निर्वाणभूमिं ? अर्हतां—चतुर्विंशतितीर्थकराणां गणभृतां गणधरदेवानां। किंविशिष्टानां ? श्रुतपारगाणां श्रुतस्य द्वादशांगादेः पारं पर्यंतं गतवतां। यदि वा श्रुतपारगशब्देन गणधरदेवेभ्योऽन्ये मुनयो गृह्यन्ते । जिनेश्वरोपदिष्टस्य गणधरदेवैर्मथितस्य श्रुतस्य पारं गतवतां । श्रुतपारगाणां चेति चशब्दः समुच्चयार्थो द्रष्टव्यः॥ किंविशिष्टानां अर्हदादीनां ? भारतवर्षजानां भरतस्येदं भारतं तच्च तद्वर्षं च क्षेत्रं च तत्र जातानां। क तद्भारतवर्षं ? इह जंबूद्वीपे। तत्रापि किं भारतवर्षादन्यत्र हैमवतादौ तेषां निर्वाणभूमिर्भविष्यति इत्यत्राह अत्रेति सर्वाणि वक्यानि सावधारणानि भवंति इत्यभिधानात् अवधारणमत्र द्रष्टव्यं अत्रैव भारतवर्षे एव वा निर्वाणभूमिस्तां। अद्य अस्मिन्स्तुतिकाले। किंविशिष्टः सन्नहं परिणौमि ? संस्तोतुमुद्यतमतिः। कैः ? शुद्धमनसा क्रियया कायव्यापारेण वचोभिः ॥ १ ॥

कैलासशैलशिखरे परिनिर्वृतोसौ
शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।

चंपापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबंधः ॥ २२ ॥

टीका—कैलासेत्यादि। कैलासश्चासौ शैलश्च पर्वतस्तस्य शिखरमग्रभागस्तस्मिन्परिनिवृ तो निर्वाणं गतः। असौ वृषो वृषभदेवः। महात्मा इदानीं पूज्यः। किं कृत्वा? उपपद्य प्राप्य। कं? शैलेशिभावं शीलानां समूहः शीलं तस्येशिभावं प्रभुत्वं। चंपापुरे च वसुपूज्यसुतो वासुपूज्यो भगवान्। सुधीमान् शोभना धीः केवलज्ञानं तद्वान्। सिद्धिं मुक्तिं। परां सकलकर्मविप्रमोक्षलक्षणां। उपगतः प्राप्तः। गतरागबंधः प्रक्षीणकषायः ॥ २ ॥

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः
पाखंडिभिश्च परमार्थगवेषशीलैः।
नष्टाष्टकर्मसमये तदरिष्टनेमिः
संप्राप्तवान् क्षितिधरे बृहदूर्जयन्ते ॥ २३ ॥

टीका—यत्प्रार्थ्यते इत्यादि। तच्छिवं मोक्षसौख्यं। अयं अरिष्टनेमिः संप्राप्तवान्। क्व? क्षितिधरे। किंविशिष्टे? बृहदूर्जयन्ते बृहन्महान्स चासौ ऊर्जयंतश्च तस्मिन्। कदा? नष्टाष्टकर्मसमये नष्टानि अष्टौ कर्माणि यस्मिन्समये अयोगिसमये चरमसमये इत्यर्थः। कथंभूतं शिवं? यत्प्रार्थ्यते। कैः? विबुधेश्वराद्यैः इंद्रादिभिः। न केवलमेतैः। पाखंडिभिश्च सकललिंगिभिश्च। कथंभूतैः? परमार्थगवेषशीलैः। परमार्थस्य मोक्षस्य गवेषो गवेषणं अन्वेषणं तस्मिन्शीलं तात्पर्यं अष्टादशसहस्रलक्षणं वा येषां तैः ॥३॥

पावापुरस्य बहिरुन्नतभूमिदेशे
पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमानजिनदेव इति प्रतीतो
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥ २४ ॥

टीका—पावापुरस्येत्यादि। निर्वाणमाप प्राप्तवान्। कोसौ? श्रीवर्धमानजिनदेव इति एवं प्रतीतः प्रख्यातः भगवान् केवलज्ञानसंपन्नः पूज्यो वा। किंविशिष्टः? प्रविधूतपाप्मा विनाशितः पाप्मा अष्टप्रकारकर्म येन। क? बहिरुन्नतभूमिदेशे। कस्य? पावापुरस्य। कथंभूते? मध्ये मध्यप्रदेशवर्तिनि। केषां? सरसां। हि स्फुटं। किंविशिष्टानां पद्मोत्पलाकुलवतां—पद्मोत्पलैराकुलवतां। पद्मोत्पलानां आ समन्तात्कुलं संघातं। तद्विद्यते येषां। 'पद्मोत्पलांकुलवतां' इति च क्वचित्पाठः। पद्मानि च उत्पलानि च अंकुलाश्च अंकुशाः किशलयानि विद्यन्ते येषाम् ॥४॥

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला
ज्ञानार्कभूरिकिरणैरवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरवधारितसौख्यनिष्ठं
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः ॥ २५ ॥

टीका—शेषा इत्यादि। समवापुः प्राप्तवंतः। किं तत्? स्थानं परं मोक्षलक्षणं। निरवधारितसौख्यनिष्ठं निरवधारिता इयत्तावधारणान्निष्क्रान्ता सौख्यस्य निष्ठा परमप्रकर्षो यत्र। क? सम्मेदपर्वततले सम्मेदपर्वतोपरितनभागे। के ते? जिनवराः। शेषाः उक्तेभ्यश्चतुर्भ्यो ऽन्ये। तु पुनः। जितमोहमल्लाः जितो निर्जितो मोहमल्लो यैः। ईशा इंद्रादीनां प्रभवः। किं कृत्वा? अवभास्य प्रकाश्य। कान्? लोकान् त्रिजगंति। कैः? ज्ञानार्कभूरिकिरणैः। ज्ञानं केवलज्ञानं तदेव अर्क आदित्यः तस्य किरणैः प्रचुरप्रभाभिः ॥५॥

आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्तयोगः
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्द्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशा
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ॥ २६ ॥

टीका—आद्य इत्यादि। आद्यो वृषभनाथः चतुर्दशदिनैः परिसं- ख्याते 'आयुषि स्थिति सति। विनिवृत्तयोगो विनष्टद्रव्यमनोवाक्कायव्या- पारः। षष्ठेन दिनद्वयेन परिसंख्याते आयुषि सति। निष्ठितकृतिः निष्ठिता विनष्टा कृतिः द्रव्यमनोवाक्कायक्रिया यस्यासौ,निष्ठितकृतिः जिनवर्द्धमानः। शेषा द्वाविंशतिः यतिवराः तीर्थकरदेवाः। तु पुनः अभवन् संजाताः। वियोगा विगतद्रव्यमनोवाक्कायव्यापाराः। मासेन परिसंख्याते आयुषि सति। किंविशिष्टाः संतः? विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः घनानि निबिडानि च तानि कर्माणि च तैर्निबद्धो निष्पादिता यः पाशो बंधनं स विधूतो विनाशितो यैः॥६॥

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा—
न्यादाय मानसकरैरभितः किरंतः।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निपद्याः
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः॥ ७॥

टीका—माल्यानीत्यादि। इमे स्तोतारो वयं पर्येमः प्रदक्षिणीकुर्मः। किंविशिष्टाः? आदृतियुताः आदृतिरादरस्तया युता युक्ताः। काः पर्येमः? भगवन्निपद्याः भगवतां तीर्थकराणां निपद्याः तीर्थस्थानानि। किं कुर्वन्तो वयं पर्येमः? किरन्तः क्षिपन्तः। कथं? अभितः समन्ततः। कानि? माल्यानि पुष्पमालाः। किं विशिष्टानि? सुदृब्धानि शोभनं यथा भवत्येवं ग्रथितानि। कैः? कुसुमैः। किंविशिष्टैः? वाक्स्तुतिमयैः वाक्स्तुत्या निर्वृत्तैः। तानीत्थंभूतानि माल्यान्यादाय गृहीत्वा। कैः? मानसकरैः मन एव मानसं तदेव करा हस्तास्तैः। ताः भगवन्निपद्याः पूजिताः प्रद- क्षिणीकृताश्च। किंसत्यः? अस्माभिः प्रार्थिता याचिताः। कां? परमां गतिं मुक्तिम्॥७॥

इदानीं तीर्थकरेभ्योऽन्येषां निर्वाणभूमिं स्तोतुमाह—

शत्रुंजये नगवरे दमितारिपक्षाः
पंडोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः ।
तुंग्यां तु संगरहितो बलभद्रनामा
नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥ ८ ॥

द्रोणीमति प्रबलकुंडलमेढ्रके च
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे ।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च
विंध्ये च पौदनपुरे वृषदीपके च ॥ ९ ॥

सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे
दंडात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥१० ॥

टीका—शत्रुंजय इत्याद्याह। पंडोः सुताः पांडवाः। शत्रुंजये नगवरे गिरिवरे। परमनिर्वृतिं परां मुक्तिं। अभ्युपेताः संप्राप्ताः। दमितारिपक्षा निर्जितशत्रुवर्गाः। संगरहितो निर्ग्रंथः। प्रवरकुंडलमेढ्रके च प्रवरकुंडले प्रवरमेढ्रके च। ऋष्यद्रिके श्रवणगिरौ। सुगतिं मुक्तिं। प्रथितानि प्रख्यातानि। अभूवन् संजातानि॥८-९-१०॥

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ।
तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यं
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥ ११ ॥

टीका—इक्षोरित्यादि। इक्षोर्विकारः गंडकानां विकारः स चासौ रसश्च यदि वा इक्षोरिक्षुरसस्य विकारो विकारभूतो यो रसो गुडादिः। तस्य पृक्तः पिष्टे संसृष्टः स चासौ गुणश्च माधुर्यलक्षणस्तेन लोके

जगति । पिष्टः कर्ता स्वभावसिद्धमाधुर्यादधिकं यथा भवत्येवं मधुरता माधुर्यमुपयोति गच्छति । यद्वद्यथा तद्वत्तथैव पुण्यपुरुषैः तीर्थकरदेवादिभिः । उषितानि सेवतानि । नित्यं सर्वदा । जगतां जगद्वर्तिनां प्राणिनां । पावनानि पवित्रताहेतुभूतपुण्यावाप्तिनिमित्तानि ॥ ११ ॥

उक्तमर्थमुपसंहृत्य स्तोता स्तुतेः फलं याचते—

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां
प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृतिभूमिदेशाः ।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शांता
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥ १२ ॥

टीका—इतीत्यादाह । इत्येवमुक्तप्रकारेण । अर्हतां चतुर्विंशतितीर्थंकराणां शमवतां च परमोपशमयुक्तानां । महामुनीनां गणधरदेवादीनां । प्रोक्ताः प्रतिपादिताः । केन ? मया । के ते ? परिनिर्वृतिभूमिदेशाः निर्वाणभूमिप्रदेशाः । ते प्रतिपादितनिर्वाणभूमिप्रदेशाः जिनाः । जितभयाः शांताश्च मुनयः । मे स्तोतुः । दिश्यासुः देयासुः । आशु शीघ्रं । सुगतिं मुक्तिं । निरवद्यसौख्यां निरवद्यं निर्वाधं सौख्यं यस्यामिति ॥१२॥

प्राकृत-निर्वाणभक्तिः[1]

(२)

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो ।
उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥

१—अस्याः भक्तेः समावेशः स्वकीयक्रियाकलापे न कृतः टीकाकर्त्रा अतोऽस्याष्टीका नास्ति । किन्तु अन्यस्मिन् भक्तिपाठे अस्याः पाठो दरीदृश्यते अतोऽस्या अत्र सन्निवेशो विहितः । टीका तु सुगमत्वान्न कृता इति भाति । प्रतिप्रति अस्याः पाठोपि भिन्न एव ।

अष्टापदे वृषभश्चंपायां वासुपूज्यजिननाथः ।
ऊर्ज्जयन्ते नेमिजिनः पावायां निर्वृतो महावीरः ॥ १ ॥

वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा ।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥२॥

विंशतिस्तु जिनवरेंद्रा अमरासुरवन्दिता धुतक्लेशाः ।
सम्मेदे गिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥२॥

सत्तेव य बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥३॥

सप्तैव बलभद्रा यदुपनरेन्द्राणां अष्टकोट्यः ।
गजपथे गिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥३॥

वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ ४ ॥

वरदत्तश्च वराङ्गः सागरदत्तश्च तारवरनगरे ।
सार्धत्रयकोट्यो निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥४॥

णेमिसामी पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
बाहत्तरकोडीओ उज्जन्ते सत्तसया वंदे ॥ ५ ॥

नेमिस्वामी प्रद्युम्नः शंबुकुमारस्तथानिरुद्धश्च ।
द्वासप्ततिकोट्यः ऊर्जयन्ते सप्तशतानि वन्दे ॥५॥

रामसुआ विण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ ।
पावाए गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ ६ ॥

रामसुतौ द्वौ जनौ लाटनरेन्द्राणां पंचकोट्यः ।
पावायां गिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥६॥

पंडुसुआ तिण्णि जणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
सित्तुंजेगिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥ ७ ॥

पंडुसुतास्त्रयो जनाः द्रविडनरेंद्राणां अष्टकोट्यः।
शत्रुंजयगिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः॥ ७॥

रामहणू[1]सुग्गीवो गवयगवक्खो य णीलमहणीलो।
णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे॥८॥

रामहनूसुग्रीवाः गवयगवाख्यौ च नीलमहानीलौ।
नवनवतिकोट्यस्तुंगीगिरिनिर्वृतान्वंदे॥ ८॥

अंगाणंगकुमारा[2] विक्खापंचद्धकोडिरिसिसहिया।
सुवण्णगिरिमत्थयत्थे[3] णिव्वाण गया णमो तेसिं॥९॥

अंगानंगकुमारौ विख्यातपंचार्धकोटिऋषिसहिताः।
सुवर्णगिरिमस्तकस्थे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः॥ ९॥

दहमुहरायस्स सुआ कोडी पंचद्धमुणिवरे सहिया।
रेवाउहयम्मि तीरे णिव्वाण गया णमो तेसिं[4]॥१०॥

दशमुखराजस्य सुताः कोटी पंचार्धमुनिवरैः सहिताः।
रेवोभयस्मिन् तीरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः॥१०॥

रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूटे।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वंदे[5]॥११॥

१—'रामो सुग्गीव हणुओ'—पुस्तकान्तरे। २—'अंगाणंग'—पु०। ३—सुवण्णवरगिरिसिहरे पु०। ४—गाथेयं पुस्तकान्तरे नास्ति। ५—पुस्तकान्तरे इमे द्वे गाथे ते चान्ते—

रेवातडम्मि तीरे दक्खिणभायम्मि सिद्धवरकूडे।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं॥१॥
रेवातडम्मि तीरे संभवनाथस्स केवलुप्पत्ती।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं॥२॥

६—गाथेयं पुस्तकान्तरे नास्ति।

रेवानद्यास्तीरे पश्चिमभागे सिद्धवरकूटे ।
द्वौ चक्रिणौ दश कंदर्प्पाः सार्धत्रयकोटिनिर्वृतान्वंदे ॥ ११ ॥

वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे ।
इंदजियकुंभयण्णो णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१२॥

वडवाणीवरनगरे दक्षिणभागे चूलगिरिशिखरे ।
इन्द्रजित्कुंभकर्णौ निर्वाणं गतौ नमस्ताभ्यां ॥ १२ ॥

पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुनिवरा चउरो ।
चलणाणईतडग्गे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१३॥

पावागिरिवरशिखरे सुवर्णभद्रादिमुनिवराश्चत्वारः ।
चलनानदीतटाग्रे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥ १३ ॥

फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे ।
गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१४॥

फलहोडीवरग्रामे पश्चिमभाग द्रोणगिरिशिखरे ।
गुरुदत्तादिमुनीन्द्रा निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥१४॥

णायकुमारमुणिंदो वालि महावालि चेव अज्झेया ।
अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१५॥

नागकुमारमुनीन्द्रो बालिर्महाबालिश्चव आध्येयाः ।
अष्टापदगिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥१५॥

अच्चलपुरवरणयरे ईसाणभाए मेढगिरिसिहरे ।
आहुट्टयकोडीओ णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१६॥

अचलपुरवरनगरे ईशानभागे मेढगिरिशिखरे ।
सार्धत्रयकोट्यः निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥ १६ ॥

१—गाथेयं पुस्तकान्तरे नास्ति ।

वंसत्थलम्मि नयरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे ।
कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१७॥

वंशस्थले नगरे पश्चिमभागे कुंथुगिरिशिखरे ।
कुलदेशभूषणमुनी निर्वाणं गतौ नमस्ताभ्याम् ॥ १७ ॥

जसहररायस्स सुआ पंचसया कलिंगदेसम्मि ।
कोडिसिलाए कोडिमुणी णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१८॥

यशोधरराजस्य सुताः पंचशतानि कलिंगदेशे ।
कोटिशिलायां कोटिमुनयः निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥१८॥

पासस्स समवसरणे गुरुदत्तवरदत्तपंचरिसिपमुहा ।
गिरिसिंदे गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं[3] ॥१९॥

पार्श्वस्य समवसरणे गुरुदत्तवरदत्तपंचर्षिप्रमुखाः ।
गिरिसिंदे गिरिशिखरे निर्वाणं गता नमस्तेभ्यः ॥१६॥

जे जिणु जित्थु तत्था जे दु गया णिव्वुदिं परमं ।
ते वंदामि य णिच्चं तियरणसुद्धो णमंसामि ॥ २० ॥

ये जिना यत्र तत्र ये तु गता निर्वृतिं परमां ।
तान् वंदामि च नित्यं त्रिकरणशुद्धो नमस्यामि ॥ २० ॥

सेसाणं तु रिसीणं णिव्वाणं जम्मि जम्मि ठाणम्मि ।
ते हं वंदे सव्वे दुक्खक्खयकारणट्ठाए ॥ २१ ॥

शेषाणां तु ऋषीणां निर्वाणं यस्मिन् यस्मिन् स्थाने ।
तानहं वंदे सर्वान् दुःखक्षयकारणार्थं ॥ २१ ॥

१—'वंसत्थलवरणियडे' पुस्तकान्तरे पाठः । २—'सहियावरदत्त-मुणिवरा पंच' पुस्तकान्तरे पाठः।३—अस्या अग्रे इयमपि पुस्तकान्तरे—

विंझाचलम्मि रण्णे मेहणादो इंदजयसहियं ।
मेघवरणामतित्थं ? णिव्वाण गया णमो तेसिं ॥१॥

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे ।
अस्सारम्भे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥ १ ॥

पार्श्वं तथा अभिनंदनं नागद्रहे मंगलापुरे वंदे ।
आशारम्ये पट्टने मुनिसुव्रतं तथैव वंदे ॥ १ ॥

बाहूबलि तह वंदमि पोदनपुर हत्थिनापुरे वंदे ।
संती कुंथुव अरिहो वाराणसीए सुपास पासं च ॥ २ ॥

बाहुबलिनं तथा वंदामि पोदनपुरे हस्तिनापुरे वंदे ।
शान्ति कुंथुमरं वाराणस्यां सुपार्श्वपार्श्वौ च ॥ २ ॥

महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि ।
जंबुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंबुवणगहणे ॥ ३ ॥

मथुरायां अहिच्छत्रे वीरं पार्श्वं तथव वंदे ।
जंबुमुनीन्द्रं वंदे निर्वृतिप्राप्तमपि जंबुवनगहने ॥ ३ ॥

पंचकल्लाणठाणइ जाणिवि संजादमच्चलोयम्मि ।
मणवयणकायसुद्धो सव्वे सिरसा णमंसामि ॥ ४ ॥

पंचकल्याणस्थानानि यान्यपि संजातानि मर्त्यलोके ।
मनोवचनकायशुद्धः सर्वाणि शिरसा नमस्यामि ॥ ४ ॥

अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवणकुंडली वंदे ।
पासं सिरिपुरि वंदमि लोहागिरिसंखदीवम्मि ॥ ५ ॥

अर्गलदेवं वंदे वरनगरे निकटकुंडलिनं वंदे ।
पार्श्वं श्रीपुरे वंदे लोहागिरिशंखद्वीपे ॥ ५ ॥

गोम्मटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहउच्चं तं ।
देवा कुणंति वुट्ठी केसरकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥ ६ ॥

गोम्मटदेवं वंदे पंचशतधनुर्देहोच्चं तं।
देवाः कुर्वन्ति वृष्टिं केशरकुसुमानां तस्योपरि॥

णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसये सहिया।
संजाद मिच्चलोए सव्वे सिरसा णमंसामि॥७॥

निर्वाणस्थानानि यान्यपि अतिशयस्थानानि अतिशयेन सहितानि।
संजातानि मर्त्यलोके सर्वाणि शिरसा नमस्यामि॥

जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए।
भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं॥ ८॥

यो जनः पठति त्रिकालं निर्वाणकांडमपि भावशुद्ध्या।
भुनक्ति नरसुरसुखं पश्चात्स लभते निर्वाणम्॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थसमयस्स पच्छिमे भाए आहुट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकम्मि, पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदिमहावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोयिसियकप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाणमहाकल्लाणपुज्जं करेंति, अहमवि इह सन्तो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

नंदीश्वरभक्तिः ।

त्रिदशपतिमुकुटतटगतमणिगणकरनिकरसलिलधाराधौत-
क्रमकमलयुगलजिनपतिरुचिरप्रतिबिंबविलयविरहितनिलयान् ॥१॥
निलयानहमिह महसां सहसा प्रणिपतनपूर्वमवनौम्यवनौ ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्धया निसर्गशुद्धान्विशुद्धये घनरजसां ॥२॥

टीका—त्रिदशा देवाः तेषां पतय इंद्राः तेषां मुकुटानि तेषां तटानि अग्रभागाः तानि गताः प्राप्ताः ते च ते मणयश्च तेषां गणाः संघाताः तेषां कराः किरणाः तेषां निकराः समूहाः त एव सलिलधारास्ताभिर्धौतं प्रक्षालितं क्रमावेव कमलयुगलं येषां जिनपतिरुचिरप्रतिबिंबानां तानि तथोक्तानि सत्प्रतिबिंबानि येषु ते च ते विलयेन विनाशेन विरहिताश्च ते निलयाश्च अकृत्रिमाश्चैत्यालया इत्यर्थः । कथंभूतान् ? निलयान् आश्रयान् । केषां ? महसां तेजसां । तानहं इह जगति । सहसा झटिति । प्रणिपतनपूर्वं यथाभवत्येवमवनौमि स्तौमि । क्व ? अवनौ भूमौ । कथंभूतायां ? त्रय्यां त्रिलोकस्वरूपायां । कया ? शुद्धया । किंविशिष्टया ? त्रय्या निर्मलमनोवाक्कायव्यापाररूपतया । कथंभूतांस्तान् ? निसर्गशुद्धान् निसर्गेण स्वभावेन शुद्धान्निर्मलान् । किमर्थं ? विशुद्धये । केषां ? घनरजसां निबिडपापानां ॥ १-२ ॥

तत्र अधोलोके भवनवासिनां जिनगृहाणि कथयितुं भावनेत्याद्याह—

भावनसुरभवनेषु द्वासप्ततिशतसहस्रसंख्याभ्यधिकाः ।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता भवनानां भूरितेजसां भुवनानाम् ॥ ३ ॥

टीका—भवनेषु भवाः भावनाः ते च ते सुराश्च देवाः तेषां भवनानि गृहाणि तेषु । कोट्यः सप्त प्रोक्ताः । किंविशिष्टाः ? द्वासप्ततिशतसहस्रसंख्याभ्यधिकाः द्वासप्ततिलक्षाधिकाः द्वासप्ततिश्च तानि शतसहस्राणि च लक्षाणि तेषां संख्या तया अभ्यधिका अतिरिक्ताः ।

काः पुनस्ताः कोट्यः कियन्त्यः प्रोक्ताः—कथिताः ७७२००००० । केषां ? भुवनानां चैत्यालयानां । किंविशिष्टानां ? भवनानां आश्रयाणां । केषां ? भूरितेजसां ॥३॥

त्रिभुवनेत्यादिना व्यंतराणां चैत्यालयसंख्यां प्ररूपयति—

त्रिभुवनभूतविभूनां संख्यातीतान्यसंख्यगुणयुक्तानि ।
त्रिभुवनजननयनमनःप्रियाणि भवनानि भौमविबुधनुतानि ॥ ४ ॥

टीका—भवनानि जिनगृहाणि । कथंभूतानि ? भौमविबुधनुतानि-भूमौ भवा भौमाः ते च ते विबुधाश्च व्यंतरदेवास्तैर्नुतानि स्तुतानि । पुनरपि कथंभूतानि ? त्रिभुवनजननयमनःप्रियाणि-त्रिभुवनजननयनमनसां वल्लभानि । केषां तानि ? त्रिभुवनभूतविभूनां-त्रिभुवने भूतानि प्राणिनस्तेषां विभवो नाथाः जिनाः तेषां । किंविशिष्टानि तानि ? संख्यातीतानि । एतत्परिज्ञानार्थं असंख्यगुणयुक्तानि इत्याह असंख्यातमानावच्छिन्नानीत्यर्थः ॥ ४ ॥

यावन्तीत्यादिना ज्योतिषां चैत्यालयान्स्तौति—

यावन्ति सन्ति कान्तज्योतिर्लोकाधिदेवताभिनुतानि ।
कल्पेऽनेकविकल्पे कल्पातीतेऽहमिन्द्रकल्पेऽनल्पे ॥ ५ ॥
विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्रगुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता ।
चतुरधिकाशीतिरतः पंचकशून्येन विनिहतान्यनघानि ॥ ६ ॥

टीका—यावन्ति यत्परिमाणानि असंख्यातमानावच्छिन्नानि । संति विद्यन्ते । किंविशिष्टानीत्याह कांतत्यादि—ज्योतिषां लोको ज्योतिर्लोकः तस्य तस्मिन्वा अधिकृता अधिका वा देवता उत्तमदेवा इत्यर्थः । कान्ताः कमनीयाः ताश्च ता ज्योतिर्लोकाधिदेवताश्च ताभिरभिनुतानि । कल्पेत्यादिना कल्पवासिनां कल्पातीतानां चैत्यालयसंख्यां कथयति—कल्पशब्देन सौधर्मादयोऽच्युतान्ता गृह्यंते । कथंभूतेऽनेकविकल्पे अनेकभेदके । कल्पातीते नवग्रैवेयकनवानुदिशपंचानुत्तरलक्षणे ।

किंविशिष्टे ? अहमिंद्रकल्पे अहमिन्द्राणां कल्प: कल्पना यत्र तस्मिन् । अनल्पे महति । तत्र कल्पवासिचैत्यालयसंख्या चतुरशीतिलक्षपण्णवति-सहस्रसप्तशतानि ; कल्पातीतचैत्यालयसंख्या त्रयोविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि । ग्रंथकारस्तु समुदितामुभयचैत्यालयसंख्यां आह—विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्रगुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता। त्रयोविंशतिः सहस्रगुणिता च सप्तनवतिः यदा भवति तदा सप्तनवतिसहस्राणि त्रयोविंशत्यधिकानि भवंति । चतुरधिकाशीतिरतः पंचकशून्येन विनिहतान्यनघानि । चतुर-शीतिर्जिनगृहाणि शून्यपंचकेन विनिहतानि गुणितानि चतुरशीतिलक्षा-णि भवंति ।।५-६।।

मनुष्यक्षेत्रे चैत्यालयसंख्यामाह—

अष्टपंचाशदतश्चतुःशतानीह मानुषे क्षेत्रे ।
लोकालोकविभागप्रलोकनालोकसंयुजां जयभाजाम् ।।७।।

टीका—अष्टपंचाशदतश्चतुःशतानीह मानुषे क्षेत्रे—तिर्यग्लोके चतुःशतान्यष्टपंचाशदधिकानि भवंति ४५८ । केषां तानि भवनानि इत्याह लोकेत्यादि लोकालोकविभागस्य प्रलोकनं वीक्षणं तस्यालोको येन तद्वीक्षणं भवति केवलदर्शनेन संयुजन्ति संबन्धं कुर्वन्ति ये तीर्थकरदेवा-स्तेषां। कथंभूतानां जयभाजां जयं प्रतिपक्षनिराकरणं भजन्ति ये तेषां ।।७।।

त्रिलोकेषु समुदितानि कति भवन्तीत्याह-नवेत्यादि—

नवनवचतुःशतानि च सप्त च नवतिः सहस्रगुणिताः षट् च ।
पंचाशत्पंचवियत्प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः ।। ८।।
एतावंत्येव सतामकृत्रिमाण्यथ जिनेशिनां भवनानि ।
भुवनत्रितये त्रिभुवनसुरसमितिसमर्च्यमानसत्प्रतिमानि ।।९।।

टीका—नवभिर्गुणितानि नव नवनव एकाशीतिरित्यर्थः चतुः-शतानि, सप्तनवतिः सहस्रगुणितानि सप्तनवतिसहस्राणि इत्यर्थः । षट्पंचाशदपि च पंचवियत्प्रहताः पंचशून्यगुणिताः षट्पंचाशल्लक्षाणि

भवन्ति । एतैरधिकाः कोट्योऽष्टौ अत्र जगत्त्रये तत्संख्या प्रोक्ता । ८५६६-७४८१ एतावन्त्येव प्राक्परिमाणान्येव । कानि ? भवनानि । कथंभूतानि ? अकृत्रिमाणि । केषां ? जिनेशिनां अर्हतां । किंविशिष्टानां ? सतां प्रशस्तानां । क ? भुवनत्रितये । किंविशिष्टानि ? त्रिभुवनसुरसमितिसमर्च्यमानसत्प्रतिमानि त्रिभुवने सुराः तेषां समितिः समूहः तया समर्च्यमानाः सत्प्रतिमाः शोभनप्रतिमा येषु तानि ॥ ८-९ ॥

वक्षाररुचककुंडलरौप्यनगोत्तरकुलेषुकारनगेषु ।
कुरुषु च जिनभवनानि त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या ॥ १०

टीका—वक्षारेत्यादि । वक्षारपर्वता एकैकस्मिन्विदेहे षोडश चत्वारो गजदन्ताश्चेति पंचसु विदेहेषु शतमेकं भवनानां १०० । रुचकद्वीपवर्तिनि रुचके, कुंडलद्वीपवर्तिनि कुंडले मानुषोत्तरवद्वलयाकृतौ प्रत्येकं चत्वारि । रौप्यनगा विजयार्द्धाः सप्ततिशतं तत्र सप्ततिशतं भवनानां । उत्तरनगेषु मानुषोत्तरे चतुर्षु दिक्षु चत्वारि । कुलनगेषु हिमवदादिषु षट्कुलपर्वतेषु त्रिंशत्सु त्रिंशद्भवनानि । इषुकारनगेषु चतुर्षु चत्वारि । कुरुषु च उत्तरकुरुषु देवकुरुषु च दश जिनभवनानि एवं समुदितानि षड्विंशत्रिशतानि भवंति । तान्येव नंदीश्वरद्विपंचाशच्चैत्यालयैः पंचमेरूणां अशीतिचैत्यालयैश्च सहितानि प्रागुक्ताष्टपंचाश्चतुःशतानि भवंति ॥ १० ॥

नंदीश्वरसद्द्वीपे नंदीश्वरजलधिपरिवृते धृतशोभे ।
चन्द्रकरनिकरसंनिभरुन्द्रयशोविततदिङ्महीमंडलके ॥ ११ ॥
तत्रत्यांजनदधिमुखरतिकरपुरुनगवराख्यपर्वतमुख्याः ।
प्रतिदिशमेषामुपरि त्रयोदशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ॥ १२ ॥

टीका—नंदीश्वरेत्यादि । नंदीश्वराख्योऽष्टमः सन् शोभनो द्वीपोऽस्ति तस्मिन् । नंदीश्वरजलधिपरिवृते नंदीश्वरसमुद्रपरिवेष्टिते । धृतशोभे-धृता शोभा येनासौ धृतशोभः तस्मिन् । चंद्रकरेत्यादि-चंद्रस्य कराः किरणा तेषां निकरः समूहः तेन संनिभं सदृशं यद्रुन्द्रं महद्यशस्तेन

विततं व्याप्तं दिङ्महीमंडलं येन स तथोक्तस्तस्मिन्। तत्रेत्यादि—तत्र भवास्तत्रत्याः ते च ते अंजनदधिमुखरतिकराश्च पुरवो महांतश्च ते नगवराख्याश्च पर्वतमुख्याश्च प्रतिदिशं भवंति। तथा ह्येकस्यां दिशि एकोंजनगिरिस्तस्य संबधिनश्चत्वारो दधिमुखास्तेषां चतुर्णां संबंधिनी प्रत्येकं द्वौ द्वौ रतिकरौ एवं समुदिताः सर्वे त्रयोदश भवंति। एवं चतसृष्वपि दिक्षु योजनीयं। येषां त्रयोदशानामुपरि त्रयोदशजिनभुवनानि भवंति। चतुर्दिक्षु संबधिनः पर्वताः समुदिताः द्व्यधिकपंचाशदधिका भवंति। एषामुपरि जिनगृहाण्यपि एतावन्त्येव भवंति। किंविशिष्टानि? इन्द्रार्चितानि सौधर्मेन्द्रादिभिः पूजितानि ॥ ११-१२ ॥

आषाढकार्तिकाख्ये फाल्गुणमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः ।
आरभ्याष्टदिनेषु च सौधर्मप्रमुखविबुधपतयो भक्त्या ॥१३॥
तेषु महामहमुचितं प्रचुराक्षतगंधपुष्पधूपैर्दिव्यैः ।
सर्वज्ञप्रतिमानामप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्वहितम् ॥ १४ ॥

टीका—आषाढेत्यादि। आषाढश्च कार्तिकश्च तावाख्या यस्य मासस्य तस्मिन् फाल्गुणमासे च। यः शुक्लः पक्षस्तस्मिन्। अष्टम्या आरभ्य अष्टमीमादिं कृत्वा अष्टदिनेषु च। सौधर्मः प्रमुखः अग्रणीर्येषां ते च ते विबुधपतयश्च ते भक्त्या। तेषु भवनेषु, महामहं - महापूजां, उचितं—योग्यं, प्रकुर्वन्ति। कैरित्याह—प्रचुराक्षतगंधपुष्पधूपैः। किंविशिष्टैः? दिव्यैः—दिविभवैः। कासां? सर्वज्ञप्रतिमानां। कथंभूतानां? अप्रतिमानां—अनुपमानां। किंविशिष्टं? सर्वहितं—सर्वेभ्यो हितं पुण्योपार्जनहेतुतयोपकारकम ॥ १३-१४ ॥

भेदेन वर्णना का सौधर्मः स्नपनकर्तृतामापन्नः ।
परिचारकभावमिताः शेषेन्द्रारुन्द्रचन्द्रनिर्मलयशसः ॥ १५ ॥
मंगलपात्राणि पुनस्तद्देव्यो बिभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्याः ।
अप्सरसो नर्तक्यः शेषसुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ॥ १६ ॥

टीका—भेदेनेत्यादि। भेदेन विशेषेण, वर्णना माहात्म्याधिक्य-निरूपणा का न काचित्। यत्र सौधर्मः स्नपनकर्तृतां आपन्नः प्राप्तः। परिचारकभावे सहायतां इताः शेषेंद्रा ईशानादयः। कथंभूताः? रुंद्रचंद्रनिर्मलयशसः—रुंद्रचंद्रः पूर्णिमाचंद्रस्तद्वन्निर्मलं यशो येषां ते तथोक्ताः। मंगलेत्यदि—मंगलपात्राण्यष्टौ, श्लोकः—

छत्रं ध्वजं कलशचामरसुप्रतीकं भृंगारतालमतिनिर्मलदर्पणं च।
शंसंति मंगलमिदं निपुणस्वभावा द्रव्यस्वरूपमिह तीर्थकृतोष्ट चैव॥

सुप्रतीकः प्रतिग्रहः। तालो व्यजनः। तानि। पुनः पश्चात्तेषां सौधर्मादीनां देव्यः तद्देव्यः। बिभ्रति स्म धारयंति स्म। कथंभूताः? शुभ्रगुणाढ्याः शुभ्राः निर्मला गुणा ज्ञानादयस्तैराढ्याः परिपूर्णाः। अप्सरसो नर्तक्यस्तत्राभूवन्। शेषसुरास्तत्र लोकनायां दर्शने व्यग्रधियः व्याकुलबुद्धयः॥ १५-१६॥

वाचस्पतिवाचामपि गोचरतां संव्यतीत्य यत्क्रममाणम्।
विबुधपतिविहितविभवं मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्॥१७

टीका—वाचस्पतीत्यादि। वाचस्पतिर्बृहस्पतिः तद्वाचामपि गोचरतां विषयतां। संव्यतीत्य अतिक्रम्य यत्पूजनं क्रममाणं प्रवर्तमानं। कथंभूतं? विबुधपतिविहितविभवं विबुधपतिभिरिन्द्रैर्विहितः कृतो विभवो विभूतिविशेषो यस्मिन्। विविधविभवमिति च क्वचित्पाठः। विबुधपतिभ्यः विविधो नानाप्रकारो विभवो यस्मिन् तत्पूजनम्। मानुष-मात्रस्य प्राणिमात्रस्य अस्मदादेः। कस्य, न कस्यचित् शक्तिः स्तोतुं व्यावर्णयितुम्॥ १७॥

निष्ठापितजिनपूजाश्चूर्णस्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।
सुरपतयो नंदीश्वरजिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः॥१८॥
पंचसु मंदरगिरिषु श्रीभद्रशालनंदनसौमनसं।
पांडुकवनमिति तेषु प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव॥१९॥

तान्यथ परीत्य तानि च नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि ।
स्वास्पदमीयुः सर्वे स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥२०॥

टीका—निष्ठापितेत्यादि निष्ठापिता समापिता जिनपूजा यैः । चूर्णस्नपनेन चूर्णं सुगंधिद्रव्याणां पिष्टं तेन स्नपनं अभिषवस्तेन, हृष्टो विकृतो विकारवान्विशेषो यैः येषु वा तेन तथाभूताः सुरपतय इंद्राः, नंदीश्वरजिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य त्रिःपरीत्य । पुनः पश्चात् ।

पंचस्वित्यादि । पंचसु मंदरगिरिषु श्रीभद्रशालादीनि चत्वारि वनानि संति । तत्र मेरोरधः प्रथमकांडे परिवृत्य भद्रशालवनं स्थितं । तत ऊर्ध्वं द्वितीयकांडे मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य नंदनवनं । ततस्तृतीयकांडे मेरुं परिवृत्य सौमनसं । मेरोः चूलिकां परिवेष्ट्य पांडुकवनमिति । एवं-विधेषु च तेषु वनेषु प्रत्येकं चतसृषु पूर्वादिदिक्षु चत्वार्येव न न्यूनानि नाप्यधिकानि जिनगृहाणि संति । प्रतिवनं च यदा चत्वारि जिनगृहाणि तदैकस्य मेरोः षोडश तानि भवंति । पंचानां मेरूणामशीतिरिति ।

तानि इत्यादि । तानि जिनगृहाणि । अथ नंदीश्वरजिनभवनप्रद-क्षिणीकरणानंतरं । परीत्य प्रदक्षिणीकृत्य । तानि च नमसित्वा संस्तुत्य । कृतसुपूजनाः कृतं सुपूजनं शोभनपूजा यैस्ते तथोक्ताः । तत्रापि न केवलं नंदीश्वरजिनगृहेषु कृतसुपूजनास्ते किंतु तत्रापि तदनंतरं । स्वास्पदं स्वस्थाने ईयुः गतवंतः सर्वे । किं कृत्वा ? संगृह्य । किं तत् ? स्वास्पदमौल्यं शोभनं आस्पदं स्वास्पदं तस्य मौल्यं मूल्यस्य भावो मौल्यं वेतनं पुण्यमित्यर्थः । स्वचेष्टया स्वव्यापारेण ॥१८-१९-२०॥

इदानीं तेषां विभूतिविशेषं दर्शयन्नाह—

सहतोरणसद्वेदीपरीतवनयागवृक्षमानस्तंभ—
ध्वजपंक्तिदशकगोपुरचतुष्टयत्रितयशालमंडपवर्यैः ॥२१॥
अभिषेकप्रेक्षणिकाक्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहैः ।
शिल्पिविकल्पितकल्पनसंकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः ॥ २२ ॥

वापीसत्पुष्करिणीसुदीर्घिकाद्यंबुसंस्रुतैः समुपेतैः।
विकसितजलरुहकुसुमैर्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥
भृंगाराब्दककलशाद्युपकरणैरष्टशतकपरिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझणझणनिनदविततघंटाजालैः ॥२४॥
प्रभ्राजंते नित्यं हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपतिविष्टररुचिराणि विविधविभवयुतानि ॥२५॥

टीका—तोरणानि च, सद्वेदयश्च, परीतवनानि च, यागवृक्षाश्च, मानस्तंभाश्च, ध्वजपंक्तिदशकं च, गोपुराणां प्रतोलीनां चतुष्टयं च, त्रितयेनोपलक्षिताः शालाः प्राकारास्त्रितयशालाश्च संगीतं च, मंडपानां वर्या उत्तमा मंडपवर्याश्च तैरेतैः सह प्रभ्राजंते शोभंते। नित्यं सर्वदा। हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि इति संबंधः। अभिषेकेत्यादि—अभिषेकस्य प्रेक्षणं दर्शनं तदस्यास्तीति अभिषेकप्रेक्षणिका: सा च क्रीडनं च नाटकस्यालोको दर्शनं तेषां गृहाणि तैः समुपेतैः युक्तैः तोरणादिभिः। पुनरपि कथंभूतैस्तैरित्याह शिल्पीत्यादि। शिल्पिना विज्ञानिना विकल्पितानि च तानि कल्पनानि च भेदाश्च तेषां संकल्पः परामर्शः तेन अतीतं कल्पनं रचना येषां तानि तथोक्तानि तैः समुपेतैः तोरणादिभिरकृत्रिमैरित्यर्थः। अकृत्रिमचैत्यालयानां हि तोरणानि अकृत्रिमाण्येव भवंति। वापीत्यादि। किंविशिष्टैः? अभिषेकप्रेक्षणिकादिगृहैः समुपेतैः संयुक्तैः। कैः? विकसितजलरुहकुसुमैः। कथंभूतैः? वापीसत्पुष्करिणीसुदीर्घिकाद्यंबुसंश्रितैः वाप्यो वर्तुलाः, सत्पुष्करिण्यश्चतुष्कोणाः, सुदीर्घिका अतीव दीर्घतया प्रसृताः ता आदयो येषां ह्रदादीनां-तेषां अंबूनि तानि संश्रितैः। पुनरपि कथंभूतैः? सत्कुसुमैः शशिग्रहर्क्षैः समानैः समानशब्दोत्र लुप्तो द्रष्टव्यः। शशिनश्च ऋक्षाणि च तैः। किंविशिष्टैः? नभस्यमानैः नभस्याकाशेऽमानैरियंतामिति परिमाणरहितैः। यदि वा

नभसि व्यवस्थितैः। शशिग्रहर्त्तैः समानानि तत्कुसुमानि नभःसमानानि तैः। कदा? शरदि शरत्काले। भृंगारेत्यादि—भृंगारश्च अब्दकाश्च दर्पणाः कलशाश्च ते आदयो येषां तारिकार्द्धचंद्रादीनां तानि च तान्युपकरणानि च तैः। कथंभूतैः? अष्टशतकपरिसंख्यानैः अष्टौ च शतं परिमाणं यस्य तदष्टशतकं तत्परिसंख्यानं येषां तैः। पुनरपि कथंभूतैः? प्रत्येकं चित्रगुणैः एकं एकं प्रति चित्रगुणैः। पुनरपि कैः प्रभ्राजंते? कृतभणभणनि-नदविततघंटाजालैः—कृता भणभण इति निनदाः शब्दा यैस्तानि च तानि विततानि घंटानां जालानि पंक्तयस्तैः। कथंभूतानि भवनानि इत्याह गंधकुटीत्यादि—यत्रोत्पन्नविमलकेवलज्ञानो भगवान् समवसरणमध्ये आस्ते सा गंधकुटी तां गतं प्राप्तं तच्च तन्मृगपतिविष्टरं च स्वसिंहासनं च सह तेन रुचिराणि दीप्राणि। यदि वा बहूनां प्रतिमानां स्थानं गंध-कुटी। पुनरपि कथंभूतानि? विविधविभवयुतानि—विविधैर्विचित्रैर्वि-भवैर्विभूतिभिर्युतानि ॥ २१-२५ ॥

येषु जिनानां प्रतिमाः पंचशतशरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनकरजतविकृता दिनकरकोटिप्रभाधिकप्रभदेहाः ॥ २६ ॥
तानि सदा वंदेऽहं भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिशमतिशयशोभाविभांजि पापविभंजि॥ २७ ॥

टीका—येष्वित्यादि। येषु भवनेषु जिनानां जिनेंद्राणां प्रतिमाः। किंप्रमाणाः? पंचशतशरासनोच्छ्रिता उच्चाः। सत्प्रतिमाः सती शोभना प्रतिमा प्रतिकृतिराकारो यासां ताः। अथवा पंचशतशरासनोच्छ्रिताश्च ताः असत्प्रतिमाश्चाविद्यमानसादृश्याः। मणिकनकरजतविकृताः मण-यश्च कनकं च रजतं च तैर्विकृता इव निर्मिता इव। पुनरपि कथंभूताः? दिनकरकोटिप्रभाधिकप्रभदेहाः दिनकराणां कोट्यस्तासां प्रभा दीप्तिस्तस्या अधिका प्रभा यस्य देहस्य स तथाविधो देहो यासां तास्तथोक्ताः। तानीत्यादि। तानि भवनानि। सदा कालत्रयेऽपि वंदेऽहं। कथंभूतानि? भानुप्रतिमानि आदित्यतुल्यानि। यानि कानि च तानि अनिर्दिष्टस्वरू-

पाणि । जिनभवनानि । किंविशिष्टानीत्याह–यशसामित्यादि । यशसां कीर्तीनां । महसां तेजसां । दिशं प्रति प्रतिदिशं सर्वासु दिक्षु । अतिशय-शोभां विभजंते सेवंते इत्यतिशयशोभाविभांजि । भजो विः । पापं विभंजंति विनाशयंतीति पापविभंजि ॥ २६–२७ ॥

इदानीं तीर्थकरान्स्तोतु सप्तत्यधिकेत्याद्याह—

सप्तत्यधिकशतप्रियधर्मक्षेत्रगततीर्थकरवरवृषभान् ।
भूतभविष्यत्संप्रतिकालभवान्भवविहानये विनतोऽस्मि ॥ २८ ॥

टीका—सप्तत्यधिकं शतं येषां तानि, प्रियो वल्लभो धर्मो येषां तानि प्रियधर्माणि । तानि च तानि क्षेत्राणि च, सप्तत्यधिकशतानि च तानि प्रियधर्मक्षेत्राणि च तानि गताः प्राप्ताः ये तीर्थकरा वरेभ्यः श्रेष्ठेभ्यः, वरेषु वा वृषभाः मुख्याः तीर्थकराश्च ते वरवृषभाश्चेति वा तान् । किंविशिष्टान् ? भूतभविष्यत्संप्रतिकालभवान्–त्रिकालगतान् । विनतोस्मि प्रणतो भवामि । किमर्थं ? भवविहानये संसारविनाशाय ॥ २८ ॥

अस्यामवसर्पिण्यां वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता ।
अष्टापदगिरिमस्तकगतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ॥ २९ ॥

टीका—अस्यामित्यादि । येषु निर्वाणक्षेत्रेषु ऋषभादयो निर्वाणं गतास्तानि स्तौति । अस्यामिदानींतनावसर्पिण्यां वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता प्रथमश्चासौ तीर्थकर्ता च प्रथमः तीर्थकर इत्यर्थः । भर्ता असिमषिकृष्यादिजीवनोपायप्रदर्शकत्वेन लोकानां पोषकः । अष्टापदः कैलासः स चासौ गिरिश्च तस्य मस्तकं गतः प्राप्तः स्थितः उर्ध्वकायोत्सर्गोपेतः मुक्तिं प्राप्तवान् । पापान्मुक्तोऽपेतः सन् ॥ २९ ॥

श्रीवासुपूज्यभगवान् शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानां ।
चंपायां दुरितहरः परमपदं प्रापदापदामन्तगतः ॥ ३० ॥

टीका—श्रीवासुपूज्येत्यादि । परमपदं मोक्षं । प्रापत्प्राप्तवान् । कोसौ ? श्रीवासुपूज्यभगवान् । कथंभूतः ? शिवासु शोभनासु, पूजासु पंचकल्याणरूपासु, पूजितः त्रिदशानां । मतिबुद्धिपूजितार्थयोगे तृतीयार्थे षष्ठी । क तत्प्रापत् ? चंपायां । किंविशिष्टो ? दुरितहरः अष्टकर्मध्वंसो । पुनरपि कथंभूतः ? आपन्नामंतगतो दुःखानां अवसानं प्राप्तवान् ॥ ३० ॥

मुदितमतिबलमुरारिप्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः ।
बृहदूर्जयन्तशिखरे शिखामणिस्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान् ॥ ३१ ॥

टीका—मुदितेत्यादि । नेमिर्भगवान्परमपदं प्रापदिति संबन्धः । किंविशिष्ट इत्याह मुदितेत्यादि । मुदिता हृष्टा मतिर्ययोः बलमुरार्योर्बलभद्र-नारायणयोस्ताभ्यां प्रकर्षेण परमभक्त्या पूजितः । जिताः कषाया एव रिपवो येन स तथोक्तः । अथ जातः तदनंतरं गतः । क ? बृहदूर्जयंत-शिखरे । किंविशिष्टः ? शिखामणिः चूडामणिः । कस्य ? त्रिभुवनस्य । नेमिर्भगवान् जातः संपन्नो वा शिखामणिश्चूडामणिः त्रिभुवनस्येति संबंधः ॥ ३१ ॥

पावापुरवरसरसां मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसां ।
वीरो नीरदनादो भूरिगुणश्चारुशोभमास्पदमगमत् ॥ ३२ ॥

टीका—पावेत्यादि । पुराणां वरं पुरवरं पावानां पुरवरं पावापुरवरं तस्मिन्सरांसि तेषां मध्यं तद्गतः प्राप्तः । सिद्धिरभिप्रेतकार्यनिष्पत्तिः, वृद्धिर्गुणोत्कर्षः, तपोनशनादि । सिद्धवृद्ध इति च क्वचित्पाठः । तत्र सिद्धानि प्रसिद्धानि, वृद्धानि परमप्रकर्षं प्राप्तानि यानि तपांसि इति ग्राह्यं तेषां । तथा महसां तेजसां मध्यगतः । कोसौ ? वीरो वर्धमान । स्वामी । नीरदस्य मेघस्य नाद इव नादो यस्यासौ नीरदनादः । भूरयः प्रचुराः गुणाः यस्यासौ भूरिगुणः । चारु शोभनं अनंतं सौख्यं यस्मिं-स्तत् आस्पदं स्थानं । अगमद् गतवान् ॥ ३२ ॥

सम्मदकरिवनपरिवृतसम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे ।
शेषा ये तीर्थकराः कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ॥३३॥

टीका—सम्मदेत्यादि। सम्मदाश्च ते करिणश्च हस्तिनस्तेषां वनानि। अथवा सम्मदकराणि हर्षजनकानि यानि वनानि तैः परिवृतः स चासौ सम्मेदश्च स एव गिरींद्रस्तस्य मस्तकं तस्मिन्। विस्तीर्णे। शेषा वृषभ-वासुपूज्यनेमिवीरेभ्योऽन्ये ये तीर्थकराः। कथंभूताः? कीर्तिभृतः। प्रार्थितार्थसिद्धिं मुक्तिं। अवापन् प्राप्तवंतः ॥ ३३ ॥

शेषाणां केवलिनां अशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां ।
गिरितलविवरदरीसरिदुरुवनतरुविटपिजलधिदहनशिखासु ॥३४
मोक्षगतिहेतुभूतस्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्रभक्तिनुतानि ।
मंगलभूतान्येतान्यंगीकृतधर्मकर्मणामस्माकम् ॥ ३५ ॥

टीका—शेषाणामित्यादि। शेषाणां तीर्थकरेभ्योऽन्येषां। अशेषमतवेदिगणभृतां गणधरदेवानां। तथा साधूनां। गिरयश्च पर्वताः, तलानि उपरितनभागाः, विवराणि च रन्ध्राणि, दर्यश्च कंदराणि, सरितश्च नद्यः, उरूणि च तानि वनानि च, तरवश्च पादपाः, विटपाश्च वृक्षस्कंधप्रदेशाः, जलधिश्च समुद्रः, दहनशिखाश्चाग्निज्वालाः तासु आश्रयभूतासु। मोक्षेत्यादि। मोक्षस्य गतिः प्राप्तिः तस्य हेतुभूतानि च तानि स्थानानि च। किंविशिष्टानि? सुरेन्द्ररुन्द्रभक्तिनुतानि सुरेन्द्रैः रुंद्रया महत्या भक्त्या नुतानि। पुनरपि कथंभूतानि? मंगलभूतानि एतानि कथितप्रकाराणि। केषामस्माकं। कथंभूतानां? अंगीकृतधर्मकर्मणां अंगीकृतं उररीकृतं धर्म एव कर्म कार्यं यैस्तेषां ॥ ३४-३५ ॥

जिनपतयस्तत्प्रतिमास्तदालयास्तन्निषद्यकास्थानानि ।
ते ताश्च ते च तानि च भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम् ॥३६॥

टीका—जिनपतय इत्यादि। जिनपतयः केवलिनः तत्प्रतिमास्त-दालयास्तन्निषद्यकास्थानानि। ते जिनपतयः, ताश्च जिनप्रतिमाः, ते च

जिनचैत्यालयाः, तानि च जिनपतिनिषद्यकास्थानानि। भवन्तु संपद्यंतां। भवघातहेतवः संसारविनाशहेतवः। केषां? भव्यानां भव्यप्राणिनां॥३६॥

सन्ध्यास्वित्यादिना नंदीश्वरभक्तिस्तुतेः फलमाह—

संध्यासु तिसृषु नित्यं पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तमयशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं लघु लभते श्रुतधरेडितं पदममितम्॥ ३७॥

टीका—संध्यासु तिसृषु। नित्यं सर्वकालं। पठेद्यदि स्तोत्रमेतत्। केषां? सर्वज्ञानां। किंविशिष्टानां? उत्तमयशसां उत्तमं सर्वलोकश्लाघ्यं यशो येषां। सार्वं सर्वेभ्यो हितं। लघु शीघ्रं। लभते प्राप्नोति। किं तत्? पदं निर्वाणस्थानं। कथंभूतं? श्रुतधरेडितं श्रुतकेवलिभिः स्तुतं। पुनरपि कथंभूतं? अमितं अनंतम्॥ ३७॥

आर्या छन्दः।

नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीरगौररुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृतिसंहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्म्यम्॥ १॥
अप्रमितवीर्यता च प्रियहितवादित्वमन्यदमितगुणस्य।
प्रथिता दश ख्याता स्वतिशयधर्माः स्वयंभुवो देहस्य॥ २॥

टीका—नित्यमित्यादि। नित्यं सर्वकालं। निःस्वेदत्वं प्रस्वेदानिष्क्रांतत्वं। निर्मलता मलान्निःष्क्रान्तत्वं। क्षीरगौररुधिरत्वं च—क्षीरवद्गौरं धवलं रुधिरं यस्य तथोक्तस्तस्य भावस्तत्त्वं। चः समुच्चये। स्वाद्याकृतिसंहनने आकृतिश्च संहननं च, शोभने च ते आद्ये च ते आकृतिसंहनने च, आद्याकृतिः समचतुरस्रसंस्थानं, आद्यसंहननं च वज्रर्षभनाराचसंहननं। सौरूप्यं रूपोपेतत्वं। सौरभं सुगंधित्वं। सौलक्ष्म्यं शोभनलक्षणोपेतत्वं। अप्रमितेत्यादि—अप्रमितवीर्यता अनंतवीर्यता। प्रियहितवादित्वं प्रियं मनोज्ञं, हितं परिणामपथ्यं, तद्वादित्वं। अन्यत् पूर्वोक्तेभ्यो नवभ्यो अपरं इति। प्रथिताः प्रसिद्धाः। दशसंख्याताः दशसंख्यावच्छिन्नाः। के ते? स्वतिशयधर्माः शोभनोऽतिशयो येषां ते च ते

धर्माश्च । कस्य ? देहस्य । कस्य संबंधिनः ? स्वयंभुवोऽर्हतः । किंविशिष्टस्य स्वयंभुवः ? अमितगुणस्य—अनंतगुणस्य । इति स्वाभाविका दशैतेतिशयाः ॥ १-२ ॥

गव्यूतीत्यादिना घातिक्षयजान् दशातिशयानाह—

गव्यूतिशतचतुष्टयसुभिक्षतागगनगमनमप्राणिवधः ।
भुक्त्युपसर्गाभावश्चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता ॥ ३ ॥
अच्छायत्वमपक्ष्मस्पंदश्च समप्रसिद्धनखकेशत्वं ।
स्वतिशयगुणा भगवतो घातिक्षयजा भवंति तेपि दशैव ॥ ४ ॥

टीका—गव्यूतिः क्रोशमेकं गव्यूतीनां शतचतुष्टये सुभिक्षता । गगने गमनं । अप्राणिवधो जीवघाताभावः । भुक्त्युपसर्गाभावः—भुक्तिर्भोजनं कवलाहारः, उपसर्ग उपद्रवः तयोरभावः । चतुरास्यत्वं चतुर्मुखत्वं । सर्वविद्येश्वरता—सर्वविद्या द्वादशांगचतुर्दशपूर्वाणि तासां स्वामित्वं, यदि वा सर्वविद्या केवलज्ञानं तस्या ईश्वरता स्वामिता । अच्छायत्वेत्यादि—अच्छायत्वं प्रतिबिंबरहितता । अपक्ष्मस्पंदश्च चक्षुःपक्ष्मणां चलनाभावः । समप्रसिद्धनखकेशत्वं—समत्वेन वृद्धिह्रासहीनतया प्रसिद्धा नखाश्च केशाश्च यस्य देहस्य तस्य भावस्तत्त्वं । स्वतिशयगुणाः शोभनः सुष्ठु वा अतिशयो येषां ते च ते गुणाश्च । भगवतोऽतिशयज्ञानवतः । घातिक्षयजा ज्ञानावरणादिकर्मचतुष्टयक्षयोद्भूताः । तेपि न केवलं स्वाभाविकाः किंतु तेऽपि घातिक्षयजा अपि दशैव भवंति ॥ ३-४ ॥

सार्वार्धेत्यादिना देवोपनीतांश्चतुर्दशातिशयानाह—

सार्वार्धमागधीया भाषा मैत्री च सर्वजनताविषया ।
सर्वर्तुफलस्तवकप्रवालकुसुमोपशोभिततरुपरिणामा ॥ ५ ॥
आदर्शतलप्रतिमा रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा ।
विहरणमन्वेत्यनिलः परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य ॥ ६ ॥

टीका—सर्वेभ्यो हिता सार्वा सा चासौ अर्धमागधीया च । अर्धं भगवद्भाषायाः, अर्धं देशभाषात्मकं, अर्धं च सर्वभाषात्मकं । कथमेवं देवोपनीतत्वं तदतिशयस्येति चेत् मागधदेवसन्निधाने तथा परिणतया भाषया सकलजनानां भाषणसामर्थ्यसंभवात् । अथवा समवसरणभूमौ योजनमात्रमेव भगवद्भाषया व्याप्तं । परतो मगधदेवैस्तद्भाषाया अर्धं मागधभाषया संस्कृतभाषया च प्रवर्त्यते । न केवलं भाषा मैत्री च प्रीतिश्च । कथंभूता ? सर्वजनताविषया—सर्वजनानां समूहः सर्वजनता सा विषयो यस्याः सा तादृशी भाषा मैत्री च भवति । सर्वो हि जनानां समूहाः मागधप्रीतिंकरदेवातिशयवशान्मागधभाषया भाषंतेऽन्योन्यमित्रतया च वर्तंते इति द्वावतिशयौ । सर्वर्तुफलस्तवकप्रवालकुसुमोपशोभिततरुपरिणामा—सर्वे च ते ऋतवश्च शरद्धेमन्तशिशिरवसंतनिदाघप्रावृषः तेषां फलस्तबकाश्च प्रवालाश्च कुसुमानि च तैरुपशोभितस्तरुपरिणामो यस्यां सा तथोक्ता । कासौ ? मही चेत्युत्तरार्द्धेन संबंधात् । आदर्शेत्यादि—आदर्शो दर्पणस्तस्य तलं मध्यं तेन प्रतिमा सदृशी, रत्नैर्निर्मिता कृता रत्नमयी । जायते संपद्यते । मही च मनोज्ञा सकलजननयनमनःप्रीतिकरो । विहरणमन्वेत्यनिलः अनिलो वायुर्भगवद्विहरणानुसारमन्वेत्यनुगच्छति । परमानंदश्च परमोऽतिशयवानानंदः संतोषो भवति सर्वजनस्य ॥ ५–६ ॥

मरुतोऽपि सुरभिगंधव्यामिश्रा योजनांतरं भूभागं ।
व्युपशमितधूलिकंटकतृणकीटकशर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥ ७ ॥
तदनु स्तनितकुमारा विद्युन्मालाविलासहासविभूषाः ।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं गंधोदकवृष्टिमाज्ञया त्रिदशपतेः ॥ ८ ॥

टीका—मरुतोपीत्यादि । मरुतो वायवः । सुरभिगंधव्यामिश्राः शोभनगंधयुक्ताः । योजनांतरं योजनस्यांतरं मध्यं विहरंतो भूभागं कुर्वंति । कथंभूतमित्याह व्युपशमितेत्यादि धूलयश्च, कंटकाश्च, तृणानि च,

कीटकाश्च, शर्कराश्च, उपलाश्च पाषाणाः विशेषेणोपशमिता एते यस्मिन्भूभागे स तथोक्तस्तं । तदन्वित्यादि । तदनु मरुत्कृतविशुद्धभूभागानंतरं । स्तनितकुमारा मेघकुमाराः । किंविशिष्टाः? विद्युन्मालाविलासहासविभूषाः-विद्युतां माला पंक्तिस्तस्या विलासः कांतिर्दीप्तिश्चमत्कृतिरित्यर्थः हासो गर्जितं तावेव विभूषालंकारौ येषां ते तथोक्ताः । किं कुर्वन्ति प्रकिरंति प्रक्षिपंति । कां ? गंधोदकवृष्टिं । कथंभूतां ? सुरभिगंधिं । कया ? आज्ञया । कस्य ? त्रिदशपतेः ॥ ७-८ ॥

वरपद्मरागकेसरमतुलसुखस्पर्शहेममयदलनिचयम् ।
पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति ॥ ९ ॥

टीका—वरपद्मेत्यादि । पादन्यासे अर्हतां पादनिक्षेपे पद्मं देवोपनीतं भवति । कथंभूतं ? वरपद्मरागकेसरं वराश्च ते पद्मरागाश्च मणिविशेषाः ते एव केसराणि यस्य तत्तथोक्तं । अतुलसुखस्पर्शहेममयदलनिचयं अतुलं अनुपमं सुखं यस्मिन्स्पर्शे स तथाविधः स्पर्शो येषां तानि च हेम्ना निर्वृतानि च तानि दलानि पत्राणि च तेषां निचयो यस्मिन् । तस्मिन्पादन्यासे नैकमेव पद्मं, किंतु पुरो अग्रतः सप्त, सप्त च पृष्ठतो भवंति । चशब्दादन्यदप्यपरिभ्रमत्पंचविंशत्यधिकशतद्वयपद्मप्रस्तारो ज्ञातव्यः । तथा हि अष्टसु दिक्षु तदन्तरेषु चाष्टसु सप्त सप्त पद्मानि इति द्वादशोत्तरमेकं शतं । तथा तदंतरेषु षोडशसु सप्त सप्तेति अपरं द्वादशोत्तरं शतम् । पादन्यासे पद्मं चेति पंचविंशत्यधिकं शतद्वयं । अथवोक्तपंचदशपद्मपंक्तेरुभयपार्श्वतः सप्त सप्त पंचदशपंक्तयश्चैतेन समुच्चीयंते इति ॥ ९ ॥

फलभारनम्रशालिव्रीह्यादिसमस्तसस्यधृतरोमांचा ।
परिहृषितेव च भूमिस्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यंती ॥ १० ॥

टीका—फलभारेत्यादि । शालयः कलमप्रभृतयो व्रीहयः षष्ठिकादयः ते आदिर्येषां समस्तसस्यानां । फलभारनम्राणि च तानि शालिव्रीह्यादिसमस्तसस्यानि च तान्येव धृतो रोमांचो यया सा भूमिः । उत्प्रेक्षते परिहृषितेव च उद्धर्षितेव च । किं कुर्वती ? त्रिभुवननाथस्य अर्हतो वैभवं विभूतिं पश्यंती ॥ १० ॥

शरदुदयविमलसलिलं सर इव गगनं विराजते विगतमलं ।
जहति च दिशस्तिमिरिकां विगतरजःप्रभृतिजिह्मताभाव सद्यः ११

टीका—शरदित्यादिना आकाशशोभां वर्णयति । शरदः शरत्कालस्योदय आगमनं तेन विमलं पानीयं यस्मिन् तत्तथाविधं सर इव तडागमिव । गगनं विराजते शोभते । विगतमलं विनष्टो मलो अभ्रपटलादिर्यस्य तत्तथोक्तं । तदा दिशश्च कीदृश्योऽभूवन्नित्याह जहति चेत्यादि—जहति च त्यजंति च । काः ? दिशः । कां ? तिमिरिकां धूम्रतां । कथं ? विगतरजःप्रभृतिजिह्मताभावं रजःप्रभृति येषां तमःशलभादीनां तैः कृतो जिह्मभावो मलिनत्वं स विगतो विनष्टो यत्र तत्तथा भवति । सद्यो झटिति ॥ ११ ॥

एतेतेति त्वरितं ज्योतिर्व्यंतरदिवौकसाममृतभुजः ।
कुलिशभृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ॥ १२ ॥

टीका—एतेतेत्यादि । एत एत-आगच्छत आगच्छत इत्येवं, पूर्वोक्ताकारस्य "ओमाङोरिति" पररूपत्वं । त्वरितं शीघ्रं । ज्योतींषि चन्द्रादयः व्यंतराः किन्नरादयः दिवौकसः कल्पवासिनः, तेषां अन्ये भवनवासिनः, अमृतभुजो देवाः कुर्वन्ति व्याह्वानं शब्दं अर्हत्पूजार्थं । समन्ततः सर्वतः । कया ? कुलिशभृदाज्ञापनया इन्द्राज्ञया ॥ १२ ॥

स्फुरदरसहस्ररुचिरं विमलमहारत्नकिरणनिकरपरीतम् ।
प्रहसितकिरणसहस्रद्युतिमंडलमग्रगामि धर्मसुचक्रम् ॥ १३ ॥

टीका—स्फुरदित्यादि । धर्मसुचक्रं अग्रगामि अभूत । किंविशिष्टं तदित्याह—स्फुरन्तश्च ते अराश्च तेषां सहस्राणि तेषु रुचिराणि

दीप्राणि विमलानि यानि महारत्नानि तेषां किरणनिकरस्तेन परीतं परिवृतं। पुनरपि कथंभूतं ? प्रहसितसहस्रकिरणद्युतिमंडलं प्रहसितं उपहसितं सहस्रकिरणस्य आदित्यस्य द्युतिमंडलं दीप्तिसमूहो येन तत्तथोक्तम् ॥१३॥

इत्यष्टमंगलं च स्वादर्शप्रभृति भक्तिरागपरीतैः ।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमातिविशेषाः ॥ १४ ॥

टीका—इत्यष्टेत्यादि । इति एवमर्थे । यथा धर्मचक्रपर्यंतास्त्रयोदशातिशया देवोपनीतास्तथा अष्टमंगललक्षणश्चतुर्दशोऽप्यतिशयस्तदुपनीत इति । शोभन आदर्शः दर्पणः प्रभृति आदिर्यस्य छत्रध्वजकलशचामरसुप्रतीकभृङ्गारताललक्षणमंगलस्य तत्तथोक्तं । न केवलं स्वाभाविका घातिक्षयजाश्चातिशया भगवतो भवन्ति, अपि तु एतेऽपि प्ररूपितप्रकाराः चतुर्दशातिशयास्त्रिदशैः देवैरुपकल्प्यन्ते संपाद्यन्ते । किंविशिष्टाः ? निरुपमातिविशेषाः उपमाया निष्क्रान्तोऽतीवविशेषो येषां अथवा विशेष्यन्तेऽन्येभ्योऽनीवेत्यतिविशेषा निरुपमाश्च ते अतिविशेषाश्च । कथंभूतैस्त्रिदशैः ? भक्तिरागपरीतैः [भक्तिः श्रद्धाविशेषो रागः प्रीतिविशेषः] ताभ्यां परीतैर्युक्तैः ॥१४॥

एवं चतुस्त्रिंशदतिशयानभिधाय अष्टमहाप्रातिहार्याण्यभिधातुमाह—

वैडूर्यरुचिरविटपप्रवालमृदुपल्लवोपशोभितशाखः ।
श्रीमानशोकवृक्षो वरमरकतपत्रगहनबहलच्छायः ॥ १५ ॥

टीका—वैडूर्येत्यादि । अशोकवृक्षोऽभूत् । किंविशिष्ट इत्याह वैडूर्येत्यादि—वैडूर्यमणिविशेषैः रुचिरो दीप्रो विटपो विस्तारः, स च प्रवालाश्च अभिनवांकुरा मृदुपल्लवाश्च तैरुपशोभिताः शाखा यस्य स तथोक्तः । श्रीमान् शोभावान् । पुनरपि किंविशिष्ट इत्याह वरेत्यादि वराश्च ते मरकताश्च तैर्निर्मितानि पत्राणि तेषां गहनं संघातः तेन बहला घना छाया यस्य स तथोक्तः ॥ १५ ॥

मंदारकुंदकुवलयनीलोत्पलकमलमालतीबकुलाद्यैः ।
समदभ्रमरपरीतैर्व्यामिश्रा पतति कुसुमवृष्टिर्नभसः ॥ १६॥

टीका—मंदारेत्यादि । पतति । कासौ ? कुसुमवृष्टिः । कुतः ? नभसः । किंविशिष्टा ? व्यामिश्रा संवलिता । कैरित्याह मंदारेत्यादि—मंदाराणि च कुन्दानि च कुवलयानि च नीलोत्पलानि च कमलानि च मालती च बकुलानि च तानि आद्यानि येषां तैः । पुनरपि कथंभूतैः ? समदभ्रमरपरीतैः सह मदेन हर्षेण वर्तंते इति समदाः ते च ते भ्रमराश्च तैः परीतैः परिवेष्टितैः ॥ १६ ॥

कटककटिसूत्रकुंडलकेयूरप्रभृतिभूषितांगौ स्वंगौ ।
यक्षौ कमलदलाक्षौ परिनिक्षिपतः सलीलचामरयुगलम् ॥१७॥

टीका—कटकेत्यादि । कटकानि च कटिसूत्राणि च कुण्डलानि च केयूराणि च तानि प्रभृतीनि आद्यानि येषां तैर्भूषितान्यंगानि ययोस्तौ तथोक्तौ । स्वंगौ शोभनानि अंगानि ययोः । कमलदलाक्षौ कमलस्य दलानि पत्राणि तद्वदक्षिणी ययोः ताविस्थंभूतौ यक्षौ । परिनिक्षिपतः प्रेरयतः । सलीलचामरयुगलं—सह लीलया वर्तते इति सलीलं तच्च तच्चामरयुगलं च ॥ १७ ॥

आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकरसहस्रमपगतव्यवधानम् ।
भामंडलमविभावितरात्रिंदिवभेदमतितरामाभाति ॥ १८ ॥

टीका—आकस्मिकेत्यादि । भामंडलमतितरामाभाति अतिशयेन शोभते । किंविशिष्टमित्याह आकस्मिकमित्यादि । अकस्माद्भवमाकस्मिकं इव अतर्कितोपस्थितमिव । युगपदेकहेलया । दिवसकराणां आदित्यानां सहस्रं । अपगतव्यवधानं अपगतं विनष्टं व्यवधानं देशादिविप्रकर्षो यस्य । अविभावितरात्रिंदिवभेदं अविभावितोऽनुपलक्षितो रात्रिदिवसयोः भेदो विशेषो यस्मिन्सति ॥ १८ ॥

प्रबलपवनाभिघातप्रक्षुभितसमुद्रघोषमन्द्रध्वानम्।
दंध्वन्यते सुवीणावंशादिसुवाद्यदुंदुभिस्तालसमं ॥ १९ ॥

टीका—प्रबलेत्यादि। प्रबलः प्रचंडः स चासौ पवनश्च तेनाभिघातः अभिहननं तेन प्रक्षुभितः प्रक्षोभं गतः स चासौ समुद्रश्च तस्य घोषः शब्दः तद्वन्मंद्रो मनोज्ञो ध्वानः शब्दो यत्र ध्वननं तद्यथा भवत्येवं। अत्यर्थं ध्वनति दंध्वन्यते। कोसौ? सुवीणावंशादिसुवाद्यदुन्दुभिः शोभनवीणा च वंशश्च तावादिर्येषां सुवाद्यानां तैर्युक्तो दुन्दुभिः। तालैर्वाद्यविशेषैः कराभिघातैः क्रियमाणविशेषैर्वा समं यथा भवत्येवं च दंध्वन्यते॥ १९॥

त्रिभुवनपतितालांछनमिंदुत्रयतुल्यमतुलमुक्ताजालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्वैडूर्यविक्लृप्तदंडमधिकमनोज्ञम् ॥ २० ॥

टीका—त्रिभुवनेत्यादि। छत्रत्रयं च प्रजायते। किंविशिष्टं? त्रिभुवनपतितालांछनं त्रिभुवनपतिना त्रैलोक्यस्वामित्वं तस्य लांछनं चिह्नं। इंदुत्रयतुल्यं इंदूनां चंद्राणां त्रयं तेन तुल्यं सदृशं। अतुलमुक्ताजालं अतुलं अद्वितीयं मुक्ताजालं मुक्ताफलसमूहो यत्र। सुबृहद्वैडूर्यविक्लृप्तदंडं बृहंति च तानि वैडूर्याणि च तैर्विक्लृप्तो निर्वृतो दंडो यस्य। अधिकमनोज्ञं अतिशयमनोहारि॥ २०॥

ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोत्रहृदयहारिगभीरः।
ससलिलजलधरपटलध्वनितमिव प्रविततान्तराशावलयं ॥२१॥

टीका—ध्वनिरपीत्यादि। ध्वनिरपि शब्दोऽपि। प्रजायते व्याप्नोति। कियद्दूरं? योजनमेकं एकयोजनपरिमाणं। श्रोत्रहृदयहारिगभीरः कर्णमनःसुखावहः गंभीरो महान्। किमिवेत्याह ससलिलेत्यादि—सह सलिलेन वर्तते इति ससलिलं तच्च तज्जलधरपटलं च तस्य ध्वनितमिव गर्जितमिव। कथंभूतं? प्रविततान्तराशावलयं—प्रविततं व्याप्तं अंतरं दिगंतरं आशावलयं च येन। एवंविधं ध्वनितमिव ध्वनिर्भगवतः॥२१॥

स्फुरितांशुरत्नदीधितिपरिविच्छुरितामरेन्द्रचापच्छायम् ।
ध्रियते मृगेंद्रवर्यैः स्फटिकशिलाघटितसिंहविष्टरमतुलम् ॥२२॥

टीका—स्फुरितेत्यादि । सिंहविष्टरं सिंहासनं । ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः सिंहप्रधानैः । कथंभूतं ? स्फुरितांशु स्फुरिता दीप्ता अंशवः किरणाः यस्य । पुनरपि कथंभूतमित्याह रत्नेत्यादि रत्नानां दीधितयः किरणाः तैः परिविच्छुरितं कर्बुरीकृतं यदमरेन्द्रचापं इन्द्रधनुः तस्येव छाया शोभा यस्य । स्फटिकशिलाघटितं स्फटिकस्य शिला पाषाणस्तया घटितं निर्मितं । यत एवंविधं तत एवातुलं अनुपमं ॥ २२ ॥

यस्येह चतुस्त्रिंशत्प्रवरगुणा प्रातिहार्यलक्ष्म्यश्चाष्टौ ।
तस्मै नमो भगवते त्रिभुवनपरमेश्वरार्हते गुणमहते ॥ २३ ॥

टीका—यस्येत्यादि । यस्य अर्हतः । इह जगति । चतुस्त्रिंशत्प्रवरगुणाः न केवलमेते किंतु प्रातिहार्यलक्ष्म्यश्चाष्टा प्रातिहार्याण्येव लक्ष्म्यः विभूतयः अभूवन । तस्मै त्रिभुवनपरमेश्वरार्हते भगवते नमः, त्रिभुवनपरमेश्वरश्चासौ अर्हंश्च तस्मै । गुणमहते गुणैरनंतज्ञानादिभिः महान् इंद्रादीनां पूज्यः ॥ २३ ॥

[1]भक्तीनां विवृतिः समस्तविषया मोहांधकारापहा
भव्याब्जप्रतिबोधिनी भवसरित्संशोषणी सर्वदा ।
कर्मोलूकहतप्रवृत्तिरमला सन्मार्गसंदर्शिनी
स्याद्वादाभ्युदया प्रचंडतरणिप्रख्या चिरं नंदतात् ॥

इति पंडितप्रभाचंद्रविरचितायां क्रियाकलापटीकायां
भक्तिविवरणः प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।

१—टीकाकर्तुरिदं ।

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! णंदीसरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । णंदीसरदीवम्मि, चउदिसविदिसासु अंजणदधिमुहरदिकरपुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि धूवेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि आसाढकत्तियफागुणमासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अंचंति, पूजंति, वंदंति, णमसंति, णंदीसरमहाकल्लाणं करंति अहमवि, इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

वीरभक्तिः ।

य: सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वथा ।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥ १ ॥

टीका—यः सर्वाणीत्यादि । यः—वीरो भगवान् जानीते तस्मै नमः । किं जानीते ? सर्वाणि द्रव्याणि । कथंभूतानि ? **चराचराणि—**चराणि सक्रियाणि जीवपुद्गलद्रव्याणि, अचराणि निष्क्रियाणि **धर्मा-**धर्माकाशकालद्रव्याणि । कथमसौ तानि जानीते ? **विधिवत्—**यथावत् । न केवलं तान्येवासौ जानीतेऽपि तु तेषां गुणान् **पर्यायानपि—**

तेषां सर्वद्रव्याणां सम्बन्धिनो ये गुणाः सहभुवो धर्मा ये च पर्यायाः क्रमभुवो विवर्तास्तानपि सर्वान् सर्वथा—अशेषविशेषतो जानीते । कथंभूतान् ? भूतभाविभवतः—अतीतानागतवर्तमानान् । किं कदाचिदेवासौ तांस्तथा जानीते ? न, सदा—सर्वकालं । ननु कालादिक्रमेणासौ तांस्तथा ज्ञास्यतीत्याह युगपत्—एकहेलयैव न पुनर्देशकालस्वभावक्रमेण करणक्रमव्यवधानातिवर्तिज्ञानस्वभावात्तस्य । तर्हि कस्मिंश्चिदेव क्षणे तांस्तथा ज्ञास्यति पश्चात्तु क्रमेणेत्याह प्रतिक्षणं—क्षणं क्षणं प्रति तांस्तथा जानीते न पुनः कस्मिंश्चिदेव क्षणे । यत एवंविधो भगवान् अतः सर्वज्ञ इत्युच्यते—सर्वं हि वस्तु युगपद्याथावज्जानातीति सर्वज्ञः । तस्मै सर्वज्ञाय जिनेश्वराय—देशजिनस्वामिने महते—गुणोत्कृष्टाय, वीराय अन्तिमतीर्थंकराय नमः ॥ १ ॥

तदेव तन्महत्त्वं सप्तविभक्तिनिर्देशेन गुणस्तवनद्वारेण प्रदर्शयति—

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिता
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वयि ॥ २ ॥

टीका—वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितः—सर्वे च ते सुरासुरेन्द्राश्च वैमानिकभवनवास्यादीन्द्रास्तैर्महितः पूजितः । वीरं बुधाः संश्रिताः—संसारसमुद्रोत्तरणार्थं समाश्रिताः । वीरेणाभिहतः—विनाशितः । कोऽसौ ? स्वकर्मनिचयः—स्वस्य स्वकीयानां वा भव्यानां कर्मनिचयो ज्ञानावरणादिकर्मसंघातः । इत्थंभूताय वीराय भक्त्या नमः । वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तं—तीर्यते संसारसमुद्रो येन तत्तीर्थं श्रुतमिदमंगांगबाह्यभेदभिन्नं । किंविशिष्टं ? अतुलं—निर्बाधत्वेन विशिष्टार्थप्रतिपादकत्वेन चानुपमं । वीरस्य घोरं तपो दुष्करं तपो बाह्यमाभ्यन्तरं च वीरस्य

भगवतः सम्बन्धि नान्येषां। वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयः--श्रीरन्तरंगा-बहिरंगा चानंतज्ञानादि--समवसरणादिविभूतिः, द्युतिर्देह-ज्योतिः, कान्तिः कमनीयता लावण्यविशेषो वा, कीर्तिः सार्वत्रिकी ख्यातिः वाणी वा कीर्त्यन्ते जीवादयोऽर्था ययेति व्युत्पत्तेः, धृतिः निराकांक्षता यत एतास्त्वयि विद्यन्तेऽतः हे वीर! भद्रं--परमकल्याणं त्वयि ॥ २ ॥

इत्थंभूते च त्वयि भगवन्! ये भक्तिं कुर्वन्ति तेषां फलमुपदर्शयन्नाह ये वीरेत्यादि—

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं ध्यानस्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥ ३ ॥

टीका--ये भव्यजनाः वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं। किंविशिष्टाः? ध्याने स्थिताः--एकाग्रतां गताः। संयमयोगयुक्ताः--संयमेन दशप्रकारेण यावज्जीवव्रतलक्षणेन वोपलक्षितो योगो मनोवाक्कायव्यापारं चित्तवृत्ति-निरोधो वा तेन युक्ताः सन्तः। ते वीतशोकाः--विनष्टशोकाः, हि—स्फुटं, लोके-त्रिभुवने भवन्ति शोको ह्यधर्मप्रभवः तत्प्रणामे च विशिष्ट-धर्मोत्पत्तेः, अधर्मप्रक्षयाच्छोकाभावः। एवंविधाश्च ते संसारदुर्गं विषमं तरन्ति—संसार एव दुर्गं महाटवीविषमं रौद्रमनेकप्रकारदुःखदायिक-त्वेन भयानकत्वात् तत्तरन्ति अतिक्रामन्ति लंघयन्ति ॥ ३ ॥

इदानीं भगवदुपदिष्टश्चारित्रवृक्षोऽस्माकं भवविभवहान्यै भव-त्वित्यभिनंदयन्नाह व्रतेत्यादि—

व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमतपोभिर्वर्धितः शीलशाखः।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः ॥ ४ ॥

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः॥ ५॥

टीका—वृक्षस्य हि मूलानि भवन्ति अयं तु चारित्रवृक्षः व्रतसमुदयमूलः—व्रतानां समुदयः समृद्धिसमुदायो वा मूलानि यस्य। तथा वृक्षस्य स्कन्धो भवति अयं तु चारित्रवृक्षः संयमस्कन्धबन्धः—शाखानिर्गमप्रदेशसन्निवेशविशेषो यस्य। तथा वृक्षो जलेन वर्धते अयं पुनर्यमनियमपयोभिर्वर्धितः—यमो यावज्जीवव्रतं नियमो नियतकालं व्रतं तावेव पयांसि तैर्वर्धितः। तथा वृक्षस्य शाखा भवन्ति अयं तु शीलशाखः—व्रतपरिरक्षणं शीलं अष्टादशसहस्रसंख्यानि वा शीलानि तान्येव शाखा यस्य। तथा वृक्षः कलिकासमूहसमन्वितो भवति चारित्रवृक्षस्तु समितिकलिकभारः—कलिकानां पुष्पबोंडिकानां भारः संघातः कलिकभारः त्वेत्राप्योः कचित्स्वौ चेति प्रदेश शिंशपस्थलमित्यादिवत्, समितय एव कलिकभारो यस्य। तथा वृक्षः सत्पल्लवो भवति अयं तु गुप्तिगुप्तप्रवालः—गुप्तीनां गुप्तं रक्षणं तदेव प्रवालाः पल्लवा यस्य गुप्तय एव वा गुप्ता रक्षिता तिरोहिता वा प्रवाला यस्य। तथा वृक्षः पुष्पसुगन्धिर्भवति अयं तु गुणकुसुमसुगन्धिः—चतुरशीतिलक्षणसंख्या गुणा एव कुसुमानि तैः सुगन्धिः परिमलास्वादः। तथा वृक्षः पत्राढ्यो भवति अयं तु सत्तपश्चित्रपत्रः—सत्तपांसि सम्यक्तपांसि तान्येव चित्राणि नानाप्रकाराणि पत्राणि यस्य। तथा वृक्षः फलप्रदो भवति चारित्रवृक्षः पुनः शिवसुखफलदायी—शिवसुखं मोक्षसुखमनन्तं तदेव फलं तद्ददातीत्येवंशीलः। तथा वृक्षो घनच्छायः पथिकानां खेदापहारी दिनकरतापापनोदकारी च भवत्ययं तु दयाछाययोद्यः—दयैव छाया प्राणिनां संतापाकारित्वेन शीतलत्वात्तया उद्यः प्रशस्तः, शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः—शुभजना भव्यजनास्त

एव पथिका मोक्षमार्गे प्रस्थितत्वात्तेषां खेदः संसारपरिभ्रमणक्लेशस्तस्य नोदो विनाशस्तत्र समर्थः। किं कुर्वन् ? दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं—प्रापयन् नयन् अन्तभावं प्रध्वंसरूपतां। कं ? दुरितरविजतापं—दुरितं पापं तदेव रविः प्राणिनां सन्तापकारित्वात्तस्माज्जातो दुरितरविजः स चासौ तापश्च चतुर्गतिदुःखं सन्तापस्तं। इत्थंभूतो यश्चारित्रवृक्षः सोऽस्तु—भवतु, नः—अस्माकं। किमर्थं भवति? भवविभवहान्यै—भवे संसारे विविधा नानाप्रकारा भवास्तेषां हान्यै विनाशाय ॥ ४-५ ॥

यतश्चैवंविधोऽसौ चारित्रवृक्षस्तस्मादात्मनस्तत्प्राप्तिमिच्छन् ग्रन्थकारश्चारित्रं स्तोतुं चारित्रमित्याद्याह—

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं पंचमचारित्रलाभाय ॥ ६ ॥

टीका—प्रणमामि । किं तत् ? चारित्रं। किंविशिष्टं? पंचभेदं—सामायिकादिपंचप्रकारं। तथा सर्वजिनैश्चरितं कर्मक्षयार्थं स्वयमनुष्ठितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः—प्रस्पष्टं यथाभवत्येवमुक्तं प्रतिपादितं सकलभव्यजनेभ्यः। किमर्थं भवता तत्प्रणम्यते? पंचमचारित्रलाभाय—पंचमचारित्रं निःशेषकर्मक्षयप्रसाधकं यथाख्यातं चारित्रं तस्य लाभाय प्राप्तये ॥ ६ ॥

तस्यैव चारित्रस्य धर्मापरशब्दाभिधेयस्य सप्तविभक्तिनिर्देशेन स्वरूपं प्रशस्यात्मनस्ततो रक्षां प्रार्थयमानः प्राह धर्म इत्यादि—

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय ॥७॥

टीका—धर्मः—चारित्रमुत्तमक्षमादिश्च तत्र चारित्रस्य प्रस्तुतत्वादिह ग्रहणं धर्मश्चारित्रं सर्वसुखाकरः—सर्वसुखानां स्वर्गापवर्गादिसुखानामाकरमुत्पत्तिस्थानं । तथा हितकरः—हितस्य परिणामपथ्यस्य पुण्यस्य जनकः । यत एवंविधो धर्मो तं धर्मं बुधाः—परमविवेकसम्पन्नास्तीर्थकरादयः, चिन्वते उपचयं नयन्ति मोक्षमार्गप्राप्त्यर्थं पुष्टमनुतिष्ठन्तीत्यर्थः । यतो धर्मेणैव समाप्यते—सम्यक्प्राप्यते शिवसुखं—मोक्षसुखं । तस्मै एवं विधाय धर्माय नमः । धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां—सुहृदुपकारको भवभृतां संसारिणां धर्मात्सकाशात्परोऽन्यो नास्ति । इत्थंभूतस्य धर्मस्य मूलं कारणं दया—करुणा निर्दयस्य धर्मलेशस्याप्यसंभवात् । एवंविधे च धर्मे प्रतिदिनमहं चित्तं दधे—धरामि तत्र दत्तावधानो भवामि । त्वयि चित्तं दधानं च मां हे धर्म ! पालय—संसारमहार्णवे पतन्तं रक्ष ॥ ७ ॥

इदानीं धर्मादीनां मंगलादीनां हेतुतया परममंगलत्वं प्ररूपयन्नाह धम्म इत्यादि—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ ८ ॥

टीका—धर्मः उक्तलक्षणः, मंगलं—मलं पापं गालयति विध्वंसयति वा मंगलं मंगं वा परमसुखं लाति आदत्त इति मंगलं, उक्किट्ठं—उत्कृष्टमनुपचरितं परमं । न केवलं धर्म एव मंगलमपि तु अहिंसा संयमस्तपश्च । न केवलं मलगालनहेतुरेवायमपि तु पूजादिहेतुरपि यतः देवा-वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो—देवा अपि तस्य प्रणमन्ति यस्य धर्मे सदा मनः ॥ ८ ॥

चतुर्विंशतितीर्थंकर-भक्तिः ।
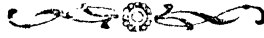
चउवीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वे सगणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ १ ॥

टीका—चउवीसमित्यादि । चउवीसं तित्थयरे—चतुर्विंशतितीर्थकरान् वन्दे । कथंभूतान् ? उसहाइवीरपच्छिमे—वृषभनाथ आदिर्येषां ते वृषभादयः वीरो वर्धमानस्वामी पश्चिमोऽन्त्यो येषां ते वीरपश्चिमाश्च तान् । सव्वे—सर्वान् वन्दे । तथा सगणगणहरे—सह गणेन वर्त्तन्त इति सगणास्ते च ते गणधराश्च ते तान् सर्वान् । सिद्धे—सिद्धांश्च शिरसा नमस्यामि—नमस्करोमि ।

तत्र चतुर्विंशतितीर्थकर्त्ता ये लोक इत्यादिना विशिष्टगुणोपेतत्वेन स्तुतिं कुर्वन्नाह—

ये लोकेष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवांतर्गता
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चंद्रार्कतेजोधिकाः ।
ये साध्विंद्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान्देवान्वृषभादिवीरचरमान्भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

टीका—ये—चतुर्विंशतितीर्थंकरदेवाः, लोके—लोकमध्ये, अष्टसहस्रलक्षणधराः । तथा ज्ञेयार्णवान्तर्गताः—ज्ञेयं लोकालोकलक्षणं तदेवार्णवः समुद्रः सामान्यप्राणिनाशक्यपर्यन्तगमनत्वात् तस्यान्तं पर्यन्तं गताः । तथा ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाः—भवानां जालं संघातो भवानां वा कारणभूतं जालं वेष्टनं कर्मबन्धस्तस्य हेतवो मिथ्यात्वादयस्तेषां सम्यङ्मथना यथा तेषां पुनराविर्भावो न भवति तथा तद्विध्वंसकारकाः । तथा चन्द्रार्कतेजोधिकाः—चन्द्रार्केभ्यस्तेजसाधिका उत्कृष्टाः, चन्द्रार्कयोर्हि तेजः प्रकाशो मूर्तव्यवहितवर्त्तमान-

नियतार्थप्रकाशकं तीर्थकृतां तु तेजो ज्ञानज्योतिर्मूर्तामूर्तव्यवहितेतर-त्रिकालगोचराखिलार्थप्रकाशकमिति । तथा ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यार्चिताः—साधूनामिन्द्रा गणधरादयोऽथवा साधवश्च गणधरादयः, इन्द्राश्च सुराश्चाप्सरसश्च साध्विन्द्रसुराप्सरसस्तासां गणाः संघातास्तेषां शतानि तैर्गीता उच्चारिता सा चासौ प्रणुतिश्च प्रकृष्टस्तुतिस्तयार्चिता वस्त्रकुसुमैः पूजिता इत्यर्थः ; गीतप्रनृत्यार्चिता इति पाठे गीतनृत्येभ्यः पश्चादर्चिता गीतनृत्यानि पूर्वं कृत्वा पश्चादर्चिता इत्यर्थः, अत्र साध्विती न्द्रादीनां विशेषणं साधवः समीचीना भव्यास्ते च ते इन्द्रादयश्च । तानित्थं भूतान् देवान्—आराध्यान् , वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ।

सामान्यतः स्तुतानपि तीर्थकरानिदानीं विशेषतो निजनिजनामोपेतान् स्तुवन्नाह नाभेयमित्यादि—

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगंधं
क्षान्तं दांतं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चंद्रनामानमीडे ॥ २ ॥

टीका—ईडे—स्तुवेऽहं । कं ? नाभेयं—वृषभनाथं नाभेः कुलकरस्यापत्यं नाभेयस्तं । कथंभूतं ? जिनवरं—देशजिनेभ्यो गणधरादिभ्य उत्कृष्टं । पुनरपि किंविशिष्टं ? देवपूज्यं—देवैरिन्द्रादिभिः पूज्यत इति देवपूज्यस्तं । तथा सर्वज्ञं—सर्वं जानातीति सर्वज्ञस्तं, अत एव सर्वलोकप्रदीपं—त्रैलोक्योद्योतकं । तथा अजितं एतद्विशेषणचतुष्टयविशिष्टमीडे। न जीयतेऽन्तरंगैर्बहिरंगैश्च शत्रुभिरित्यजितस्तं । तथा संभवाख्यं—सं सुखं भवत्यस्माद्भव्यानामिति संभवः सा आख्या नाम यस्यासौ संभवाख्यस्तं । किंविशिष्टं ? मुनिगणवृषभं—मुनीनां गणः समुदायस्तस्य वृषभं प्रधानं स्वामिनमित्यर्थः, तमीडे । तथा नन्दनं-अभिनन्दननामानं ।

कथंभूतं ? देवदेवं—देवानामिन्द्रादीनां देवो वन्द्य आराध्यो देवदेवस्तमीडे। तथा सुबुद्धिं—शोभना बुद्धिः केवलज्ञानं यस्यासौ सुबुद्धिः सुमतिस्तमीडे। किंविशिष्टं ? कर्मारिघ्नं—कर्मारातिविनाशकं। तथा वरकमलनिभः पद्मप्रभस्तमीडे। कथंभूतं ? पद्मपुष्पाभिगन्धं—पद्मपुष्पस्येव अभि समन्तात् सर्वत्र शरीरे गन्धो यस्य। तथा सुपार्श्वमीडे—शोभनौ शरीरौ उभयपार्श्वौ यस्यासौ सुपार्श्वस्तं। किंविशिष्टं ? क्षान्तं दान्तं—क्षान्तं सहिष्णु परमोपशान्तं दान्तं निर्जितेन्द्रियं। तथा चन्द्रनामानं—चन्द्रप्रभमीडे। कथंभूतं ? सकलशशिनिभं—सकलः परिपूर्णः स चासौ शशी च चन्द्रस्तेन निभं सकलकलापरिपूर्णत्वेनानन्दहेतुत्वेन धवलत्वेन मार्गप्रकाशकत्वेनार्थद्योतकत्वेन च सदृशम्।

विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं
श्रेयांसं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसेन्यं मुनीन्द्रं
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम्॥ ४॥

टीका—तथा पुष्पदन्तं स्तौमि। किंविशिष्टं ? विख्यातं—विशेषेण ख्यातं त्रिभुवने प्रसिद्धं, तथा भवभयमथनं—भवं भयं चातुर्गतिकदुःखत्रासस्तस्यात्मनो भव्यानां च सम्बन्धिनो मथनं स्फेटकं। तथा शीतलं स्तौमि। कथंभूतं ? लोकनाथं—त्रिभुवनस्वामिनं। तथा श्रेयांसं स्तौमि। किंविशिष्टं ? शीलकोशं—शीलानां कोशः करंडको निवेशस्थानं शीलानि वा कोशो भांडागारं यस्य तं, तथा प्रवरनरगुरुं—प्रवरनरश्चासौ गुरुश्च प्रवरनराणां वा गणधरचक्रवर्त्यादीनां गुरुस्तं। तथा वासुपूज्यं स्तौमि। कथंभूतं ? सुपूज्यं—सुष्ठु अतिशयेन पूज्यः शोभनैर्वा इन्द्रादिभिः पूज्यः सुपूज्यस्तं। पुनरपि किंविशिष्टं ? मुक्तं—घातिकर्मक्षयात्प्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपं। तथा दान्तेन्द्रियाश्वं—इन्द्रियाण्येवाश्वाः स्वविषये शीघ्रप्रवृत्तित्वात् दान्ता वशीकृता

इन्द्रियाश्वा येनासौ दान्तेन्द्रियाश्वस्तं । तथा विमलं स्तौमि विगतो विनष्टो मलो द्रव्यभावरूपः कलङ्को यस्यासौ विमलस्तं । कथंभूतं ? ऋषिपतिं—सप्तर्द्धिसमन्विता ऋषयो गणधरदेवादयस्तेषां पतिं स्वामिनं । तथा सैंहसेन्यं—अनन्ततीर्थकरदेवमीडे सिंहसेनो राजा तस्यापत्यं "सेनान्तलक्ष्मणकारिभ्य इञ्च[1] धोरिण्य" ध्यारेयुः (?) । तथा धर्मं—धर्मतीर्थकरदेवं स्तौमि । किंविशिष्टं ? सद्धर्मकेतुं—सद्धर्मः सम्यकचारित्रं उत्तमक्षमादि केतुश्चिह्नं यस्यासौ सद्धर्मकेतुस्तस्य वा केतुर्ज्ञापकः प्रकाशस्तं, तथा मुनीन्द्रं—गणधरादिमुनिस्वामिनं, अथवा मुनिः प्रत्यक्षवेदी स चासौ इन्द्रश्च गणधरादीनां स्वामी । तथा शान्तिं स्तौमि । कथंभूतं ? शमदमनिलयं-शमः परमोपशमो दम इन्द्रियजयस्तयोर्निलयमाश्रयं, तथा शरण्यं—कर्मारातिप्रभवचातुर्गतिकदुःखभयत्रस्तानां शरणे तद्दुःखत्रासपरिरक्षणे साधुः तम् ।

कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचंद्रं भवान्तं
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या ॥५॥

टीका—कुंथुं-कुन्थुं तीर्थकरदेवं शरणमहमितः-गतः, संसारार्णवावर्तदुस्सहदुःखभयत्रस्तोऽहं तद्दुःखापनोदार्थं कुंथुनाथमाश्रित इत्यर्थः । किंविशिष्टं ? सिद्धालयस्थं -सिद्धानां परापरसिद्धिस्वरूसंपन्नानां मुक्तात्मनामालयः समवसरणं मोक्षप्रदेशश्च तत्रस्थं, तथा श्रमणपतिं—गणधरादिपतिं स्वामिनं । तथा अरं—अरतीर्थकरदेवं शरणमहमितः । कथंभूतं ? त्यक्तभोगेषु चक्रं—भोगा एव इषवो बाणाः प्राणिनां मर्मवेधित्वात्पीडाकरत्वाच्च तेषां चक्रं संघातस्तं त्यक्तं येन, अथवा भोगाश्च इषवश्च चक्रं च चक्ररत्नं तानि त्यक्तानि येन तं । तथा मल्लिं—मल्लिनाथं शरणमहमितः । किंविशिष्टं ? विख्यातगोत्रं—विशेषेण ख्यातं

[1]—चशब्दात् "कुर्वादिण्यः" इतो ण्यः इत्यध्याहरेत्

सकललोकप्रसिद्धं गोत्रमिक्ष्वाकुलक्षणं यस्य तं, तथा खचरगणनुतं—खे आकाशे चरन्ति गच्छन्तीति खचरा देवा विद्याधराश्च तेषां गणाः संघातास्तैर्नुतं स्तुतं। तथा सुव्रतं शरणमहमितः—शोभनानि व्रतानि यस्य यस्माद्वा भव्यानामसौ सुव्रतस्तं। कथंभूतं? सौख्यराशिं—सौख्यानां राशिः संघातो यस्मिन् यस्माद्वा भव्यानामसौ सौख्यराशिस्तं, अनन्तसौख्यमयस्तत्सौख्यसम्पादको वेत्यर्थः। तथा नमीन्द्रं—नमिनाथं शरणमहमितः। किंविशिष्टं? देवेन्द्राच्र्यं—देवेन्द्रैरर्च्यत इति देवेन्द्राच्र्यस्तं। तथा नेमिचंद्रं शरणमहमितः—चन्द्र इव चंद्रो नेमिश्चासौ चन्द्रश्च यथा चन्द्रः सूर्यकरसन्तप्तानां सन्तापापनोदकः तमोनिकरनिराकारकः सन्मार्गप्रकाशकश्चेति, अतएव भवांतं—भवस्य संसारस्यान्तो विनाशो यस्मिन् यस्माद्वा भव्यानामसौ भवान्तस्तं, तथा हरिकुलतिलकं—हरेर्विष्णोः कुलं यादववंशस्तस्य तिलकं मण्डनीभूतं। तथा पार्श्वनाथं शरणमहमितः। कथंभूतं? नागेन्द्रवन्द्यं, धरणेन्द्रवन्द्यं, अथवा नागाश्च नागकुमारा इन्द्राश्च तैर्वन्द्यं। तथा वर्धमानं च नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितः। कया? भक्त्या—गुणानुरागविशेषेण। भक्त्येतये-तदन्त्यदीपकमीडे स्तौमि इत इत्येतेषां प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयम्।

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसअतिसयविसेससंजुत्ताणं, बत्तीसदेविंदमणिमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजइअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं, उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

———

शान्त्यष्टकम्

श्रीपादपूज्यस्वामी संजातचक्षुस्तिमिरादिव्याधिस्तद्विनाशार्थं श्रीशांतिनाथस्य न स्नेहादित्यादिस्तुतिमाह—

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन् ! पादद्वयं ते प्रजा
हेतुस्तत्र विचित्रदुःखनिचयः संसारघोरार्णवः ।
अत्यंतस्फुरदुग्ररश्मिनिकरव्याकीर्णभूमंडलो
ग्रैष्मः कारयतीन्दुपादसलिलच्छायानुरागं रविः ॥१॥

टीका—हे भगवन् ! ते पादद्वयं शरणं स्नेहात्प्रीतिवशान्न प्रजाः प्रयान्ति गच्छन्ति । किं तत्र तर्हि निमित्तमित्याह हेतुरित्यादि—तत्र पादद्वयशरणगमने हेतुर्निमित्तं संसारघोरार्णवः संसाररौद्रसमुद्रः । कथंभूतः ? विचित्रदुःखनिचयः विचित्राणि च तानि दुःखानि च तेषां निचयः संघातो यत्र । अत्रैवार्थे दृष्टांतमाह अत्यंतेत्यादि । रविः कारयति हेतुकर्ता भवति । कं ? इंदुपादसलिलच्छायानुरागं इंदुपादाश्चंद्रकिरणाः सलिलं च छाया च तत्र अनुरागं प्रीतिं । किंविशिष्टः रविः ? ग्रैष्मः ग्रीष्मे भवः । पुनरपि कथंभूत इत्याह अत्यन्तेत्यादि—अत्यन्तं स्फुरन्तो दीप्राः ते च ते उग्ररश्मयश्च तेषां निकरस्तेन व्याकीर्णं व्याप्तं भूमंडलं येन ॥ १ ॥

भवत्पादस्तुतेरैहिकमेव फलं दर्शयन्नाह—

क्रुद्धाशीविषदष्टदुर्जयविषज्वालावलीविक्रमो
विद्याभेषजमंत्रतोयहवनैर्याति प्रशांतिं यथा ।
तद्वत्ते चरणारुणांबुजयुगस्तोत्रोन्मुखानां नृणां
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यंत्यहो विस्मयः ॥२॥

टीका—क्रुद्धेत्यादि । आशीः सर्पदंष्ट्रा आश्यां विषं यस्यासा-वाशीविषः क्रुद्धश्चासावाशीविषश्च तेन दष्टे भक्षिते दुर्जयश्चासौ विषज्वालावलीविक्रमश्च, विक्रमः प्रसरः, सामर्थ्यं वा स यथा शान्तिं प्रकृष्टोपशमं याति । कैः कृत्वा ? विद्याभेषजमंत्रतोयहवनैः विद्या च मुद्रामंडलाद्यावर्तनं भेषजं चौषधं मंत्रश्च तोयं च हवनं होमश्च । तद्वत्तथा । सहसा झटिति । शाम्यंति । के ते ? विघ्नाः । न केवलं विघ्नाः । कायविनायकाश्च कायं विशेषेण नयंति अपनयंतीति कायविनायकाः रागाः । केषां ? नृणां । कथंभूतानां इत्याह ते इत्यादि—ते तव, चरणा-वेव अरुणं रक्तं अम्बुजयुगं तत्स्तोत्रोन्मुखानां स्तवनाभिमुखानां । अहो लोकाः विस्मयः आश्चर्यमेतत् । विषमात्रमुक्तप्रकारेण प्रयासेनोपशमं याति विघ्नादयः पुनर्भवत्पादद्वयस्तवनमात्रेणेति ॥ २ ॥

तथा भवत्प्रणामात्प्राणिनां किं भवन्तीत्याह—

संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते
पुंसां त्वच्चरणप्रणामकरणात्पीडाः प्रयान्ति क्षयं ।
उद्यद्भास्करविस्फुरत्करशतव्याघातनिष्कासिता
नानादेहिविलोचनद्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥३॥

टीका—संतप्तेत्यादि । संतप्तं च तदुत्तमकांचनं च तेन सदृशः क्षितिधरो मेरुस्तस्य । अथवा संतप्तोत्तमकांचनं च क्षितिधरश्च तयोः श्रीः शोभा तया या स्पर्द्धिनी सदृशी गौरी द्युतिर्यस्य तस्य संबोधनं संतप्तोत्तमकांचनक्षितिधरश्रीस्पर्द्धिगौरद्युते भगवन् ! त्वच्चरणप्रणाम-करणात् पुंसां पीडाः प्रयांति क्षयं । अत्रैवार्थे दृष्टांतमाह उद्यदित्यादि । यथा शर्वरी रात्रिः शीघ्रं क्षयं प्रयाति । किंविशिष्टा ? नानादेहिविलोचन-द्युतिहरा अनेकप्राणिचक्षुःप्रकाशप्रतिबंधिका । पुनरपि कथंभूतेत्याह उद्यदित्यादि—उद्यन्नुदयं गच्छंश्चासौ भास्करश्च तस्य विस्फुरंतश्च ते कराश्च तेषां शतानि तैर्व्याघातो दृढप्रहारः तेन निष्कासिता निस्सारिता॥३॥

त्वत्स्तुतिरेव च प्राणिनां अजरामरत्वहेतुरित्याह—

त्रैलोक्येश्वरभंगलब्धविजयादत्यंतरौद्रात्मका-
न्नानाजन्मशतांतरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्रदावानला-
न्न स्याच्चेत्तव पादपद्मयुगलस्तुत्यापगा वारणम् ॥४॥

टीका—त्रैलोक्येत्यादि । को वा प्रस्खलति क उद्ध्रियते । कस्मात्? कालोग्रदावानलात् काल एव उग्रः प्रचंडो दावानलः तस्मात् । कथंभूतात् ? अत्यंतरौद्रात्मकात्—अत्यंतरौद्रस्वरूपात् । पुनरपि किंविशिष्टादित्याह त्रैलोक्येत्यादि—त्रैलोकेश्वरा धरणेंद्रनरेंद्रसुरेन्द्राः तेषां भंगो विनाशः तस्माल्लब्धो विजयो येन तस्मात् । क्व लब्धतद्विजयात् ? नानाजन्मशतांतरेषु नानाप्रकाराणि च तानि जन्मशतांतराणि च तेषु । एवंविधात्कालोग्रदावानलात् । इह जगति । को वा न कोपि । केन विधिना केन प्रकारेण । न केनापि प्रस्खलति । चेत् यदि कालोग्रदावानलात्पुरतः संसारिणो जीवस्य वारणं निवारकं न स्यात् । किं तत् ? तव पादपद्मयुगलस्तुतिरेव आपगा नदी ॥ ४ ॥

तथा त्वत्पादस्तुतेर्यमकारणभूता रोगा नश्यंतीत्याह—

लोकालोकनिरंतरप्रविततज्ञानैकमूर्ते विभो
नानारत्नपिनद्धदंडरुचिरश्वेतातपत्रत्रय ।
त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामया
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदाद्वन्या यथा कुञ्जराः ॥५॥

टीका—लोकेत्यादि । लोकश्चालोकश्च तयोर्निरंतरं प्रविततं ग्राहकत्वेन प्रसृतं तच्च तज्ज्ञानं च तदेव एका अद्वितीया मूर्तिः स्वरूपं यस्य तस्य संबोधनं । तथा विभो इंद्रादीनां स्वामिन । नानेत्यादि—नानारत्नानि पिनद्धानि खचितानि यत्र स चासौ दंडश्च तेन रुचिरश्वेतातपत्रत्रयं यस्य । इत्थंभूत भगवान । शीघ्रं द्रवंति धावन्ति । के ते ? आमयाः

रोगः । कस्मात् ? त्वत्पादद्वयपूतगीतरवतः त्वत्पादद्वये पूतः पवित्रः स चासौ गीतरवश्च स्तुतिशब्दः । अत्रैवार्थे दृष्टांतमाह दर्पेत्यादि—वन्या आरण्याः कुञ्जरा यथा द्रवंति । कस्मान् ? दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीमनिनदात् दर्पेण आध्मात उल्लसितो मोटितो वा स चासौ मृगेन्द्रः सिंहः तस्य भीमनिनदात् रौद्रशब्दात् ॥ ५ ॥

तथा त्वत्पादस्तुतेर्मोक्षसौख्यावाप्तिरपि भवतीत्याह—

दिव्यस्त्रीनयनाभिराम विपुलश्रीमेरुचूडामणे
भास्वद्बालदिवाकरद्युतिहरप्राणीष्टभामंडल ।
अव्याबाधमचिंत्यसारमतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतम्
सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते ॥६॥

टीका—दिव्येत्यादि । दिव्यस्त्रीनयनाभिराम भगवन् । तथा विपुलश्रीमेरुचूडामणे । अथवा दिव्यस्त्री नयनभिरामश्चासौ विपुलश्रीमेरुश्च तस्य चूडामणे । भास्वदित्यादि—भास्वद्दीप्रः स चासौ बालदिवाकरश्च तस्य द्युतिहरं द्युत्युनुकारकं प्राणिनामिष्टं भामंडलं यस्य इत्थंभूत भगवन् । सौख्यं त्वच्चरणारविंदयुगलस्तुत्यैव संप्राप्यते । कथंभूतं सौख्यं ? अव्याबाधं । तथा अचिन्त्यसारं अचिन्त्यः सारो माहात्म्यं उत्कृष्टत्वं वा यस्य । अतुलं अनन्तं न विद्यते तुला इयत्तावधारणं यस्य । त्यक्तोपमं अनुपमं । शाश्वतं नित्यं ॥ ६ ॥

एवंविधं च सौख्यं निखिलपापापायात्प्राप्यते स च भगवत्पादप्रसादाद्भवति नान्यथेत्याह—

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयं—
स्तावद्धारयतीह पंकजवनं निद्रातिभारश्रमम् ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्न स्यात्प्रसादोदय—
स्तावज्जीवनिकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ॥७॥

टीका—यावदित्यादि । पंकजवनं पद्मसंघातः । इह जगति । तावत्कालं धारयति वहति । कं ? निद्रातिभारश्रमं निद्राया अधिका-

सस्य अतिभारश्रमं अतिगाढक्लेशं । यावन्नोदयते कोऽसौ श्रीभास्करः । किंविशिष्टः ? प्रभापरिकरः किरणनिकरपरिकरितः । किं कुर्वन् ? भासयन् स्वपरस्वरूपमुद्योतयन् । एवं हे भगवन् तावत्पापं अंहश्च वहति । प्रायेण अतिशयेन । कोऽसौ ? एष जीवनिकायः संसारिजीवसंघातः । यावत्प्रसादोदयः प्रसादप्रादुर्भावः न स्यात् । कस्य संबन्धी ? त्वच्चरणद्वयस्य । तस्मिन्प्रसादोदये सति निःशेषपापप्रक्षयात् मुक्त्युपपत्तेः ॥ ७ ॥

एतदेवाह—

शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र शांतमनसस्त्वत्पादपद्माश्रया—
त्संप्राप्ताः पृथिवीतलेषु बहवः शान्त्यार्थिनः प्राणिनः ।
कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो दृष्टिं प्रसन्नां कुरु
त्वत्पादद्वयदैवतस्य गदतः शांत्यष्टकं भक्तितः ॥८॥

टीका—शान्तिमित्यादि । हे शांतजिनेन्द्र ! शांतिं संप्राप्ताः । के ते ? बहवः प्राणिनः । कथंभूताः ? शान्त्यार्थिनः शांत्या परमकल्याणेन संसारोपरमेण वा अर्थिनः प्रयोजनवंतः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? शांतमनसः रागाद्यनुपहतचित्ताः । कस्मात्ते संप्राप्ताः ? त्वत्पादपद्माश्रयात् । क्व ? पृथिवीतलेषु न केवलं स्वर्गादौ । यत एवं ततः हे विभो । भाक्तिकस्य चेति चशब्दोऽप्यर्थे ममेत्यस्यानंतरं द्रष्टव्यः । भक्त्याचरतीति भाक्तिकस्तस्य ममापि कारुण्याद्दृष्टिं प्रसन्नां अनुग्रहपरां कुरु । अथवा मम दृष्टिं प्रसन्नां तिमिरदोषरहितां निर्मलां कुरु । कथंभूतस्य मम ? देवतैव दैवतं त्वत्पादद्वयं दैवतं यस्य । किं कुर्वतो मम दृष्टिं प्रसन्नां कुरु ? भक्तितो गदतो ब्रुवाणस्य । किं तत् ? शांत्यष्टकं अष्ट अवयवा अस्येत्यष्टकं 'संख्यायाः कोतिशत' इति कः । शांत्यर्थं अष्टकं शांतिनाथस्य वा स्तुतिरूपं अष्टकं शांत्यष्टकम् ॥ ८ ॥

———

शान्ति-भक्तिः।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रं।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रम् ॥ १ ॥

टीका—शांतिजिनमित्यादि। नौमि। कं? शांतिजिनं। कथंभूतं? शशिनिर्मलवक्त्रं। शशी पूर्णिमाचंद्रः तद्वन्निर्मलं वक्त्रं मुखं यस्य। शीलगुणव्रतसंयमपात्रं—शीलानि च गुणाश्च व्रतानि च संयमश्च तेषां पात्रं भाजनं। अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं—अष्टभिरधिकेन शतेन परिमितानि अर्चितानि पूज्यानि लक्षणानि गात्रे यस्य। जिनोत्तमं देशजिनेभ्य उत्कृष्टं। अंबुजनेत्रं पद्मपत्रविशालाक्षं॥ १ ॥

गृहस्थावस्थायां यत्यवस्थायां च कीदृशगुणसंपन्नं तमेत्याह—

पंचममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेंद्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥२॥

टीका—पंचममित्यादि—ईप्सितचक्रधराणां अभिमतद्वादशचक्रवर्तिनां मध्ये गृहस्थावस्थायां पंचमं चक्रवर्तिनम् शान्तिजिनं प्रणमामि। यत्यवस्थायां तु षोडशतीर्थंकरं। कथंभूतं? पूजितं। कैः? इंद्रनरेन्द्रगणैश्च इंद्रचक्रवर्तिसंघातैरपि। तथा शान्तिकरं अनन्तसुखप्राप्तिजनकं। तथा अभीप्सुं आप्तुमिच्छुं शान्तिजिनं। कां? गणशान्तिं—गणस्य चतुर्विधसंघस्य संबंधिनीं शान्तिं संसारोपरतिं रागाद्युपशमं वा। यदि वा अहं तां अभीप्सुः शान्तिजिनं प्रणमामि॥ २ ॥

अष्टमहाप्रातिहार्यैः शोभमानत्वं तस्य स्तुवन्नाह—

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः ॥३॥

तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥४॥

टीका—दिव्येत्यादि। यस्य शांतिजिनस्य। विभाति शोभते। कोसौ? दिव्यतरुः अशोकवृक्षः। सुरपुष्पसुवृष्टिः सुरैः कृता पुष्पाणां शोभना वृष्टिः। तथा दुंदुभिः। आसनयोजनघोषौ—आसनं सिंहासनं योजनघोषो योजनपरिमाणो दिव्यध्वनिः। आतपवारणचामरयुग्मे आतपवारणं छत्रत्रयं चामरयुग्मं चतुःषष्ठिचामरसंभवेप्युभयपार्श्ववर्ति-चामरेंद्रद्वयजात्यपेक्षया चामरयुग्माभिधानं। मंडलतेजः भामंडलप्रकाशः। तमित्थंभूतं शांतिजिनेन्द्रं। जगदर्चितं त्रिभुवनपूजितं। शांतिकरं शिरसा प्रणमामि। स च प्रणतः सन् यच्छतु। कां? शान्तिं अभ्युदयं। कस्मै? सर्वगणाय। तु पुनः। मह्यं च शांतिं परमां उत्कृष्टां परमनिर्वाण-लक्षणां। अरं अत्यर्थेन प्रयच्छतु। किंविशिष्टाय? पठते शांतिं जिनस्तुतिं कुर्वते॥ ३-४॥

इदानीं चतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यः शांतिमर्थयमानः स्तोता प्राह—

येभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपदपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपा—
स्तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु ॥५॥

टीका—ये इत्यादि। ते जिनाः सततं मे शांतिकराः भवंतु। कथंभूताः? ये अभ्यर्चिताः पूजिताः जन्माभिषेकादौ। कैः? शक्रादिभिः सुरगणैः। कैः कृत्वा? मुकुटकुंडलहाररत्नैः न केवलं तैस्तेऽभ्यर्चिताः अपि तु स्तुतपादपद्माः विशिष्टस्तोत्रैः स्तुतौ पादावेव पद्मौ येषां। पुन-रपि किंविशिष्टाः? प्रवरवंशजगत्प्रदीपा-प्रवरवंशाश्च ते जगत्प्रदीपाश्च। भूयाऽपि कथंभताः तीर्थंकराः आगमप्रवर्तकाः। तीर्थाधिपाः इति

पाठे तु तीर्थमागमं अधिपांति रक्षांति शब्दतीर्थतश्चोच्छिद्यमानं उद्धरंति इत्यर्थः ॥ ५ ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतींद्रसामान्यतपोधनानां ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवाञ्जिनेंद्रः ॥६॥

टीका—संपूजकानामित्यादि । शांतिं करोतु । कोऽसौ? जिनेन्द्रः । कथंभूतः ? भगवान् पूज्यो वा । केषां ? संपूजकानां जिनेन्द्रपूजाविधायकानां । प्रतिपालकानां चैत्यचैत्यालयधर्मादिरक्षकाणां । यतींद्रसामान्यतपोधनानां यतीन्द्राणामाचार्योपाध्यायसाधूनां, सामान्यतपोधनानां शैक्षकादीनां । तथा देशस्य विषयस्य । राष्ट्रस्य विषयैकदेशस्य । पुरस्य । राज्ञो देशादीनां स्वामिनः ॥ ६ ॥

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्षं चोरिमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

टीका—क्षेममित्यादि । क्षेमं कुशलं प्रभवतु । कासां ? सर्वप्रजानां तथा बलवान् भूमिपालो धार्मिकः प्रभवतु । काले काले उचितसमये मघवा च इंद्रो वर्षतु । इन्द्रो वै वर्षतीति अभिधानात् । व्याधयो रोगा यान्तु नाशं । दुर्भिक्षो दुष्कालः । चोरीश्च, मारिश्च अपरिपूर्णकाले शस्त्रादिभिरायुपस्त्रुटिः । जगतां क्षणमपि मा स्म भूत् मैवाभूत । जैनेन्द्रं जिनेन्द्रस्येदं धर्मचक्रं उत्तमक्षमादिधर्मसंघातः प्रभवतु अस्खलितरूपं प्रवर्ततां । सततं सर्वदा । क ? जीवलोके । किंविशिष्टं ? सर्वसौख्यप्रदायि सर्वेषां सौख्यं प्रददाति इत्येवंशीलं अथवा सर्वं परिपूर्णं तच्च तत्सौख्यं च अनंतसौख्यं तत्प्रदायि ॥ ७ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते संतिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं, चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं, बत्तीसदेवेंदमणिमउडमत्थयमहियाणं, बलदेववासुदेवचक्कहररिसिमुणिजदिअणगारोवगूढाणं, थुइसयसहस्सणिलयाणं, उसहाइवीरपच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

चैत्यभक्तिः[1]।

श्रीवर्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी जयतीत्यादिस्तुतिमाह—

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भिता—
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः॥१॥

टीका—जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कोऽसौ? भगवान् इंद्रादीनां पूज्यः केवलज्ञानसंपन्नो वा। कथंभूतोऽसौ? यस्य पादौ प्रपद्य प्राप्य। विशश्वसुः विश्वासं गताः। के ते? परस्परवैरिणः अहिनकुलादयः। कथंभूताः? कलुषहृदयाः क्रूरमनसः। मानोद्भ्रान्ताः माननाहंकारेण स्तब्धत्वेन

१—शान्त्यष्टकशान्तिभक्त्योः टीकाद्वयं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितमेव, तच्च तत्क्रियाकलापस्य तृतीयाध्यायात् निष्कासितम्।

उद्भ्रांताः यथावदात्मस्वरूपात्प्रच्याविताः। ते कथंभूताः सन्तो विशश्वसुः? विगतकलुषाः विनष्टक्रूरभावाः। किंविशिष्टौ पादौ? हेमाम्भोजप्रचार-विजृम्भितौ हेमाम्भोजेषु सुवर्णमयपद्मेषु प्रचारः प्रकृष्टोऽन्यजनासंभवी चरणक्रमसंचाररहितश्चारो गमनं तेन विजृम्भितौ विलसितौ शोभितौ तेषां वा प्रचारो रचना 'पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त' इत्येवंरूपः तत्र विजृम्भितौ प्रवृत्तौ विलसितौ वा। पुनरपि किंविशिष्टौ तावित्याह अमरेत्यादि—अमरा देवाः तेषां मुकुटानि तेषु छाया छायामणयः तत उद्गीर्णा निःसृता सा चासौ प्रभा च तया परिचुंबितौ संश्लिष्टौ आलिंगितौ ॥ १ ॥

> तदनु जयति श्रेयान्धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
> कुगतिविपथक्लेशाद्योसौ विपाशयति प्रजाः।
> परिणतनयस्यांगीभावाद्विविक्तविकल्पितं
> भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम् ॥२॥

टीका—तदन्वित्यादि। तस्माद्भगवत्संस्कारादनु पश्चात्। जयति। कोसौ? धर्मो नरकादिषु गतिषु पततः प्राणिनो धरतीति धर्म उत्तम-क्षमादिलक्षणश्चारित्रस्वरूपो वा। कथंभूतः? श्रेयान् अतिशयेन प्रशस्यः। पुनरपि कथंभूतः? प्रवृद्धमहोदयः प्रकर्षेण वृद्धो वृद्धिं गतो महान् उदयः स्वर्गादिपदप्राप्तिर्यस्मात्प्राणिनां। पुनरपि कथंभूतः? योसौ धर्मः। प्रजाः लोकान्। विपाशयति पाशाद्विमोचयति। कथंभूतात्पाशादि-त्याह कुगतीत्यादि—कुत्सिता गतिः कुगतिः, विरूपकः पंथाः विपथो मिथ्यादर्शनादिः, क्लेशो दुःखं, कुगतिश्च विपथश्च क्लेशश्च तत्तस्मात्तद्रू-पादित्यर्थः। पूर्वार्धेन धर्मं नमस्कृत्योत्तरार्द्धेन जैनेन्द्रं वचो नमस्कुर्वन्नाह परिणतेत्यादि—विविधपर्यायरूपतया परिणमते यत्तत्परिणतं द्रव्यमुच्यते तत्र नयः परिणतनयो द्रव्यार्थिकनयः तस्य अंगीभावात् अप्रधानभावात् पर्यायार्थिकनयप्राधान्यादित्यर्थः। अथवा परिणतं परिणामस्तत्र नयः

पर्यायार्थिकः तस्यांगीभावात्स्वीकारात् । विविक्तैर्गणधरदेवादिभिः विविक्तं वा विभिन्नं विकल्पितं अंगपूर्वादिभेदेन रचितं। यदि वा, विविक्तं विशुद्धं पूर्वापरविरोधदोषविवर्जितं यथाभवत्येव विकल्पितं रचितं। कथंभूतं तदस्त्वित्याह भवत इत्यादि। भवतः संसारात् । त्रात् रक्षकं। भवतु संपद्यतां। कथं तद्व्यवस्थितमित्याह त्रेधेत्यादि। त्रेधा उत्पादव्ययध्रौव्यरूपैः अंगपूर्वाङ्गबाह्यरूपैर्वा त्रिभिः प्रकारैर्व्यवस्थितं यत् जिनेन्द्रवचोऽमृतं जिनेन्द्रवच एव अमृतं अमृतमिव अमृतं आप्यायकत्वात्। यथैव हि प्राणिनां देहदुःखापनेतृत्वेन अमृतं आप्यायकं तथा नारकादिमहादुःखपीडितानां तेषां तदपनेतृत्वेन आप्यायकत्वात्तद्वचोऽमृतमुच्यते ॥ २ ॥

भगवदद्वचः स्तुत्वा ज्ञानं स्तोतुं तदन्वित्याद्याह—

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी ।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम् ॥३॥

टीका—तदनु तस्माज्जिनेंद्रवचननमस्कारादनु पश्चात्। जिनस्येयं जैनी। वित्तिः केवलज्ञानं। जयतात् मत्यादिज्ञानेभ्यः सर्वोत्कर्षेण वर्द्धतां। कथंभूतेत्याह प्रभंगेत्यादि । प्रभंगतरंगिणी प्रकृष्टाः प्रवृद्धाः वा भंगाः स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादयः त एव तरंगाः कल्लोलास्ते विद्यंते यस्यां। ते हि सकलवस्तुगता ग्राह्यत्वेन तत्र वर्तंते, स्वरूपगतास्तु तादात्म्येनेति। पुनरपि कथंभूतेत्याह प्रभवेत्यादि । प्रभव उत्पादो विगमो विनाशो ध्रौव्यं स्थैर्यं तान्येव द्रव्याणां स्वभावाः तान्विभावयति प्रकाशयति इत्येवंशीला। इदं भगवदादिचतुष्टयं संस्तुतं सत्किं कुर्यादित्याह देयादित्यादि। देयात्कं ? मोक्षं। किं कृत्वा ? विघट्य। किं तत् ? द्वारं। कस्य ? निरुपमसुखस्य उपमायाः निष्क्रांतं निरुपमं तच्च तत्सुखं च अनंतसुखं तस्य यद्द्वारं पिधायकं कपाटसंपुटस्थानीयं मोहनीयं कर्म तद्विघट्य वियोज्य। कथं विघट्य ? निरर्गलं अर्गला अन्तरायः तस्याः निष्क्रांतं

यथा भवत्येवं विघट्य । विघटितमपि हि द्वारं अर्गलासद्भावे नेष्टप्रदेशे प्रवेष्टुं प्रयच्छति । कथंभूतं मोक्षं ? विगतरजसं रजो ज्ञानदृगावरणे सकलकर्माणि वा, विगतं विनष्टं रजो यत्र । निरत्ययं अत्ययो व्याधिः जरामरणे वा ततो निष्क्रांतं । अव्ययं अविनश्वरं ॥ ३ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः ।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥ ४ ॥

टीका—अर्हत्सिद्धेत्यादि । अर्हन्तश्च सिद्धाश्च आचार्याश्च उपाध्यायाश्च तेभ्यो नमोस्तु नमस्कारो भवतु । तथा च तथैव साधुभ्यो नमोस्तु । कथंभूतेभ्यः ? सर्वजगद्वंद्येभ्यः सर्वाणि च तानि जगन्ति च त्रयो लोकास्तेषां वंद्याः तेभ्यः । किं नियते क्षेत्रे नियतेभ्यः इत्याह सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥ ४ ॥

पंचपरमेष्ठिनः सामान्येन नमस्कृत्य मोहादीत्यादिना अर्हतः पुनर्विशेषतः नमस्करोति, तेषां धर्मोपदेष्टृत्वेनोपकारकरत्वात्—

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः ।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥ ५ ॥

टीका—मोहो मोहनीयं स आदिर्येषां क्षुधादीनां ते च ते सर्वे दोषाश्च त एवारयोऽरिकार्यकारित्वात् । यथैव ह्यरयो दुःखदा एवमेतेऽपि । तेषां घातकेभ्यः । सदाहतरजोभ्यः सदा सर्वकालं हते विनाशिते रजसी ज्ञानदृगावरणे यैः । विरहितरहस्कृतेभ्यः रहस्कृतमंतरायो विरहितं स्फेटितं रहस्कृतं यैः । पूजार्हेभ्य इन्द्राद्युपनीतां अतिशयवतीं पूजामर्हन्तीति पूजार्हास्तेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥ ५ ॥

एवमर्हतो वंदित्वा तद्धर्मं वंदमानः क्षान्त्यार्जवादीत्याद्याह—

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं ।
शुभधामनि धातारं वंदे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ॥ ६ ॥

टीका—जिनेन्द्रोक्तं जिनेन्द्रप्रतिपादितं धर्मं उत्तमक्षमादिलक्षणं चारित्ररूपं वा वंदे। कथंभूतमित्याह क्षान्तीत्यादि। क्षान्तिः क्षमा, आर्जवमवक्रता ते आदिर्येषां। आदिशब्देन मार्दवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि गृह्यन्ते। ते च ते गुणाश्च तेषां गणः समूहः सुशोभनं साधनं यस्य स तथोक्तस्तं । ननु चारित्रलक्षणधर्मस्य क्षान्त्यादिसुसाधनत्वं युक्तं न पुनरुत्तमक्षमादिलक्षणं तस्यैव तद्धेतुत्वविरोधात् इति चेत् न द्रव्यरूपाणां तेषां भावरूपक्षमादिहेतुत्वे भावरूपाणां च द्रव्यरूपक्षमादिहेतुत्वे विरोधासंभवात्। पुनरपि कथंभूतं ? सकललोकहितहेतुं सकलाश्च ते लोकाश्च प्राणिनः तेभ्यो हितं सुखं तद्धेतुश्च तस्य हेतुस्तं । शुभधामनि धातारं शुभं च तद्धाम च निर्वाणं तत्र धातारं स्थापयितारं ॥ ६ ॥

एवं जिनेन्द्रोक्तं धर्मं स्तुत्वा तद्वचनं स्तोतुमाह—

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगि ।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वंदे ॥ ७ ॥

टीका—मिथ्याज्ञानेत्यादि। मिथ्याज्ञानं विपरीतज्ञानं तदेव तमः तेन वृतः प्रच्छादितः स चासौ लोकश्च तस्यैकं अद्वितीयं ज्योतिः जीवाद्यशेषतत्त्वप्रकाशकत्वात् । अमितगमयोगि अमितोऽपरिमितः असंख्यातः स चासौ गमश्च अशेषार्थविषयं श्रुतज्ञानं तेन योगः संबंधः कार्यकारणभावलक्षणः श्रुतस्य तज्जनकत्वात् । यदि वा अमितगमोऽनंतावबोधः केवलज्ञानं तेन योगः तस्य तज्जन्यत्वात् सोऽस्यास्तीति तद्योगि। सांगोपांगं, अंगानि आचारादीनि उपांगानि पूर्ववस्तुप्रभृतीनि सह तैर्वर्तते इति सांगोपांगं। न जीयते एकान्तवादिभिरिति अजेयम्। शक्यार्थस्य अविवक्षितत्वादजय्यमिति न भवति। तदेवंविधं जैनं वचनं सदा वंदे जिनस्येदं जैनमित्यनेनेश्वरादिवचनव्यवच्छेदः । सदा इत्यनेन नियतकालविषयस्तुतिव्युदासः ॥ ७ ॥

भगवद्वचः स्तुत्वा तत्प्रतिमास्तद्वचनात्प्रसिद्धाः स्तोतुमाह—

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवंदितानां वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ॥ ८ ॥

टीका-भवनेत्यादि। भवनानि च विमानानि च ज्योतिषश्च व्यंतराश्च नराश्च ज्योतिर्व्यन्तरनरास्तेषां लोका निवासस्थानानि। भवनविमानानि च ज्योतिर्व्यन्तरनरलोकाश्च तेषां विश्वचैत्यानि सर्वप्रतिमाः। केषां? जिनेंद्राणां। कथंभूतानां? त्रिजगदभिवंदितानां त्रिलोकाभिस्तुतानां। त्रेधा मनोवाक्कायैः वंदे ॥ ८ ॥

एवं चैत्यानि अभिनुत्य चैत्यालयानभिनवितुं भुवनत्रयेत्याद्याह—

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तॄणां।
वंदे भवाग्निशान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः ॥ ९ ॥

टीका--आलयालीर्वंदे। क याः? भुवनत्रयेपि। अपिः आलयालीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः। न केवलं चैत्यानि किं त्वालयालीरपि वंदे। केषां? भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तॄणां भुवनानां त्रयं तस्याधिपाः स्वामिनः देवेन्द्रनरेन्द्रधरणेन्द्रास्तैरभ्यर्च्याः पूज्यास्ते च ते तीर्थकराश्च तेषां। विभवानां विनष्टसंसाराणां। आलयानां जिनगृहाणां आल्यः पंक्तयः। ता भुवनत्रयसंबंधित्वेन प्रसिद्धाः। किमर्थं वंदे? भवाग्निशान्त्यै भवः संसारः स एवाग्निः बहुप्रकारदुःखसंतापहेतुत्वात्। तस्य शान्तिः शमनं विध्यापनं विनाशस्तस्यै ॥ ९ ॥

इतीत्यादिना स्तुतार्थमुपसंहृत्य स्तोता स्तुतेः फलं याचते—

इति पंचमहापुरुषाः प्रणुता जिनधर्मवचनचैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टाम् ॥ १० ॥

टीका—इति एवमुक्तप्रकारेण पंचमहापुरुषाः पंचपरमेष्ठिनः। प्रणुताः स्तुताः। न केवलमेते, जिनधर्मवचनचैत्यानि

चैत्यालयाश्च। ते सर्वे प्रणुताः संतः किं कुर्वन्तु? दिशन्तु प्रयच्छंतु। कां? बोधिं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्राप्तिं। किंविशिष्टां? विमलां निर्मलां क्षायिकीं। पुनरपि किंविशिष्टां? बुधजनेष्टां बुधजना गणधरदेवादयस्तेषामिष्टामभिप्रेताम्॥ १०॥

इदानीं कृत्रिमाकृत्रिमधर्मोपेततया जिनप्रतिमाः स्तोतुमकृतानीत्याद्याह--

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमंति द्युतिमत्सु मंदिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिंबानि जगत्त्रये जिनानाम्॥११

टीका--वंदे। कानि? प्रतिबिंबानि। केषां? जिनानां अर्हतां। क्व? जगत्त्रये त्रिभुवने। द्युतिमत्सु मंदिरेषु प्रचुरप्रभासमन्वितचैत्यालयेषु स्थितानि। कथंभूतानि? अकृतानि बुद्धिमन्निमित्तव्यापाराजन्यानि। कृतानि च तद्व्यापारजन्यानि च। अप्रमेयद्युतिमंति प्रचुरतरप्रभायुक्तानि। मनुजामरपूजितानि इन्द्रचक्रवर्त्यादिलोकपूजितानि॥ ११॥

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्रांजलिरस्मि वंदमानः॥१२॥

टीका--द्युतिमंडलेत्यादि। प्रांजलिः प्रबद्धांजलिः अस्मि भवामि। किं कुर्वाणो? वंदमानः। काः? प्रतिमाः। किंविशिष्टाः? अप्रतिमाः अनुपमाः। केन? वपुषा तेजसा स्वरूपेण वा। पुनरपि कथंभूताः? द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः द्युतिमंडलं प्रभामंडलं तेन भासुरा दीप्ताः अंगयष्टिः यासां यष्टिरिव यष्टिः संसारमहार्णवे पततामवष्टंभहेतुत्वादंगमेव यष्टिः। भुवनेषु त्रिषु प्रवृत्ताः प्रसृताः जिनोत्तमानां अर्हतां। किमर्थं ता वंदमानः प्रांजलिरस्मि? विभूतये अर्हदादिविशिष्टपदप्राप्तये अथवा उत्कृष्टपुरुषार्थवती विशिष्टा भूतिः विशिष्टेषु वरप्रदेशेषु भूतिः प्रादुर्भावो यस्याः सा। कासौ? विभूतिः पुण्यावाप्तिस्तस्यै॥ १२॥

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणां ।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवंदे ॥१३॥

टीका—विगतायुधेत्यादि । अभिवंदे अभिमुखीभूय स्तुवे । काः ? प्रतिमाः । किंविशिष्टाः ? अप्रतिमाः अतुल्याः । कया ? कान्त्या । क्व व्यवस्थिताः ? प्रतिमागृहेषु चैत्यालयेषु । पुनरपि कथंभूताः ? विगतायुधविक्रियाविभूषाः आयुधं प्रहरणं, विक्रिया विकारः, विविधा विशिष्टा वा भूषा अलंकारो विगता एता यासु । इत्थंभूताश्च ताः प्रकृतिस्थाः स्वरूपस्थाः । केषां प्रतिमाः ? जिनेश्वराणां । किंविशिष्टानां ? कृतिनां कृतं पुण्यं शुभायुर्नामगात्रलक्षणं विद्यते येषां ते कृतिनः तेषां । किमर्थं अभिवंदे ? कल्मषशान्तये कल्मषं पापं तस्य शान्तये विनाशाय ॥ १३ ॥

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शांततया भवान्तकानाम् ।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥

टीका—कथयंतीत्यादि । प्रणमामि । कानि ? प्रतिरूपाणि प्रतिबिंबानि । कथंभूतानि ? अभिरूपमूर्तिमन्ति अभि समंताद् रूपं यस्याः सा चासौ मूर्तिश्च स्वरूपं सा विद्यते येषां । पुनरपि कथंभूतानि ? कथयन्ति सन्ति । कां ? कषायमुक्तिलक्ष्मीं कषायाणां मुक्तिरभावः तस्याः लक्ष्मीः संपत्तिः तस्यां वा सत्यां लक्ष्मीरन्तरंगा बहिरंगा च विभूतिः । कया ? परया शांततया परमोपशांतमूर्त्या । केषां प्रतिरूपाणि ? जिनानां । किंविशिष्टानां ? भवान्तकानां ? भवः संसारः तस्य अंतका विनाशकाः । किमर्थं प्रणमामि ? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय ॥ १४ ॥

यदिदमित्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयते—

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥१५॥

टीका—यत्सुकृतं पुण्यं सिद्धभक्तिनीतमिदं सिद्धानां जगत्त्रये प्रसिद्धानां अर्हत्प्रतिबिंबानां भक्तिस्तस्या नीतं प्रापितं उपढौकितं मम। कथंभूतं ? दुष्कृतवर्त्मरोधि दुष्कृतं पापं तस्य वर्त्मा मार्गोऽप्रशस्तमनोवाक्कायलक्षणः तद्रुणद्धीत्येवंशीलं। तेन सुकृतेन। पटुना समर्थेन। भक्तिः। स्थिरा अविचला। मे जिनधर्म एव भवताद्भवतु। कदा ? जन्मनि जन्मनि भवे भवे ॥१५॥

चतुर्णिकायामरसम्बन्धित्वेन तिर्यग्लोकसंबंधित्वेन च जिनचैत्यस्तवनार्थं अर्हतामित्याद्याह—

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसंपदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१६॥

टीका—कीर्तयिष्यामि स्तोष्ये। कानि ? चैत्यानि प्रतिबिंबानि। केषां ? अर्हतां। किंविशिष्टानां ? सर्वभावानां सर्वे निःशेषा भावाः पदार्थाः विषया येषां। अथवा सर्वः परिपूर्णो भावश्चारित्रपरिणामः परमौदासीन्यलक्षणः येषां। पुनरपि कथंभूतानां ? दर्शनज्ञानसंपदां दर्शनज्ञानयोः क्षायिकरूपयोः संपद्येषां तयोर्वा सतोः संपत्समवसरणादिविभूतिर्येषां। कथं तानि कीर्तयिष्यामि ? यथाबुद्धि स्वमतिविभवानतिक्रमेण। किमर्थं ? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय ॥१६॥

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥१७॥

टीका—श्रीमदित्यादि॥ विधेयासुः क्रियासुः। काः ? प्रतिमाः। कां ? परमां गतिं मुक्तिं। नोऽस्माकं। किंविशिष्टाः ? वंदिताः सत्यः। पुनरपि किंविशिष्टाः ? श्रीमद्भावनवासस्थाः भवनेषु भवा भावनाः देवाः तेषां

वासाः श्रीमंतश्च ते भावनवासाश्च तत्र तिष्ठंति इति तत्स्थाः। स्वयं-भासुरमूर्तयः स्वयं स्वभावेन भासुरा दीप्ता मूर्तिः स्वरूपं यासां ॥ १७ ॥

यावंति संति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वंदे भूयांसि भूतये ॥१८॥

टीका—यावन्तीत्यादि। यावंति यत्परिमाणानि। संति विद्यंते। लोकेऽस्मिन् तिर्यग्लोकेऽकृतानि कृतानि च। तानि भूयांसि प्रचुर-तराणि चैत्यानि सर्वाणि वंदे। भूतये विभूत्यर्थं ॥ १८ ॥

ये व्यंतरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः संतु नो दोषविच्छिदे ॥१९॥

टीका—ये व्यंतरेत्यादि। ये प्रतिमागृहाः प्रतिमाश्च गृहाश्च प्रति-मानां वा गृहाः स्थेयांसोऽतिशयेन स्थिराः सर्वदावस्थायिनः। क्व? व्यंतर-विमानेषु—व्यंतरान् विशेषेण मानयन्तीति व्यंतरविमानानि व्यंतर-निवासास्तेषु। ते च तेऽपि संख्यामतिक्रान्ताः असंख्याताः। सन्तु भवन्तु। नोऽस्माकं। दोषशान्तये रागाद्युपशमाय ॥ १९ ॥

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसंपदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ॥२०॥

टीका—ज्योतिषामित्यादि। अथ व्यंतरविमानसंबंधिप्रतिमागृहस्त-वनानन्तरं ज्योतिषां लोकस्य संबंधिषु विमानेषु ये गृहा सन्ति। कस्य? स्वयंभुवोऽर्हतः। कथंभूताः? अद्भुतसंपदः अद्भुता आश्चर्यावहा संप-द्विभूतिर्येषां। नमामि तान्। किमर्थं? विभूतये विभूतिनिमित्तं ॥ २० ॥

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमैरेव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये ॥२१॥

टीका—वन्दे इत्यादि। वंदे। काः? तदर्चाः ताश्च ता वैमानिकदेवसंबं-धिन्यः अर्चाश्च प्रतिमाः। किं कुर्वन्ति? याः सेवन्ते। किं तत्? सुरतिरीटाग्र-मणिच्छायाभिषेचनम्-सुरा वैमानिका देवा इह गृह्यन्ते ततोऽन्येषां प्रागेवोक्त-

त्वात् तेषां तिरीटानि त्रिशिखरमुकुटानि तेषां अग्राणि तत्र मणयः । यदि वा अग्राः प्रधानभूताः ते च ते मणयश्च तेषां छाया दीप्तयः ताभिरभिषेचनं स्नपनं । कैः ? क्रमैरेव चरणैरेव । सर्वदा ते तत्पादेषु प्रणतोत्तमांगा इत्यर्थः । किमर्थं वंदे ? सिद्धिलब्धये मुक्तिप्राप्तये ॥ २१ ॥

इतीत्यादिना स्तुतेः स्तोता फलं प्रार्थयते—

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी ॥ २२ ॥

टीका - इत्येवमुक्तप्रकारेण यासौ संकीर्तिः संकीर्तनं स्तुतिः । केषां ? चैत्यानां । केषां संबंधिनां चैत्यानां ? अर्हतां । किंविशिष्टानां ? स्तुतिपथातीतश्रीभृतां स्तुतेः पंथा मार्गः तमतीता सा चासौ श्रीश्च इन्द्रादिभिरपि या स्तोतुमशक्या अंतरंगा बहिरंगा च श्रीः तां बिभ्रति ये तेषां संकीर्तिः । मम सर्वास्रवनिरोधिनी अस्तु मुक्तिप्रदा भवत्वित्यर्थः ॥ २२ ॥

स्कंदछन्दः

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित—
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम् ॥ २३ ॥

टीका—अर्हन्महानदस्येत्यादि । उत्तमतीर्थं दुरितं व्यपहरतु इति संबंधः । कस्य तीर्थं ? अर्हन्महानदस्य—महांश्चासौ नदश्च महानदः अर्हन्नेव महानदोऽर्हन्महानदः तस्य । पूर्वप्रवृत्तसरित्प्रवाहविपरीतप्रवाहो हि नदो भवति अर्हन्नपि पूर्वप्रवृत्तसंसारसरित्प्रवाहविपरीतप्रवाहत्वान्नद इत्युच्यते । भगवता च नदेन तुल्योऽन्यो नदो न संभवति ततो विशिष्टगुणोपेतत्वादिति महानद इत्युच्यते । तदेवास्य ततो विशिष्टगुणोपेतत्वं तत्तीर्थस्येतरतीर्थाद्विशिष्टत्वप्रदर्शनद्वारेण दर्शयति उत्तमतीर्थं— तीर्यते संसारसरिद्येन तत्तीर्थं द्वादशांगचतुर्दशपूर्वांगलक्षणं भगवतो मतं, उत्तममसाधारणं तच्च तत्तीर्थं च । कथमस्योत्तमत्वमिति चेत् अतिलौकिककुहकतीर्थं यतः, लोके भवं लौकिकं आश्चर्यप्रधानं दंभप्रधानं

च कुहकतीर्थं अतिक्रान्तं लौकिकं कुहकतीर्थं येन । यत्तीर्थं भवति तत्तीर्थं यात्रिकाणां पृथ्वीतलवर्तिनां कतिपयानां किल दुरितस्य शरीरमलस्य च प्रक्षालनकारणं भवति इदं त्वर्हन्महानदस्योत्तमतीर्थं त्रिभुवनवर्तिनां भव्यजनानां तीर्थयात्रिकाणां दुरितस्य पापकर्मणः प्रक्षालने स्फेटने एकमद्वितीयं कारणं ॥ २३ ॥

ननु तीर्थः प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो भवति स चात्र न भविष्यतीत्याह—

लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान—
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम् ॥ २४ ॥

टीका—लोकालोकेत्यादि। लोकश्च अलोकश्च तयोः शोभनं तत्त्वं स्वरूपं शोभनानि वा तत्त्वानि जीवादीनि तस्य तेषां वा प्रति समन्तात् प्रत्येकं वा अवबोधनं परिच्छित्तिः तत्र समर्थानि च तानि दिव्यज्ञानानि च केवलज्ञानानि मत्यादिसम्यग्ज्ञानानि वा तान्येव प्रत्यहं प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो यत्र । तर्हि कूलद्वयं तीर्थे भवति तदत्र न भविष्यतीत्याह व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयं—व्रतानि पंच शीलानि अष्टादशसहस्रसंख्यानि तान्येव अमलं निर्दोषं विशालं विस्तीर्णं कूलद्वितयं तटद्वयं यस्य ॥ २४ ॥

ननु तीर्थं राजहंसैर्मनोज्ञघोषेण सिकतासमूहेन च शोभां बिभर्ति न चेदं तथा भविष्यतीत्याह—

शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत् ।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्तिसिकतासुभगम् ॥ २५ ॥

टीका—शुक्लध्यानेत्यादि—शुक्लध्यानान्येव स्तिमितं स्थिरं यथाभवत्येवं स्थिता राजन्तः शोभमानाः राजहंसा गणधरदेवादयस्तैः राजितं शोभितं । असकृत् सर्वदा । स्वाध्यायमंद्रघोषं शोभनो लाभपूजाख्यातिवर्जितः आध्यायः पाठः स्वाध्यायः स एव मंद्रो मनोज्ञो घोषो नादो यत्र । नानागुणाश्चतुरशीतिलक्षगुणास्ते च समितयश्च पंच गुप्तयश्च तिस्रः ता एव सिकतास्ताभिः सुभगं मनोज्ञम् ॥ २५ ॥

अथोच्यते तीर्थमावर्तपुष्पितलतातरंगोपेतं भवति तदुपेतत्वं चात्र न भविष्यतीत्याह—

क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लतिकम् ।
दुःसहपरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ॥ २६ ॥

टीका—क्षान्त्यावर्तेत्यादि । क्षांतयः क्षमाः सहिष्णुतास्ता एव आवर्तसहस्राणि यत्र। सर्वदयाविकचकुसुमविलसल्लतिकं—सर्वेषु प्राणिषु दया सर्वदया सैव विकचकुसुमविलसल्लतिका यत्र । विकचानि विकसितानि च तानि कुसुमानि च तैर्विलसन्त्यश्च ताः लतिकाश्च । दुःसहपरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरं—दुःखेन महता कष्टेन सह्यन्ते इति दुःसहाः ते च ते परीषहाख्याश्च परीषह इत्याख्या संज्ञा येषां क्षुत्पिपासादीनां त एव द्रुततराः शीघ्रतरा रंगत्तरंगा रंगन्तस्तिर्यक्प्रसरन्तस्ते च ते तरंगाश्च तेषां भंगुरो विनश्वरो निकरः संघातो यत्र ॥ २६ ॥

ननु फेनशैवलकर्दममकरविवर्जितं तीर्थं भवति सेव्यं, इदं च तद्विवर्जितं न भविष्यतीत्याह—

व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोषशैवलरहितं ।
अत्यस्तमोहकर्दममतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् ॥२७॥

टीका—व्यपगतेत्यादि—व्यपगतकषायफेनं कषाया एव फेनः स्वच्छात्मस्वरूपस्य कालुष्यहेतुत्वात् विशेषेण अपगतो नष्टः स यत्र यस्माद्वा । रागद्वेषादिदोषशैवलरहितं रागद्वेषौ आदिर्येषां मोहादीनां ते च ते दोषाश्च त एव शैवलो व्रतिनां पातनहेतुत्वात् स्वच्छात्मस्वरूपजलस्य कालुष्यकारणत्वाच्च, तै रहितं । अत्यस्तमोहकर्दमं—अत्यस्तो मोह एवकर्दमः स्वपरपरिच्छेदकस्य जीवस्वरूपस्वच्छजलस्य व्यामोहलक्षणकालुष्यकारणत्वात् मोहकर्दमो येन स अत्यस्तमोहकर्दमः । अतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरं मकराणां प्रकरोऽविच्छिन्नः ।संततिविशेषो

मरणान्येव मकरप्रकरः शरीराद्यपायहेतुत्वात्, अतिदूरं निरस्तो निक्षिप्तो मरणमकरप्रकरो निर्वाणप्राप्तिहेतुत्वाद्येन तत्तथोक्तं ॥ २७ ॥

अथोच्यते तीर्थमनेकप्रकारपक्षिशब्दपुलिनजलावरोधजलनिर्गमधर्मैरुपेतं भवति, इदं तु तथा न भवष्यतीत्यत्राह—

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम् ।
विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणम् ॥२८॥

टीका—ऋषिवृषभेत्यादि—ऋषीणां वृषभाः गणधरदेवादयः, स्तुतिरूपाणि मन्द्राणि मनोज्ञानि उद्रेकितानि उत्कटशब्दितानि तानि च निर्घोषाश्च शास्त्रपाठाः स्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोषाः, ऋषिवृषभाणां स्तुतिमन्द्रोद्रेकितनिर्घोषास्त एव विविधा नाना प्रकरा विहगध्वानाः पक्षिशब्दाः यत्र । विविधतपोनिधिपुलिनं—विविधानि च बहुप्रकाराणि तपांसि निधीयंते येषु ते विविधतपोनिधयो मुनिवराः त एव पुलिनं संसारसरित्प्रवाहे प्रवहतां तदुत्तरणस्थानं यत्र । सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणं—आस्रवणं आस्रवः कर्मागमनं तस्य संवरणं निवारणं यथा प्रविशतो जलस्य अवरोध इति, निर्जरा उपात्तकर्मणां निर्जरणं सैव निःसरणं यथोपात्तस्य जलस्य निर्गमः इति, आस्रवसंवरणं च निर्जरानिःस्रवणं च ताभ्यां सह वर्तते इति सास्रवसंवरणनिर्जरानिःस्रवणं ॥ २८ ॥

गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम् ॥२९॥

टीका—गणधरेत्यादि । तदित्थंभूतं तीर्थं पुरुषैर्बहुभिः स्नातं स्नान्त्यस्मिन्निति स्नातं । किंविशिष्टैस्तैः ? गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुण्डरीकैः—गणधराश्च चक्रधराश्च इन्द्राश्च ते प्रभृतय आद्याः येषां ते च ते महान्तश्च ते भव्यपुण्डरीकाश्च भव्यानां प्रधानाः, यदि वा महाभव्याश्च ते पुण्डरीकाश्चेति विग्रहः तैः । कया स्नातं ? भक्त्या ।

किमर्थं ? कलिकलुषमलापकर्षणार्थं—कलौ दुःषमकाले कलुषं कर्म यदुपार्जितं तदेव मलं आत्मस्वरूपप्रच्छादकत्वात्तस्यापकर्षणार्थं स्फेटनार्थं । अमेयं महत् ॥ २६ ॥

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरम् ।
व्यपहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम् ॥३०॥

टीका—तत्तीर्थं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दुस्तरं अनवगाह्यपारं तच्च तत्समस्तं च निरवशेषं दुरितं च कर्म दूरमपुनरावृत्तं यथा भवत्येवं । व्यपहरतु विशेषेण निर्मूलतोऽपहरतु स्फेटयतु । किंविशिष्टस्य मम ? अवतीर्णवतः तीर्थे अनुप्रविष्टस्य । किमर्थं ? स्नातुं—कर्ममलं प्रक्षालयितुं । किंविशिष्टं तीर्थं ? परमपावनं परमं सर्वाधिनायकत्वात्, पावनं सर्वदोषापहारकत्वात् । अनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं—अन्यैः परवादिभिः जेतुं शक्या अन्यजय्या न अन्यजय्या अनन्यजय्याः स्वभावाः स्वरूपाणि येषां ते च ते भावाश्च जीवादयः तैर्गभीरं अगाधं ॥ ३० ॥

पृथ्वी—छंदः ।

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥३१॥

टीका—जिनेन्द्ररूपं पुनात्विति संबंधः । यत्र रूपे मुखं कथयतीव प्रकटयतीव । ते तव । हृदयशुद्धिं हृदयं चित्तं ज्ञानमित्यर्थः तस्य शुद्धिं निर्मलतां प्रतिबंधकहानिं । किंविशिष्टां ? आत्यन्तिकीं अन्तमतिक्रान्तः कालः अत्यन्तः तस्मिन्भवां क्षायिकत्वेन हि तद्विशुद्धेर्न कदाचिदंतो भवति । कथंभूतं मुखं ? अताम्रनयनोत्पलं—ईषत्ताम्रं अताम्रं ते च ते नयने च ते एव उत्पले यत्र उत्पलशब्देनात्र उत्पलपत्रे गृह्यते । समुदा-

येषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेषु वर्तन्ते इत्यभिधानात्। कुतो हेतोः? कोपावेशात्ते अताम्रे भविष्यतः इत्याह सकलकोपवह्निजयात्—सकलो अनंतानुबंध्यादिभेदभिन्नः स चासौ कोपश्च स एव वह्निः संतापहेतुत्वात् तस्य जयात् क्षयकरणात्। पुनरपि कथंभूतं? कटाक्षशरमोक्षहीनं—कामोद्रेकादिष्टे प्राणिनि तिर्यग्दृष्टिपातः कटाक्षः स एव शरो मर्मवेधित्वात् तस्य मोक्षो मोचनं तेन हीनं। कुतः? अविकारतोद्रेकतः—अविकारता वीतरागता तस्या उद्रेकतः परमप्रकर्षप्राप्तत्वात्। पुनरपि किंविशिष्टं? प्रहसितायमानं सदा प्रहसितं इव आत्मानं आचरतीति प्रहसितायमानं। सदा सर्वकालं। कुतः? विषादमदहानितः। विषादान्मदाच्च कदाचिदप्रसन्नता मुखे भवति, भगवति तु तयोरत्यंतप्रक्षयतस्तन्मुखस्य सर्वदा प्रसन्नतोपपत्तेः प्रहसितायमानं सदा इत्युच्यते॥ ३१॥

> निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया—
>
> न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
>
> निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमा—
>
> न्निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्॥३२॥

टीका—पुनरपि कथंभूतं रूपं? निराभरणभासुरं—आभरणेभ्यो निष्क्रांतं निराभरणं तच्च तद्भासुरं च भासनशीलं परमशोभासमन्वितं। आभारणशोभामपि कुतस्तन्न करोतीति चेत् विगतरागवेगोदयात्—रागस्य वेग आवेशस्तस्योदयो विशेषेण गतो नष्टः स चासौ रागवेगोदयश्च तस्मात्। निरम्बरमनोहरं—अम्बरेभ्यो वस्त्रेभ्यो निष्क्रान्तं निरंबरं तच्च तन्मनोहरं च मनोज्ञं। कस्मात्तदम्बराण्यपि नादत्ते इत्याह प्रकृतिरूपनिर्दोषतः—प्रकृतिरूपं सहजरूपं तत्र निर्दोषतः रागादिदोषासंभवात्। अनेन विशेषणद्वयेन श्वेतपटाः भगवतः कुंडलाद्याभरणं देवांगवस्त्रादिपरिधानं च परिकल्पयंतः प्रत्युक्ताः। ननु निर्दोषत्वेऽपि लज्जाप्रच्छादनार्थं वस्त्रग्रहणं भगवतो न विरुद्धमित्यप्यनुपपन्नं लज्जाया

एव दोषत्वात् प्रक्षीणमोहे च भगवति मोहविशेषात्मिकाया लज्जाया असंभवाच्च। पुनरपि कथंभूतं ? निरायुधसुनिर्भयं—आयुधं प्रहरणं तस्मान्निष्क्रान्तं तद्वा निष्क्रान्तं यस्मात् तन्निरायुधं, इत्थंभूतमपि सुनिर्भयं भयान्निष्क्रान्तं भयं वा निष्क्रान्तं यस्मान्निर्भयं सुष्ठु निर्भयं सुनिर्भयं। कुतः ? विगतहिंस्यहिंसाक्रमात् हिंस्यश्च हिंसा च तयोः क्रमोऽनुपरिपाटी विशेषेण गतो नष्टः स चासौ हिंस्यहिंसाक्रमश्च वध्यवधकक्रमः। यदि हि भगवता कस्यचित् हिंस्यस्य हिंसा विधीयते तदा तेनापि भगवतः सा विधीयते इति हिंस्यहिंसाक्रमः स्यान्न च भगवता कस्यचित्सा विधीयते परमकारुणिकत्वात्। पुनरपि किंविशिष्टं तव रूपं ? निरामिषसुतृप्तिमत्—आमिषाद्।हारान्निष्क्रान्तं निरामिषं तदित्थंभूतमपि सुतृप्तिमत् शोभना इतरप्राणितृप्तिभ्यो विलक्षणा कवलाहाररहिता तृप्तिः सुतृप्तिः सा विद्यते यत्र तत्तद्वत्। कुतः ? विविधवेदनानां क्षयात्—विविधा नानाप्रकाराः क्षुत्पिपासादिजनिता वेदनाः पीडास्तासां क्षयादभावात्॥ ३२॥

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगंधोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्॥३३॥

टीका—मितस्थितेत्यादि। अंग शरीरं तत्र जाता अंगजाः केशाः, मिताः परिमिताः वृद्धिरहिताः नखा अंगजाश्च यत्र। यत्समये हि केवलज्ञानं उत्पन्नं भगवतस्तत्समये यत्परिमाणा नखाः केशाश्च अग्रेऽपि तत्परिमाणा एव तिष्ठन्ति न पुनर्वर्द्धन्ते। गतरजोमलस्पर्शनं—रजः पांसुः तदेव मलं तेन स्पर्शनं संबंधो गतं नष्टं रजोमलस्पर्शनं यत्र। नवाम्बुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगंधोदयं—नवं प्रत्यग्रं विकसितं तच्च तदंबुरुहं च अंबु पानीयं तत्र रोहति प्रादुर्भवति इत्यबुरुहं कमलं तच्च चंदनं च ताभ्यां प्रतिमः सदृशः दिव्योऽन्यजनशरीरासंभवी यो गंधस्तस्योदयः प्रादुर्भावो

यत्र । रवींदुकुलिशादिपुण्यबहुलक्षणालंकृतं--रविरादित्य इंद्रश्चंद्रः कुलिशं वज्रं एतान्यादिर्येषां तानि च तानि पुण्यानि च प्रशस्तानि बहूनि च अष्टोत्तरशतसंख्यानि लक्षणानि च तैरलंकृतं भूषितं । दिवाकरसहस्र-भासुरमपीक्षणानां प्रियं—दिवाकराणां सहस्रं तद्वद्भासुरमपि दीप्तमपि ईक्षणानां लोचनानां प्रियं वल्लभं ॥ ३३ ॥

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते ।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचंद्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥

टीका—हितार्थेत्यादि । यद्रूपं अभि अभिमुखं समन्ताद्वा वीक्ष्य विलोक्य । शोशुध्यते अतिशयेन शुद्धो भवति । कोसौ ? जनः । कथंभूतः ? कलंकितमनाः कलंकितं मलिनीकृतं मनो यस्य । कैः ? प्रबलरागमोहादिभिः प्रकृष्टं बलं सामर्थ्यं येषां ते प्रबला रागश्च मोहश्च तावादिर्येषां द्वेषा-दीनां । प्रबलाश्च ते रागमोहादयश्च तैः । कथंभूतैः ? हितार्थपरिपंथिभिः हितश्चासौ अर्थश्च मोक्षस्तस्य परिपंथिनो प्रहारिणश्चौराः इत्यर्थः तैः । सदा अभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः—सदा सर्वदा, अभिमुखमेव सन्मुखमेव । कथं ? सर्वतः सर्वासु दिक्षु यद्रूपं दृश्यते । केषां ? पश्यतां । क ? जगति । किमिव ? शरद्विमलचंद्रमंडलमिव—शरदि शरत्काले विमलं विनष्टं घनपटलकलंकं तच्च तच्चंद्रमंडलं च चंद्रबिंबं तदिव उत्थितं उदितं ॥ ३४ ॥

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि—
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम् ।
पुनातु भगवज्जिनेंद्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत्सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः ॥३५॥

टीका—तदेतदित्यादि । तद्रूपमेतद्वयावर्णितप्रकारं । अमराणामीश्वरा इंद्राः यदि वा अमरा देवा ईश्वरा देवेन्द्रधरणेन्द्रनरेन्द्राः तेषां प्रचला पुनः पुनः प्रणामपराः ते च ते मौलयश्च तेषां मालापंक्तिः तत्र मणयस्तेषां स्फुरंतो दीप्तास्ते च ते किरणाश्च रश्मयस्तैः चुंबनीयमाश्लेषणीयं चरणारविंदद्वयं यत्र चरणावेव अरविंदे कमले तयोर्द्वयं । पुनातु पवित्रीकरोतु । तव रूपं । हे जिनेन्द्र भगवन् केवलज्ञानसंपन्न यदि वा पूज्य ! किं तत्पुनातु ? जगत्सकलं । किंविशिष्टं ? अन्धीकृतं विवेकपराङ्मुखीकृतं । कैः ? अन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः—जैनतीर्थादन्यत्तीर्थं मतं येषां ते अन्यतीर्थाः मिथ्यादृष्टयः तेभ्यो गुरुरूपाणां बृहत्स्वरूपाणां दोषाणां रागद्वेषमोहानां यत्र उदयाः प्रादुर्भावास्तैः ॥ ३५ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

संस्कृत-पञ्चमहागुरुभक्तिः ।

(१)

श्रीमदमरेन्द्रमुकुटप्रघटितमणिकिरणवारिधाराभिः ।
प्रक्षालितपदयुगलान् प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ॥ १ ॥

अष्टगुणैः समुपेतान् प्रणष्टदुष्टाष्टकर्मरिपुसमितीन् ।
सिद्धान् सततमनन्तान्नमस्करोमीष्टतुष्टिसंसिद्ध्यै ॥ २ ॥

साचारश्रुतजलधीन् प्रतीर्य शुद्धोरुचरणनिरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुगकमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ॥ ३ ॥

मिथ्यावादिमदोग्रध्वान्तप्रध्वंसिवचनसंदर्भान् ।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारिप्रणाशाय ॥ ४ ॥

सम्यग्दर्शनदीपप्रकाशका मेयबोधसंभूताः ।
भूरिचरित्रपताकास्ते साधुगणास्तु मां पान्तु ॥ ५ ॥

जिनसिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपेतान् ।
पंचनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ॥ ६ ॥

एष पंचनमस्कारः सर्वपापप्रणाशनः ।
मंगलानां च सर्वेषां प्रथमं मंगलं मतं ॥ ७ ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः ।
कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे निर्वाणपरमश्रियम् ॥ ८ ॥

सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान् सिद्धानाचार्यपाठकान् साधून् ।
रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ॥ ९ ॥

पान्तु श्रीपादपद्मानि पंचानां परमेष्ठिनाम् ।
लालितानि सुराधीशचूडामणिमरीचिभिः ॥ १० ॥

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून् योगाङ्गैरष्टभिः स्तुवे ॥ ११ ॥

प्राकृत-पंचमहागुरुभक्तिः ।

(२)
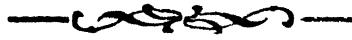
मणुय-णाइंद-सुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावलीपत्तया ।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥

टीका—मनुजेन्द्राश्चक्रवर्त्यादयो नागेन्द्रा धरणेन्द्रादयः सुरा देवेन्द्रादयस्तैर्धृतं कर्मकारैरिव गृहीतं छत्रत्रयं येषां ते मनुजनागेन्द्रसुरधृतच्छत्रत्रयाः, पंचकल्याणानि गर्भावतार-जन्माभिषेक—निष्क्रमण—ज्ञान—निर्वाणानि तेषु या सौख्यावली सुखश्रेणिस्तां प्राप्ताः पंचकल्याणसौख्यावलीप्राप्ताः । एवं विशेषणद्वयविशिष्टास्ते जिणा—सर्वज्ञाः, दिंतु—ददतु । किं ? दंसणं—केवलदर्शनं, णाणं—केवलज्ञानं, झाणं—ध्यानं परमशुक्लध्यानं, अनंतं—अपारं, बलं—वीर्यं । ध्यानशब्देनात्र स्वात्मोत्थमनन्तसौख्यं लभ्यते तेनायमर्थः—अनन्तज्ञानादिचतुष्टयं ददतु । कथंभूतास्ते जिनाः ? वरं मंगलं—उत्कृष्टं मंगलं पापगालनसुखलानसमर्था इत्यर्थः ।

जेहिं झाणग्गिबाणेहिं अइथद्दयं, जम्म-जर-मरणनयरत्तयं दड्ढयं ।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥२॥

टीका—यैः ध्यानाग्निबाणैः कृत्वा अतिस्तब्धमतिकठोरं जन्म—जरा—मरणनगरत्रयं दग्धं । जेहिं पत्तं—यः प्राप्तं लब्धं, सिवं—परमनिर्वाणं, शाश्वतं स्थानं—त्रिलोकाग्रं, ते सिद्धाः महं—मह्यं, दिंतु—प्रयच्छन्तु । किं ? वरं णाणयं—केवलज्ञानमित्यर्थः ।

पंचहाचार-पंचग्गिसंसाहया,
बारसंगाइंसुअ-जलहिअवगाहया ।
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया ॥ ३ ॥

टीका--पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया--पंचधाचारपंचाग्निसंसाधकाः, पंचधाचारः ज्ञानाचारः दर्शनाचारः तप—आचारः वीर्याचारः चारित्राचारश्चेति स एव पंचाग्निः कर्मेन्धनभस्मीकरणसमर्थत्वात् तस्य संसाधकाः सम्यगनुष्ठातारः । वारसंगाइंसुअजलहिअवगाहया—द्वादशाङ्गश्रुतजलध्यवगाहकाः द्वादशाङ्गश्रुतमेव जलधिर्महासमुद्रः सम्यक्त्वादिरत्नाश्रयत्वात् गांभीर्यादिगुणत्वाद्वा तस्यावगाहका विलोड्य पर्यन्तगामिनः, मोक्खलच्छी—मोक्षलक्ष्मीं, महंती--महतीं अनन्तां, महं--मह्यं, ते सूरिणो--ते सूरयः आचार्याः, सया—सदा, दिंतु--ददतु विश्राणयन्तु वितरन्तु प्रयच्छन्तु। कथंभूतास्ते सूरयः? मोक्खं गयासं गया--मोक्षं सर्वकर्मक्षयलक्षणं, गयासं—गताशं इहपरलोकाशारहितं गताः प्राप्ताः ।

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे ।
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसिया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥

टीका—अम्हे—वयं, ते—तान्, उवज्झाय—उपाध्यायान् वंदिमो वन्दामः पादावलग्नपूर्वकं संस्तुमः। कथं? सया—सदा सर्वकालं। तान् कान्? ये इति अध्याहार्यं ये जीवाण—जीवानां भव्यप्राणिनां, पहदेसया—मोक्षमार्गप्रकाशकाः। कथंभूतानां जीवानां? णट्ठमग्गाण—नष्टमार्गाणां मिथ्यामोहाज्ञानकुतपःपरिणतानां। कस्मिन्? घोरेत्यादि—घोरोऽतिरौद्रः स चासौ संसारश्चतुर्गतिलक्षणः स एव भीमाडवीकाणणं भयानकोद्वसवनं तस्मिन्। कथंभूते संसारकानने? तिक्खेत्यादि—तीक्ष्णा निशाता हृदयकायकदर्थका विकराला अतिरौद्रा एवंविधा नखा उदयलक्षणा नखरा येषां ते तीक्ष्णविकरालनखास्तादृशाः पापपंचाननाः पापसिंहा यस्मिन् तत्तथोक्तं तस्मिन् दुःखजनकनखहिंसादिपातकसिंहा इत्यर्थः ।

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणंगया, धम्मवरझाण-सुक्केक्कझाणं गया।
निब्भरं तवसिरीए समालिंगया, साहवो ते महं मोक्खपथमग्गया॥५॥

टीका—ते साहवो—ते साधवः, महं—मह्यं, मोक्खपहमग्गया—मोक्षपथे मार्गदा अवकाशप्रदा भवन्तु मोक्षमार्गे मां चलयन्त्वित्यर्थः। ते के? ये उग्गेत्यादि—उग्रं तीव्रं चतुर्थाद्युपवासपारणेऽपि अत्यक्तपूर्वोपवासं तच्च तत्तपश्चरणं च तस्य करणैरनुष्ठानैः, झीणंगया—क्षीणशरीराः। पुनर्ये कथंभूताः? धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया—धर्मवरध्यानशुक्लैकध्यानं गताः.................। निब्भरं—निर्भरमतिगाढं उपसर्गपरीषहनिपातेऽप्यपरित्यक्तप्रतिज्ञं यथा भवतीत्येवं। तवसिरीए—तपःश्रियास्तपोलक्ष्म्याः। समालिंगया—समालिंगकाः सम्यगुपगूहकाः।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए, गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणंपुंजपज्जालणं॥६॥

टीका—एण—अनेन प्रत्यक्षीभूतेन, थोत्तेण—स्तोत्रेण पुण्यगुणस्तवनेन, जो—यो भव्यजीवः, पंचगुरु—पंचगुरून् पंचपरमेष्ठिनः, वंदए—वंदते स्तौति। सो—सः, गुरुयसंसारघणवेल्लि—गुरुको महान् अनन्तभवभावी योऽसौ संसारः स एव घनवल्लिर्निविडवल्लिस्तां, छिंदए—छिनत्ति अनन्तभवभ्रमणं करिष्यन्नपि भवत्रयेण मोक्षं यातीत्यर्थः। लहइ—लभते प्राप्नोति, सो—सः, कानि? सिद्धिसोक्खाइं सिद्धिसौख्यानि आत्मोपलब्धिसमुद्भूतपरमानन्दानिति भावः। कथं लभते? वरमाणणं—गणधरचक्रधरधरणेन्द्रादीनां माननं पूजनं यथा भवत्येवं तीर्थकरो भूत्वा मुक्तिं यातीत्यर्थः। कुणइ—करोति। किं? कम्मिंधणंपुंजपज्जालणं—कर्मेन्धनपुंजप्रज्वालनमष्टकर्मकाष्ठकूटभस्मीकरणं। प्राकृते क्वचिदधिकबिन्दोर्दोषो नास्ति।

अरुहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण णमुक्कारा भवे भवे मम सुहं दिंतु॥ ७॥

टीका—अरुहा—अर्हा अर्हन्तः, सिद्धा—सिद्धाः, आइरिया-आचार्याः, उवज्झाया—उपाध्यायाः, साहु—साधवः, एते पंचापि परमेष्ठिनो भवन्ति परमपदे इन्द्रादिपूजिते स्थाने तिष्ठन्तीति परमेष्ठिनः। एयाण—एतेषां, णमुक्कारा—नमस्काराः—प्रणामाः, भवे भवे—जन्मनि जन्मनि, मम—मे, सुहं—सुखं तद्धेतुभूतं शुभं पुण्यं वा, दिंतु—ददतु ।

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते! पंचामहागुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठपवयणमउसंजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

समाधि-भक्तिः ।

या

प्रिय-भक्तिः ।
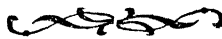
अथेष्टप्रार्थना—प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

टीका—अथ—अनन्तरं इष्टस्य—मनोऽभीष्टस्य वस्तुनः प्रार्थना—जिनाग्रे याचना क्रियते । तथा हि—प्रथमं प्रथमानुयोगं त्रिषष्टिलक्षणमहापुराणसुचरितं नमः—नमस्कारोऽस्तु । कश्चिन्नमः-

संयोगे द्वितीयाऽपि भवति चतुर्थी च। करणं करणानुयोगं शास्त्रं लोका-लोकविवरणं उत्सर्पिण्यादिकालकथकं चतुर्गतिस्वरूपनिरूपकं च ग्रंथं नमः। चरणं—चरणानुयोगं अगार्यनगारचारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षानिवेदकं शास्त्रं नमः। द्रव्यं द्रव्यानुयोगं जीवाजीवतत्त्वपुण्यपापबन्धमोक्षल-क्षणकं सिद्धान्तं नमः।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

टीका—एते पदार्थाः, मम—मे, भवभवे—जन्मनि जन्मनि, सम्पद्यन्तां—संजायन्ताम्। कियन्तं कालं सम्पद्यन्तां? यावत्कालं अप-वर्गः—मोक्षो भवति। एते के? एकस्तावच्छास्त्राभ्यासः—पूर्वोक्तस्य चतुर्विधस्य शास्त्रस्याभ्यासोऽनुशीलनं कांतिकरणं (?) शास्त्राभ्यासः। तथा जिनपतिनुतिः—जिनानां गणधरदेवादीनां पतिः स्वामी जिनपति-स्तस्य नुतिः स्तुतिः पुण्यगुणानुकीर्तनं। तथा संगतिः—प्रसंगः सम्पद्यतां। कैः सह? आर्यैः—अर्यन्ते गुणैर्गुणवद्भिर्वा इत्यार्यास्तैः निर्ग्रन्थाचार्यैः सह इत्यर्थः। अन्येऽपि ये धर्महेतवस्तैः सह सम्पद्यतां। कथं? सदा-सर्वकालं। तथा सद्वृत्तानां—सदाचारनिरतानां तीर्थकरपरमदेवादीनां गुणगणकथा—पुण्यगुणसमूहभाषणं सम्पद्यतां। परेषां दोषवादे-पापमलकलङ्कोद्भावने मौनं मूकता सम्पद्यतां। चकाराद्गुणकथने वाचालता स्वकीयगुणभाषणे च मौनं सम्पद्यतां। सर्वस्यापि गुणिवर्ग-स्यापि जन्तुमात्रस्यापि प्रियहितवचः—प्रियं कर्णामृतभूतं हितं परि-णामपथ्यं वचो वचनं सम्पद्यतां। आत्मतत्त्वे—निजनिर्मलनिश्चलात्म-स्वरूपे चकारात्पंचपरमेष्ठिषु च भावना ध्यानाभ्यासः सम्पद्यताम्।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ २ ॥

टीका—हे जिनेन्द्र-तीर्थंकरपरमदेव ! तव-भवतः, पादौ चरणौ, मम हृदये मदीयचित्ते तावत्कालं तिष्ठतां । तावत्कियत् ? यावत्कालं निर्वाणसम्प्राप्तिः—सर्वकर्मक्षयोत्पन्नात्मलब्धिः । यदि भगवतः पादौ तव हृदये तिष्ठतस्तर्हि तव हृदयं क तिष्ठतीत्याह- हे जिनेन्द्र ! मम हृदयं—मदीयं चित्तं तव पादद्वये—भवतश्चरणयुगले लीनं—तन्मयतां गतं सन्तिष्ठतु । कियन्तं कालं ? यावन्निर्वाणसंप्राप्तिरिति ।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेवय ! मज्झ य दुक्खक्खयं दिंतु ॥ ३ ॥

टीका—अक्षराणि च अकारादीनि पदानि च स्याद्यन्तत्याद्यन्तादीनि अर्थश्चाभिधेयं वाच्यं तैर्हीनं न्यूनं अक्षरपदार्थहीनं । मत्ताहीणं च—मात्रालघुदीर्घादिका तया हीनं च । जं मए भणियं—यन्मया भणितं-उच्चारितं, तं—तत् , खमउ—क्षम्यतां, णाणदेवय !-ज्ञानदेवते सरस्वति ! तथा मज्झ य—मह्यं च, दुक्खक्खयं—शारीरमानसाद्यसातविनाशं, दिंतु—ददातु ।

अञ्चलिका—

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

लघुभक्तयः ।

लघुसिद्धभक्तिः ।

(१)

संसारचक्रगमनागतिविप्रमुक्ता—
नित्यं जरामरणजन्मविकारहीनान् ।
देवेन्द्रदानवगणैरभिपूज्यमानान्
सिद्धांस्त्रिलोकमहितान् शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

असरीरा जीवघणा उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।
सायारमणायारा लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ २ ॥

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का ।
मंगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदसंसारा ॥ ३ ॥

अट्ठविहकम्मवियडा सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ ४ ॥

सिद्धा णट्ठट्ठमला विसुद्धबुद्धीय लद्धसब्भावा ।
तिहुवणसिरसेहरया पसियंतु भडारया सव्वे ॥ ५ ॥

गमणागमणविमुक्के विहडियकम्मट्ठपयडिसंघाए ।
सासहसुहसंपत्ते ते सिद्धे वंदिमो णिच्चं ॥ ६ ॥

जय मंगलभूदाणं विमलाणं णाणदंसणमयाणं ।
तइलोयसेहराणं णमो सया सव्वसिद्धाणं ॥ ७ ॥

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥ ८ ॥

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।

णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ ९ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्तसिद्धाणं तीदाणागदवट्टमाणकालत्तयसिद्धाणं सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

लघुश्रुतभक्तिः ।

(२)

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशांगं विशालं
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥१॥

जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो
यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः ।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं
द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्यहं श्रुतम् ॥२॥

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो
लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य—
मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥३॥

अरहन्तभासियत्थं गणधरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाणमहोवहिं सिरसा ॥४॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! सुदभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंगपइन्नयपाहुडपरियम्मसुत्तपढमाणिओयपुव्वगयचूलिया चेव सुत्तत्थयथुइधम्मकहाइयं सुदं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

लघुचारित्रभक्तिः ।

(३)
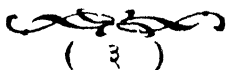
व्रतसमुदयमूलः संयमस्कन्धबन्धो
यमनियमपयोभिर्वर्धितः शीलशाखः ।
समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो
गुणकुसुमसुगन्धिः सत्तपश्चित्रपत्रः ॥१॥

शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः
शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः ।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नन्तभावं
स भवविभवहान्यै नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥२॥

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्चभेदं पञ्चमचारित्रलाभाय ॥३॥
धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥४॥
धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तओ ।
देवावि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥५॥

अञ्चलिका —

इच्छामि भंते ! चारित्तभत्तिकाओस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणुज्जोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स सव्वपहावणस्स णिव्वाणमग्गस्स संजमस्स कम्मणिज्जराफलस्स खमाहारस्स पंचमहव्वयसंपुन्नस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पंचसमिदिजुत्तस्स णाणज्झाणसाहणस्स समयाइपवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाओ सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

लघुयोगिभक्तिः ।

(४)

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासा
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रतिविगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः ।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता गिरिशिखरगताः स्थानकूटान्तरस्था—
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः ॥१॥

गिंभे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रुक्खमूल रयणीसु ।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥२॥

गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥३॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते ! योगिभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावण—रुक्खमूल—अब्भोवास—ठाण—मोण—वीरासणेक्कवास—कुक्कुडासण—चउत्थपक्खखमणादिजोगजुत्ताणं णिच्चकालं अंचमि पूजेमि वंदामि णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

आचार्य-लघुभक्तिः ।
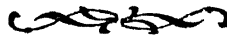
(५)

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमृष्टाक्षरः ॥१॥

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने
परिणतिरुरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ ।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्॥२॥

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः ।
सुचरिततपोनिधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ॥३॥

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे ।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिए सदा वंदे ॥ ४ ॥
गुरुभत्तिसंजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मणमरणं ण पावेंत्ति ॥ ५ ॥

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता ध्यानाग्निहोत्राकुलाः
षट्कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियासाधवः ।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिका
मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥ ६ ॥

गुरवः पान्तु वो नित्यं ज्ञानदर्शननायकाः ।
चारित्रार्णवगंभीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥ ७ ॥

अंचलिका—

इच्छामि भंते ! आइरियभत्तिकाओसग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण—सम्मदंसण—सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

लघुचैत्यभक्तिः ।

वर्षेषु[1] वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे[2] यानि च मन्दरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि[3] लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम् ॥ १ ॥

१—हिमवदादिषु । २—नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशत् । ३—प्रतिमागृहाणि ।

अवनितलगतानां[४] कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्य[५]वैमानिकानाम् ।
इह[६] मनुज[७]कृतानां देवराजार्चितानां
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं नमामि ॥२॥

जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये[८] ये भवा
श्चन्द्राम्भोज[९]शिखंडिकंठकनकप्रावृड्घनाभा जिनाः ।
सम्यग्ज्ञान[१०]चरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥३॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजत[११]गिरिवरे शाल्मलौ[१२] जम्बुवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचके कुण्डले मानुषाङ्के ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४॥

४—त्रिभुवनस्थितानां । ५—दिवि भवा दिव्या विमानेषु भवा वैमानिकास्तत्र दिव्या ज्योतिर्लोकभवा असंख्याता वैमानिकाः कल्पादिभवाः । ६—अस्मिन् मनुष्यलोके । ७—कैलासादौ भरतचक्रवर्त्यादिनिर्मितानां । ८—जम्बूवसुधा जम्बूद्वीपः धातकिवसुधा धातकिद्वीपः पुष्करार्धवसुधा पुष्करार्धद्वीपः जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधा लक्षणं यत्क्षेत्रत्रयं द्वीपत्रयं तज्जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रयं तस्मिन् । ९—चन्द्राभाश्चाम्भोजाभाश्च शिखंडिकंठाभाश्च कनकाभाश्च प्रावृड्घनाभाश्च ते तथोक्ताः । १०—सम्यग्ज्ञानं च सम्यक्चरित्रं च लक्षणानि चाष्टाधिकसहस्रं सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणानि धरन्तीति तथोक्ता अथवा लक्षणं सम्यग्दर्शनमुच्यते तेन रत्नत्रयसहिता इत्यर्थः । ११—विजयार्धसंज्ञपर्वतेषु । १२—जम्बूद्वीपमेरोर्दक्षिणे महान्मणिमयः शाल्मलिवृक्षोऽस्ति तदुपरि जिनालयोऽस्ति तस्मिन् यानि चैत्यानि सन्ति ।

द्वौ[13] कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ
[15]द्वौ बन्धूकसमप्रभौ[16] जिनवृषौ[17] [18]द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ ।
शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तहेमप्रभा-
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥५॥

अञ्चलिका—

इच्छामि भंते ! चेत्यभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, अहलोय--तिरियलोय--उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय--वाणविंतर--जोइसिय--कप्पवासियित्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति, अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

इति भक्त्यध्यायस्तृतीयः ।

१३—श्रीचन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ । १४—सुपार्श्वपार्श्वौ । १५—पद्मप्रभवासुपूज्यौ । १६—बन्धूकपुष्पसदृशौ रक्तवर्णौ । १७—जिनश्रेष्ठौ गणधरदेवादीनामतिशयेन प्रशस्यौ । १८—मुनिसुव्रतनेमी । १९—कृष्णवर्णौ ।

नमः सिद्धेभ्यः ।

नैमित्तिकक्रियाप्रयोग-विध्यध्यायश्चतुर्थः ।

१—चतुर्दशीक्रिया—

प्राकृतक्रियाकाण्डानुसारेण चतुर्दशीक्रिया यथा—

जिणदेववंदणाए चेदियभत्ती य पंचगुरुभत्ती ।
चउदसियं तं मज्झे सुदभत्ती होय कायव्वा ॥ १ ॥

१—नित्य जिनदेववन्दना या सामायिक में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करना चाहिए । और चतुर्दशी के दिन इन दोनों के मध्य में श्रुतभक्ति करना चाहिए ।

भावार्थ—नित्य त्रिकालिकवन्दनायुक्त ही चतुर्दशीक्रिया की जाती है। इस क्रिया के करने का समय भी त्रिकालवन्दना का समय ही है। प्रतिदिन की त्रिकालवन्दना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति की जाती है । चतुर्दशी के दिन इन दोनों भक्तियों के मध्य में श्रुतभक्ति और कर लेने से नित्यवन्दना और चतुर्दशोक्रिया दोनों हो जाती हैं ।

विशेष—क्रियाविज्ञापन, पंचांग नमस्कार, सामायिकदंडकपठन, इसके आदि और अन्त में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति,

अथ चतुर्दशीक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

इत्युच्चार्य सामायिकदंडकं पठित्वा कायोत्सर्गं कृत्वा तदनु चतुर्विंशतिस्तवं भणित्वा 'जयति भगवान्' इत्यादिकां चैत्यभक्तिं सांचलिकां पठेत्।

अथ चतुर्दशीक्रियायां·········श्रीश्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अत्रापि पूर्ववद्दंडकादिकं विधाय 'स्तोष्ये संज्ञानानि' इत्यादिकां (१६८) 'सिद्धवरसासणाणं' इत्यादिकां (१८२) वा सांचलिकां श्रुतभक्तिं पठेत्।

अथ चतुर्दशीक्रियायां·············श्रीपंचमहागुरुभक्ति-कायोत्सर्गं करोमि—

'श्रीमदमरेन्द्र' इत्यादिकां (२६२) 'मणुय-णाइंदा' इत्यादिकां वा पंचगुरुस्तुतिं सांचलिकां पठेत्।

अथ चतुर्दशीक्रियायां·······················चैत्यभक्ति-श्रुतभक्ति-पंचगुरुभक्तीर्विधाय तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

इत्युच्चार्य दंडादिकं पठित्वा 'अथेष्टप्रार्थना' इत्यादिकां समाधिभक्तिं पठेत्। अनन्तरं यथावकाशं यथाबलं चात्मानं ध्यायेत्।

संस्कृतक्रियाकाण्डानुसारेण चतुर्दशीक्रिया यथा—

कायोत्सर्ग, पुनः पंचांग प्रणाम, और चतुर्विंशतिजिनस्तुति इसके आदि और अंत में तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करके प्रत्येक भक्ति पढ़ना चाहिए। जिन जिन क्रियाओं में जितनी जितनी भक्तियों के पढ़ने का विधान हो उन सब को उक्त रीति से पढ़ कर अन्त में समाधिभक्ति पढ़ना चाहिए। और मुद्रा आदि का प्रयोग भी प्रथमाध्याय में बताई गई विधि के अनुसार करना चाहिए।

सिद्धे¹ चैत्ये श्रते भक्तिस्तथा पंचगुरुस्तुतिः ।
शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ॥ १ ॥

अथ चतुर्दशीक्रियायां............सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

'सिद्धानुद्धूत' इत्यादिकां 'अट्ठविहकम्ममुक्के' इत्यादिकां वा सिद्धभक्तिं पठेत् ।

अथ............चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(चैत्यभक्तिः पठनीया)

अथ..............श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(श्रुतभक्तिः)

अथ..............पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(पंचगुरुभक्तिः)

अथ..............शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('शान्तिजिनं शशि' इत्यादिशान्तिभक्तिः)

अथ..............सिद्ध–चैत्य–श्रुत-पंचगुरु–शान्तिभक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषविशुद्ध्यर्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

१—चतुर्दशीक्रिया में सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचगुरु-भक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिए ।

विशेष—प्राकृतक्रियाकांड का और संस्कृतक्रियाकांड का उपदेश भिन्न भिन्न है । दोनों ही उपदेश ऊपर दिखाये गये हैं । उनमें से किसी एक के अनुसार चतुर्दशीक्रिया की जा सकती है ।

२—पाक्षिकीक्रिया—

उक्तं हि चारित्रसारे—

[1]'चतुर्दशीदिने धर्मव्यासंगादिना क्रिया कर्तुं न लभ्येत चेत् पाक्षिकेऽष्टमीक्रिया कर्तव्या।

क्रियाकांडेऽपि—

[2]'जदि पुण धम्मव्वासंगा ण कया होज्ज चउद्दसीकिरिया।
तो पुण्णिमाइदिवसे कायव्वा पक्खिया किरिया॥ १॥

तत्र तावच्चारित्रसारानुसारेण पाक्षिकीक्रिया यथा—

[3]'पाक्षिके सिद्ध-चारित्र-शान्तिभक्तयः।

अथ पाक्षिकीक्रियायां······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(दंडादिविधानं भक्तिपठनं)

अथ·········सालोचनाचारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

दंडादिकं विधाय 'येनेन्द्रान्' इत्यादिकां 'तिलोए सव्वजोवाणं' इत्यादिकां वा भक्तिं पठेत्। भक्त्यंते 'इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो' इत्यालोचना कार्या।

अथ·········शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(शान्तिभक्तिं पठित्वा समाधिभक्तिं पठेत्)

१—चतुर्दशी के दिन धर्मव्यासंग आदि के कारण क्रिया न कर पावे तो पूर्णिमा और अमावस के रोज अष्टमीक्रिया करना चाहिए।

२—यदि धर्मव्यासंग से चतुर्दशी के रोज चतुर्दशीक्रिया न की जा सके तो पूर्णिमा और अमावस के रोज पाक्षिकीक्रिया करना चाहिए।

३—पाक्षिकीक्रिया में सिद्धभक्ति, सालोचना चारित्रभक्ति, और शान्तिभक्ति करना चाहिए।

संस्कृतक्रियाकाण्डानुसारेण यथा—

[1]सिद्धचारित्रचैत्येषु भक्तिः पंच गुरुष्वपि।
शान्तिभक्तिश्च पक्षान्ते जिने तीर्थे च जन्मनि ॥ १ ॥

अथ पाक्षिकक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " सालोचनं चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

३—अष्टमीक्रिया—

चारित्रसारानुसारेण—

[2]अष्टम्यां सिद्ध-श्रुत-चारित्र-शान्तिभक्तयः।

अथ अष्टमीक्रियायां सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " सालोचनं चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—
" " शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(इत्येवं प्रतिज्ञाप्य तत्तद्भक्तयो विधेयाः)

१—पक्ष के अन्त में अर्थात् पूर्णिमा और अमावस के रोज सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति, और शान्तिभक्ति करना चाहिए तथा जिनेन्द्र के जन्मदिवस के रोज भी इन भक्तियों को करना चाहिए।

२—अष्टमी के रोज सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, आलोचना सहित चारित्रभक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिए।

संस्कृतक्रियाकाण्डानुसारेण तु—

[1]सिद्धश्रुतसुचारित्रचैत्यपंचगुरुस्तुतिः ।
शान्तिभक्तिश्च षष्ठीयं क्रिया स्यादष्टमीतिथौ ॥ १ ॥

अथ अष्टमीक्रियायां······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(दंडादिविधानपूर्वकं सिद्धभक्तिः कार्या)

अथ अष्टमीक्रियायां······श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(दंडादिकं विधाय श्रुतभक्तिः कर्तव्या)

अथाष्टमीक्रियायां······चारित्रभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(दंडादिपूर्वं चारित्रभक्तिर्विधेया)

अथाष्टमीक्रियायां······चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(पूर्ववत् चैत्यभक्तिः करणीया)

अथाष्टमीक्रियायां······पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(पूर्ववत् पंचगुरुभक्तिं कुर्यात)

अथाष्टमीक्रियायां······शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(दंडादिविधानं भक्तिपठनं च कर्तव्यं अन्ते समाधिभक्तिश्च)

४—सिद्धप्रतिमाक्रिया—

[2]सिद्धभक्त्यैकया सिद्धप्रतिमायां क्रिया मता ।

अथ सिद्धप्रतिमाक्रियायां············सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('सिद्धानुद्धूत' इत्यादि)

१—अष्टमी क्रिया में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति एवं छह भक्तियां करना चाहिए।

२—सिद्धप्रतिमा में एक सिद्धभक्ति करना चाहिए ।

५—तीर्थंकरजन्मक्रिया—

'तीर्थंकृज्जन्मनि जिनप्रतिमायां च पाक्षिकी ॥

'अथ पाक्षिकक्रियायां' इत्यस्य स्थाने 'अथ तीर्थकृज्जन्मक्रियोयां।' इत्युच्चार्य पाक्षिकीक्रिया कर्तव्या।

६—पूर्वजिनचैत्यक्रिया—

'अथ पाक्षिकक्रियायां' इत्यस्य स्थाने 'अथ पूर्वजिनचैत्यक्रियायां' इत्युच्चार्य पाक्षिकीक्रिया पूर्वोक्तैव कर्तव्या।

७—अपूर्वचैत्यवन्दनाक्रिया—

'दर्शनपूजात्रिसमयवन्दनयोगोऽष्टमीक्रियादिषु चेत्।
प्राक्तर्हि शान्तिभक्तेः प्रयोजयेच्चैत्यपंचगुरुभक्ती ॥

'अथ अपूर्वचैत्यवन्दनाक्रियायां' इत्येवमुच्चार्य सिद्धभक्ति-श्रुतभक्ति-सालोचनाचारित्रभक्तीः कृत्वा चैत्यभक्ति-पंचगुरुभक्ती कुर्यात्, अनन्तरं शान्तिभक्तिं कुर्यात्। एषोऽष्टमीक्रियायां विधिः। पाक्षिकक्रियायां ताभ्यां योगे सति सिद्धचारित्रभक्ती कृत्वा चैत्यपंचगुरु-भक्ती कुर्यात् अनन्तरं शान्तिभक्तिं कुर्यात्।

१—तीर्थकरजन्म और जिनप्रतिमा अर्थात् पूर्वजिनचैत्यमें पाक्षिकीक्रिया करना चाहिए।

भावार्थ—विहार करते करते छह महीने पहले उसी प्रतिमाके पुनः प्रथम दर्शन हो तो उसे पूर्वजिनचैत्य कहते हैं। उस पूर्वजिन चैत्यका दर्शन करते समय पूर्वोक्त पाक्षिकीक्रिया करना चाहिए।

२—अष्टमी आदि क्रियाओं में यदि दर्शनपूजा अर्थात् अपूर्व-चैत्यदर्शन और नित्यदेववन्दना का योग आ उपस्थित हो तो शान्ति-भक्ति के पहले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति का प्रयोग करे।

८—अनेकापूर्वचैत्यदर्शनक्रिया

'दृष्ट्वा सर्वाण्यपूर्वाणि चैत्यान्येकत्र कल्पयेत्।
क्रियां तेषां तु षष्ठेऽनुश्रूयते मास्यपूर्णता॥

'अथ अनेकापूर्वचैत्यदर्शनक्रियायां' इत्युच्चार्य अपूर्वचैत्यदर्शन-क्रिया कर्तव्या।

९—पाक्षिकादिप्रतिक्रमणाक्रिया

'पाक्षिक्यादिप्रतिक्रान्तो वन्देरन् विधिवद्गुरुम्।
सिद्धवृत्तस्तुती कुर्याद्गुर्वीं चालोचनां गणी॥
देवास्याग्रे परे सूरेः सिद्धयोगिस्तुती लघू।
सवृत्तालोचने कृत्वा प्रायश्चित्तमुपेत्य च॥

१—अनेक अपूर्व जिन प्रतिमाओं को देख कर एक अभिरुचित जिनप्रतिमा में अनेक अपूर्व जिनचैत्य वन्दना क्रिया करे। तथा छठे महीने में उन प्रतिमाओं में अपूर्वता सुनी जाती है।

भावार्थ—किसी प्रतिमा के एक बार दर्शन हो जाने पर छठे महीने में पुनः उसके दर्शन हों तो वह प्रतिमा अपूर्व प्रतिमा कही जाती है ऐसी व्यवहारी पुरुषों की परंपरा है। अतः उस अपूर्व प्रतिमा में और जिसके दर्शन पहले हुए ही न हों उस अपूर्व प्रतिमा में उक्त रीत्या क्रिया करना चाहिए। कहीं अनेक अपूर्व प्रतिमा हों तो उन सब अपूर्व प्रतिमाओं में से किसी एक अभिरुचित प्रतिमा के सन्मुख क्रिया करना चाहिए।

२—शिष्य और सधर्मा, पाक्षिक चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में लघु सिद्धभक्ति, लघु श्रुतभक्ति और लघु आचार्यभक्ति पढ़ कर पहले आचार्य की वन्दना करें। अनन्तर आचार्य और संघ-

वन्दित्वाचार्यमाचार्यभक्त्या लघ्व्या ससूरयः ।
प्रतिक्रान्तिस्तुतिं कुर्युः प्रतिक्रामेत्ततो गणी ॥
अथ वीरस्तुतिं शान्तिचतुर्विंशतिकीर्तनाम् ।
सवृत्तालोचनां गुर्वीं सगुर्वालोचनां यताः ॥
मध्यां सूरिनुतिं तां च लघ्वीं कुर्युः परे पुनः ।
(एष विधिः ७० पृष्ठादारभ्य १२३ पृष्ठं यावदुक्तो ज्ञेयः)

स्थ शिष्य सधर्मा सब मिल कर (इष्टदेवता नमस्कार पूर्वक 'समता सर्वभूतेषु' इत्यादि पढ़ कर) अंचलिका सहित बृहत्सिद्धभक्ति और बृहत् आलोचना सहित चारित्रभक्ति अर्हंत भट्टारक के आगे बोलें। अनन्तर अकेला आचार्य ('णमो अरहंताणं' इत्यादि पंच पदों का उच्चारण कर, कायात्सर्ग कर, 'थोस्सामि' इत्यादि पढ़ कर) लघु सिद्धभक्ति अर्थात् 'तव सिद्धे' इत्यादि गाथा को अंचलिका सहित पढ़ कर, (फिर 'णमो अरहंताणं' इन पांच पदों का उच्चारण कर कायोत्सर्ग कर, 'थोस्सामि' इत्यादि पढ़ कर) अंचलिका सहित लघु योगिभक्ति 'प्रावृट्काले सवियुत्' इत्यादि पढ़ कर, 'इच्छामि भंते ! चरित्तायारो तेरहविहो' इत्यादि पांच दंडक पढ़ कर 'वदसमिदिंदिय' इत्यादि से लेकर 'छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं' तक तीन वार पढ़ कर अर्हंत देव के आगे अपने दोषों की आलोचना करे और दोषानुसार प्रायश्चित्त लेकर 'पंच महाव्रत' इत्यादि पाठ को तीन वार पढ़ कर, योग्यशिष्यादिक को प्रायश्चित्त निवेदन कर देव को गुरुभक्ति देवे। अनन्तर आचार्य के साथ साथ शिष्य सधर्मा आचार्य के आगे आचार्योक्त इसी पाठको फिर पढ़ कर अर्थात् उसी क्रम से लघुसिद्धभक्ति और लघु योगिभक्ति पढ़ कर प्रायश्चित्त लेकर, लघु आचार्यभक्ति द्वारा आचार्य की वन्दना कर प्रतिक्रमण स्तुति करें अर्थात् कृत्यविज्ञापना पूर्वक 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दंडक पढ़ कर

१०—श्रुतपंचमीक्रिया—

'बृहत्या श्रुतपंचम्यां भक्त्या सिद्धश्रुतार्थया।
श्रुतस्कन्धं प्रतिष्ठाप्य गृहीत्वा वाचनां बृहत्॥
क्षम्यो गृहीत्वा स्वाध्यायः कृत्या शान्तिनुतिस्ततः।
यमिनां, गृहिणां सिद्धश्रुतशान्तिस्तवाः पुनः॥

अथ श्रुतस्कन्धप्रतिष्ठापनक्रियायां...... सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('सिद्धानुद्धूत' इत्यादि)

अथ श्रुतस्कन्धप्रतिष्ठापनक्रियायां...... श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

कायोत्सर्ग करें। अनन्तर आचार्य 'थोस्सामि' इत्यादि दंडक और गणधरवलय को पढ़ कर प्रतिक्रमण दंडकों को पढ़े, तब तक शिष्य-सधर्मा कायोत्सर्ग से स्थित हुए आचार्य-मुख-निर्गत प्रतिक्रमण दंडकों को सुनें। अनन्तर साधुवर्ग 'थोस्सामि' इत्यादि दंडक को पढ़ें, अनन्तर आचार्य सहित सब मिल कर 'वदसमिदिंदियरोधो' इत्यादि को पढ़ कर वीरभक्ति पढ़ें। अनन्तर शान्तिकीर्तनापूर्वक चतुर्विंशतिजिनस्तुति, लघु चारित्रालोचनायुक्त बृहदाचार्यभक्ति, बृहत् आलोचनायुक्त मध्याचार्यभक्ति और लघु आलोचना सहित लघु आचार्यभक्ति पढ़ें।

१—मुनि, श्रुतपंचमी के दिन बृहत्सिद्धभक्ति और बृहत् श्रुतभक्ति पूर्वक श्रुतस्कंध की प्रतिष्ठापना कर श्रुतावतार का उपदेश दे। अनन्तर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति पूर्वक स्वाध्याय करे और श्रुतभक्ति पढ़कर स्वाध्याय निष्ठापन करे। अन्त में शान्ति भक्ति पढ़े। तथा श्रावक, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्ति करे।

('स्तोष्ये संज्ञानानि' इत्यादि)

अनन्तरं श्रुतावतारोपदेशः कार्यः। तदनु—

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनाक्रियायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(श्रुतभक्तिः)

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां......आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(आचार्यभक्तिं कृत्वा स्वाध्यायं कुर्यात्)

अथ स्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां......श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(श्रुतभक्तिः)

अथ श्रुतपंचमीक्रियायां......शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(शान्तिभक्तिः)

११—सिद्धान्ताचारवाचनाक्रिया—

[1]कल्प्यः क्रमोऽयं सिद्धान्ताचारवाचनयोरपि।
एकैकार्थाधिकारान्ते व्युत्सर्गस्तन्मुखान्तयोः॥
सिद्धश्रुतगणिस्तोत्रं व्युत्सर्गाश्चातिभक्तये।
द्वितीयादिदिने षट् षट् प्रदेया वाचनावनौ॥

१—श्रुतपंचमीक्रिया का जो क्रम है वही सिद्धान्तवाचना और आचारवाचना का है। सिद्धान्त के एक एक अर्थाधिकार के अन्त में कायोत्सर्ग करना चाहिए और उनके प्रारंभ में और समाप्ति में सिद्ध-भक्ति, श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करना चाहिए। तथा अत्यन्त-भक्ति प्रदर्शित करने के लिए दूसरे तीसरे आदि दिनों में उस वाचना-भूमि में एवं छह छह कायोत्सर्ग करने चाहिएं।

अथ सिद्धान्तवाचनाप्रतिष्ठापनक्रियायां आचारवाचनाप्रतिष्ठापनक्रियायां वा सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ सिद्धान्तवाचनप्रतिष्ठापनक्रियायां आचारवाचनप्रतिष्ठापनक्रियायां वा श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(इति वाचनाग्रहणं)

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां.........श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां.........आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(सिद्धान्तवाचना आचारवाचना वा)

अथ स्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां.........श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ सिद्धान्तवाचननिष्ठापनक्रियायां आचारवाचननिष्ठापनक्रियायां वा शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(शान्तिभक्तिः)

१२—संन्यासक्रिया—

[1]संन्यासस्य क्रियादौ सा शान्तिभक्त्या विना सह।
अन्त्येऽन्यदा बृहद्भक्त्या स्वाध्यायस्थापनोज्झने॥
योगेऽपि ज्ञेयं तत्रात्तस्वाध्यायैः प्रतिचारकैः।
स्वाध्यायाग्राहिणां प्राग्वत् तदाद्यन्तदिने तया॥

१—क्षपक के संन्यास के प्रारम्भ में शान्तिभक्ति के विना श्रुतपंचमी में कही हुई क्रिया करना चाहिए अर्थात् श्रुतस्कन्ध की तरह सिद्धभक्ति और श्रुतभक्तिपूर्वक संन्यास स्थापन करना चाहिए। और

अथ संन्यासप्रतिष्ठापनक्रियायां·······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ संन्यासप्रतिष्ठापनक्रियायां·······श्रुतिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(संन्यासप्रतिष्ठापनं)

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां·······श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('स्तोष्ये संज्ञानानि' इत्यादि)

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां·······आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('सिद्धगुणस्तुति' इत्यादि, अनन्तरं स्वाध्यायः कार्यः)

अथ स्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां·······श्रुतिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

संन्यास के अन्त में शान्तिभक्तियुक्त वही क्रिया करना चाहिए अर्थात् क्षपक के स्वर्गवासी हो जाने पर सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़ कर संन्यासक्रिया पूर्ण करना चाहिए। तथा सन्यासप्रतिष्ठापन के दिनों के सिवा अन्य दिनों में बड़ी श्रुतभक्ति और बड़ी आचार्यभक्ति पूर्वक स्वाध्याय स्थापन और बड़ी श्रुतभक्ति पूर्वक स्वाध्याय निष्ठापन करना चाहिए। तथा जिनने पहले दिन संन्यासवसति में स्वाध्याय की प्रतिष्ठापना की हो वे क्षपक की शुश्रूषा करने वाले यदि अन्यत्र रात्रियोग या वर्षायोग ग्रहण कर लिया हो तो भी वहीं संन्यासवसति में सोवें। तथा जिनने पहले दिन संन्यासवसति में स्वाध्याय ग्रहण न किया हो ऐसे गृहस्थ संन्यास के आरम्भ के दिन में और संन्यास की समाप्ति दिन में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और शान्तिभक्ति पूर्वक क्रिया करें।

('स्तोष्ये संज्ञानानि' इत्यादि)

अथ संन्यासनिष्ठापनक्रियायां……सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ संन्यासनिष्ठापनक्रियायां……श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ संन्यासनिष्ठापनक्रियायां……शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(शान्तिभक्तिः)

१३—अष्टाह्निकक्रिया—

[1]कुर्वन्तु सिद्धनन्दीश्वरगुरुशान्तिस्तवैः क्रियामष्टौ।
शुच्यूर्जतपस्यसिताष्टम्यादिदिनानि मध्याह्ने॥

अथ अष्टाह्निकक्रियायां……सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अष्टाह्निकक्रियायां……नन्दीश्वरचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अष्टाह्निकक्रियायां……पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अष्टाह्निकक्रियायां……शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

१—आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुण शुक्ला अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त के आठ दिनों तक पौर्वाह्निक स्वाध्याय ग्रहण के अनन्तर सब संघ मिल कर सिद्धभक्ति, नन्दीश्वरचैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति द्वारा अष्टाह्निक क्रिया करे।

१४—अभिषेकवन्दनाक्रिया—

[1]अहिसेयवंदणा सिद्धचेदियपंचगुरुसंतिभत्तीहिं।
कीरइ मंगलगोयरमज्झण्हियवंदणा होई ॥

तथा—

[2]सा नन्दीश्वरपदकृतचैत्या त्वभिषेकवन्दनास्ति तथा।
मंगलगोचरमध्याह्नवन्दना योगयोजनोज्झनयोः ॥

अथ अभिषेकवन्दनाक्रियायां..........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अभिषेकवन्दनाक्रियायां..........चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अभिषेकवन्दनाक्रियायां.......पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अथ अभिषेकवन्दनाक्रियायां........शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

१—सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति द्वारा अभिषेकवन्दना की जाती है। तथा यही अभिषेकवन्दना मंगलगोचर-मध्याह्न वन्दना होती है। अन्यत्र भी कहा है कि पूजाभिषव और मंगल इन दो क्रियाओं में सिद्धभक्ति को आदि लेकर शान्तिभक्ति पर्यन्त चार भक्तियां की जाती हैं। यथा—

सिद्धभक्त्यादिशान्त्यन्ता पूजाभिषवमंगले।

२—वह नन्दीश्वरक्रिया ही नन्दीश्वरभक्ति के स्थान में चैत्य-भक्ति के जोड़ देने पर अभिषेक-वन्दना अर्थात् जिनमहास्नपनदिवस में वन्दना होती है। तथा अभिषेक-वन्दना ही वर्षायोग ग्रहण और विसर्जन में मंगलगोचर-मध्याह्न-वन्दना होती है।

१५-मंगलगोचरमध्याह्नवन्दनाक्रिया-

अथ मंगलगोचरमध्याह्नवन्दनाक्रियायां इत्येवमुच्चार्य क्रमेण सिद्धभक्ति--चैत्यभक्ति--पंचगुरुभक्ति--शान्तिभक्तयो विधेयाः ।

१६-मंगलगोचरबृहत्प्रत्याख्यानक्रिया-

[1]लात्वा बृहत्सिद्धयोगिस्तुत्या मंगलगोचरे ।
प्रत्याख्यानं बृहत्सूरिशान्तिभक्ती प्रयुञ्जताम् ॥

अथ मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानक्रियायां·········सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोमि—('सिद्धानुद्धूत' इत्यादि)

अथ मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानक्रियायां·········योगिभक्ति-कायोत्सर्गं करोमि—('जातिजरोरुरोग' इत्यादि)

(इत्येवं भक्तिद्वयेन प्रत्याख्यानं गृहीत्वा इदं भक्तिद्वयं प्रयुञ्जताम्)

अथ मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानक्रियायां···········आचार्य-भक्तिकायोत्सर्गं करोमि—('सिद्धगुरुस्तुति' इत्यादि)

अथ मंगलगोचरभक्तप्रत्याख्यानक्रियायां···········शान्ति-भक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(शान्तिभक्तिः)

१—मंगलगोचर में बड़ी सिद्धभक्ति और बड़ी योगिभक्ति द्वारा भक्तप्रत्याख्यान ग्रहण करके बड़ी आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति को आचार्यादिक सब मिल कर पढ़ें ।

१७—वर्षायोगग्रहणक्रिया—

[1]ततश्चतुर्दशीपूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती ।
चतुर्दिक्षु परीत्याल्पाश्चैत्यभक्तीर्गुरुस्तुतिम् ॥
शान्तिभक्तिं च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम् ।

अथ वर्षायोगप्रतिष्ठापनाक्रियायां········सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—(सिद्धिभक्ति-पठनं)

अथ वर्षायोगप्रतिष्ठापनाक्रियायां·······योगभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—(योगिभक्तिपठनं)

पूर्वस्यां दिशि—

यावन्ति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये ।
तावन्ति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहम् ॥

इमं श्लोकं पठित्वा वृषभाजितस्वयंभूस्तवद्वयमुच्चार्य 'अथ वर्षायोगप्रतिष्ठापनाक्रियायां चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि' इत्येवं प्रतिज्ञाप्य, दंडादिकं भणित्वा 'वर्षेषु वर्षान्तर' इत्यादिकां लघुचैत्यभक्तिं सांचलिकां पठेत् । इति पूर्वदिक्चैत्यवन्दना ।

१—प्रत्याख्यानप्रयोगविधि के अनन्तर आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी की रात्रि के प्रथम पहर में सिद्धभक्ति और योगिभक्ति करके, चारों दिशाओं में प्रदक्षिणापूर्वक एक एक दिशा में लघुचैत्यभक्ति पढ़ते हुए, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़ते हुए वर्षायोग ग्रहण करें। भावार्थ—पूर्व दिशा की ओर मुखकरके पहले सिद्धभक्ति और योगिभक्ति पढ़ें । चैत्यभक्ति को ऊपर बताये हुए विधान के अनुसार पूर्वादि दिशाओं की ओर मुख करके चार बार पढ़ें । अथवा भावसे ही प्रदक्षिणा करना चाहिए । इसलिए एक ही पूर्व या उत्तर दिशामें मुख करके उक्तरीति से चार बार चैत्यभक्ति पढ़ें । इस तरह वर्षायोग ग्रहण करें ।

दक्षिणस्यां दिशि—

उक्तं श्लोकं पठित्वा, संभवाभिनन्दनस्वयंभूस्तवद्वयमुच्चार्य, क्रियां विज्ञाप्य, दंडादिकं विधाय तामेव भक्तिं सांचलिकां पठेत्। इत्येवं दक्षिण-दिक्चैत्यवन्दना।

पश्चिमायां दिशि—

उक्तं श्लोकं पठित्वा सुमतिपद्मप्रभस्वयंभूस्तवद्वयमुच्चार्य कृत्य-विज्ञापनां कृत्वा दंडादिकं विधाय तामेव भक्तिं सांचलिकां पठेत्। इति पश्चिमदिक्चैत्यवंदना।

उत्तरस्यां दिशि—

उक्तं श्लोकं पठित्वा सुपार्श्वचन्द्रप्रभस्वयंभूस्तवद्वयं भणित्वा कृत्यविज्ञापनां कृत्वा दंडादिकं विधाय तामेव लघुचैत्यभक्तिं सांचलिकां पठेत्। इत्युत्तरदिक्चैत्यवन्दना।

अथ वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां………पंचगुरुभक्तिका-योत्सर्गं करोमि —(पंचगुरुभक्तिः)

अथ वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां………शान्तिभक्तिका-योत्सर्गं करोमि—

(शन्तिभक्तिः)

१८—वर्षायोगनिष्ठापनक्रिया—

ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्।

वर्षायोगप्रतिष्ठापने यो विधिरुक्तिः स एव तन्निष्ठापने कार्यः। केवलं 'वर्षायोगप्रतिष्ठापनक्रियायां' इत्यस्य स्थाने 'वर्षायोगनिष्ठापन-क्रियायां' इति योज्यम्।

१—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के चौथे प्रहर में वर्षा-योग का निष्ठापन करें।

शेषविधिः—

¹मासं वासोऽन्यदैकत्र योगक्षेत्रं शुचौ व्रजेत् ।
मार्गेऽतीते त्यजेच्चार्थवशादपि न लंघयेत् ॥
नभश्चतुर्थीं तद्याने कृष्णां शुक्लोर्जपंचमीं ।
यावन्न गच्छेत्तच्छेदे कथंचिच्छेदमाचरेत् ॥

१६—वीरनिर्वाणक्रिया

²योगान्तेऽर्कोदये सिद्धनिर्वाणगुरुशान्तयः ।
प्रणुत्या वीरनिर्वाणे कृत्यातो नित्यवन्दना ॥

अथ वीरनिर्वाणक्रियायां..................सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

१—चतुर्मास के अलावा हेमन्तादि ऋतुओं में मुनिगण किसी एक नगरादि स्थान में एक महीने तक ठहर सकता है। आषाढ़ के महीने में वह श्रमणसंघ वर्षायोग स्थान को चला जाय और मगसिर का महीना बीतते ही उस वर्षायोग स्थान को छोड़ दे। यदि आषाढ़ के महीने में वर्षायोग स्थान में न पहुंच सके तो कारणवश भी श्रावण बदी चतुर्थी का उल्लंघन न करे अर्थात् श्रावण बदी चतुर्थी तक वर्षायोग स्थान में अवश्य पहुंच जाय। तथा कार्तिक शुक्ला पंचमी के पहले प्रयोजनवश भी वर्षायोग स्थान को छोड़ कर स्थानान्तर को न जाय। दुर्निवार उपसर्गादि के कारण यथोक्त वर्षायोग प्रयोग का उल्लंघन करना पड़े तो प्रायश्चित्त ग्रहण करे।

२—कार्तिक बदी चतुर्दशी की रात्रि के चौथी पहर में वर्षायोग-निष्ठापन किया जाता है। इस लिए वर्षायोग के निष्ठापन के अनन्तर सूर्योदय हो जाने पर वीरनिर्वाणक्रिया करे। उस में सिद्धभक्ति,निर्वाण-भक्ति, गुरुभक्ति और शान्तिभक्ति करे। इसके बाद नित्यवन्दना करे।

अथ वीरनिर्वाणक्रियायां .... निर्वाणभक्तिकायोत्सर्गं करोमि--

(निर्वाणभक्तिं पठन् प्रदक्षिणां कुर्यात्)

अथ वीरनिर्वाणक्रियायां .... पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमि--

अथ वीरनिर्वाणक्रियायां .... शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि--

---

२० — कल्याणपंचकक्रिया —

[१]साद्यन्तसिद्धशान्तिस्तुतिजिनगर्भजनुषोः स्तुयाद्वृत्तं ।
निष्क्रमणे योग्यन्तं विदि श्रुताद्यपि शिवे शिवान्तमपि ॥

१--'अथ जिनेन्द्रगर्भकल्याणकक्रियायां' इत्येवमुच्चार्य क्रमेण सिद्ध-चारित्र-शान्तिभक्तयो विधेयाः ।

२--'अथ जिनेन्द्रजन्मकल्याणकक्रियायां' इत्येवमुच्चार्य अनन्तरोक्ता एव भक्तयो विधेयाः ।

१--जिनेन्द्र के गर्भकल्याण और जन्मकल्याण में सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, निष्क्रमणकल्याण में, सिद्ध-भक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, ज्ञानकल्याणक में, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति और शान्ति-भक्ति पढ़कर, तथा निर्वाणक्षेत्र में या निर्वाणकल्याणक में सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर वन्दना करें। जन्मकल्याणक की क्रिया पहले कह आये हैं तो भी पांचों क्रियाओं का एक स्थान में ज्ञान हो इसलिए फिर कही गई है।

३—'अथ जिनेन्द्रनिष्क्रमणकल्याणकक्रियायां' इत्येवं विज्ञाप्य क्रमशः सिद्ध-चारित्र-योगि-शान्तिभक्तयः कर्तव्याः । प्रदक्षिणी करणं च योगिभक्त्या ।

४—'अथ जिनेन्द्रज्ञानकल्याणकक्रियायां' इत्येवं प्रतिज्ञाप्य आनुपूर्व्या सिद्ध-श्रुत-चारित्र-योगि-शान्तिभक्तयः प्रणेतव्याः । योगिभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं ।

५—'अथ जिनेन्द्रनिर्वाणकल्याणकक्रियायां निर्वाणक्षेत्रक्रियायां वा इत्येवं उच्चारणां विधाय क्रमेण सिद्ध-श्रत-चारित्र-योगि-निर्वाण-शान्तिभक्तयः करणीयाः । निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं ।

२१—पंचत्वप्राप्तर्ष्यादीनां काये निषेधिकायां च क्रिया—

[1]काये निषेधिकायां च मुनेः सिद्धर्षिशान्तिभिः ।
उत्तरव्रतिनः सिद्धवृत्तर्षिशान्तिभिः क्रिया ॥
सैद्धान्तस्य मुनेः सिद्धश्रुतर्षिशान्तिभक्तिभिः ।
उत्तरव्रतिनः सिद्धश्रुतवृत्तर्षिशान्तिभिः ॥
सूरेर्निषेधिकाकाये सिद्धर्षिसूरिशान्तिभिः ।
शरीरक्लेशिनः सिद्धवृत्तर्षिगणिशान्तिभिः ॥
सैद्धान्ताचार्यस्य सिद्धश्रुतर्षिसूरिशान्तयः ।
अस्य योगे सिद्धश्रुतवृत्तर्षिगणिशान्तयः ॥

येषामुच्चारणा यथायोग्यं उन्नेयाः विस्तारभयात्सुगमत्वद्वा नोक्ताः

१—(१) मृत सामान्य मुनि के शरीर और निषद्या भूमि में सिद्धभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (२) उत्तरव्रती मृत

२२—चलाचलबिम्बप्रतिष्ठायाः क्रिया—

[1]चलाचलप्रतिष्ठायां सिद्धशान्तिस्तुतिर्भवेत्।
वन्दना चाभिषेकस्य तुर्यस्नाने मता पुनः॥

सामान्यमुनि के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (३) सिद्धान्तवेत्ता मृत सामान्य मुनि के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (४) उत्तरव्रती और सिद्धान्तवेत्ता मृत सामान्य मुनि के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (५) मृत आचार्य के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (६) कायक्लेशी मृत आचार्य के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (७) सिद्धान्त के ज्ञाता मृत आचार्य के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर, (८) शरीर क्लेशी और सिद्धान्तवेत्ता मृत आचार्य के शरीर और निषद्याभूमि में सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर वन्दना क्रिया करें।

१—चलजिनबिम्ब की प्रतिष्ठा और अचलजिनबिम्ब की प्रतिष्ठा में सिद्धभक्ति और शान्तिभक्ति होती है। चलजिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के चतुर्थ दिन के अवभृथ स्नान में अभिषेकवन्दना अर्थात् सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति मानी गई है। अचलजिनबिम्ब की प्रतिष्ठा के चतुर्थ दिन के अवभृथ स्नान में सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, बड़ी चारित्रालोचना और शान्तिभक्ति करना चाहिए।

सिद्धवृत्तस्तुतिं कुर्याद् बृहदालोचनां तथा ।
शान्तिभक्तिं जिनेन्द्रस्य प्रतिष्ठायां स्थिरस्य तु ॥

चलजिनबिम्बप्रतिष्ठाक्रियायां, अचलजिनबिंबप्रतिष्ठाक्रियायां, चलजिनबिंबचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां, अचलजिनबिम्बचतुर्थदिनस्नपनक्रियायां इत्येवं विज्ञाप्य तास्ताः भक्तयः प्रणेयाः ।

२३—आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रिया—

[1]सिद्धाचार्यस्तुती कृत्वा सुलग्ने गुर्वनुज्ञया ।
लात्वाचार्यपदं शान्तिं स्तुयात्साधुः स्फुरद्गुणः ॥

अथ आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रियायां······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(सिद्धभक्तिः)

अथ आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रियायां······आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

(आचार्यभक्तिः)

एवं भक्तिद्वयं पठित्वा 'अद्यप्रभृति भवता रहस्यशास्त्राध्ययनदीक्षादानादिकमाचार्यकार्यमाचर्यमिति गणसमक्षं भासमाणेन गुरुणा समर्प्यमाणपिच्छग्रहणलक्षणमाचार्यपदं गृह्णीयात् । अनन्तरं—

अथ आचार्यपदनिष्ठापनक्रियायां······शान्तिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

१—जिसके गुण संघ के चित्त में स्फुरायमान हो रहे हैं ऐसा साधु शुभ लग्न में सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति करके गुरु की आज्ञा से आचार्यपद का ग्रहण कर शान्तिभक्ति करे ।

२४—प्रतिमायोगिमुनिक्रिया—

[1]प्रतिमायोगिनः साधोः सिद्धानागारशान्तिभिः।
विधीयते क्रियाकांडं सर्वसंघैः सुभक्तितः॥

अथवा—

[2]लघीयसोऽपि प्रतिमायोगिनः योगिनः क्रियाम्।
कुर्युः सर्वेऽपि सिद्धर्षिशान्तिभक्तिभिरादरात्॥

अथ प्रतिमायोगिमुनिक्रियायां.........सिद्धभक्तिकायोत्सर्ग करोमि—

अथ प्रतिमायोगिमुनिक्रियायां.........योगिभक्तिकायोत्सर्ग करोमि—

अथ प्रतिमायोगिमुनिक्रियायां......शान्तिभक्तिकायोत्सर्ग करोमि—

२५—दीक्षाग्रहणक्रिया—

[3]सिद्धयोगिबृहद्भक्तिपूर्वकं लिङ्गमर्प्यताम्।
लुञ्चाख्यानाग्न्यपिच्छात्म क्षम्यतां सिद्धभक्तितः॥

१—सब संघ उत्तम भक्ति से प्रतिमायोगी अर्थात् सारे दिन सूर्य के अभिमुख कायोत्सर्ग करने वाले साधु का सिद्धभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर क्रियाकांड करें।

२—सब मुनि, दीक्षा में अत्यन्त लघु भी प्रतिमायोगि मुनि की सिद्धभक्ति, योगिभक्ति और शान्तिभक्ति पढ़कर वन्दनाक्रिया आदर-पूर्वक करें।

३—बृहत्सिद्धभक्ति और बृहत्योगिभक्ति पूर्वक लोचकरण, नामकरण, नग्नताप्रदान और पिच्छप्रदान रूप लिंग अर्पण करें और सिद्धभक्ति पढ़कर लिंगार्पणविधान को समाप्त करें।

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('सिद्धानुद्धूत' इत्यादि)

अथ दीक्षाग्रहणक्रियायां······योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('थोस्सामि गुणधराणं' इत्यादि 'जातिजरोरुरोग' इत्यादि वा)

अनन्तरं लोचकरणं, नामकरणं, नाग्न्यप्रदानं, पिच्छप्रदानं च

अथ दीक्षानिष्ठापनक्रियायां······सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि

दीक्षादानोत्तरकर्त्तव्यम्—

[१]व्रतसमितीन्द्रियरोधाः पंच पृथक् क्षितिशयो रदाघर्षः ।
स्थितिसकृदशने लुञ्चावश्यकषट्के विचेलताऽस्नानम् ॥
इत्यष्टाविंशतिं मूलगुणान् निक्षिप्य दीक्षिते ।
संक्षेपेण सशीलादीन् गणी कुर्यात्प्रतिक्रमम् ॥

२६—अन्यदातनलोचक्रिया—

[२]लोचो द्वित्रिचतुर्मासैर्वरो मध्योऽधमः क्रमात् ।
लघुप्राग्भक्तिभिः कार्यः सोपवासप्रतिक्रमः ॥

१—उस दीक्षित में पांच व्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियनिरोध, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन, सकृद्भुक्ति, लोच, छह आवश्यक, अचेलता और अस्नान इन अट्ठाईस मूल गुणों को संक्षेप से चौरासी लाख गुणों तथा अठारह हजार शीलों के साथ साथ स्थापित कर दीक्षादाता आचार्य उसी दिन व्रतारोपण प्रतिक्रमण करे। यदि लग्न ठीक न हो तो कुछ दिन ठहर कर भी प्रतिक्रमण कर सकता है।

२—दूसरे, तीसरे या चौथे महीने में लोच करना चाहिए। दो महीने से लोच करना उत्कृष्ट, तीन महीने से मध्यम और चार महीने

अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('तवसिद्धे' इत्यादि)

अथ लोचप्रतिष्ठापनक्रियायां........योगिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

अनन्तरं स्वहस्तेन परहस्तेनापि वा लोचः कार्यः

अथ लोचनिष्ठापनक्रियायां........सिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोमि—

('तवसिद्धे' इत्यादि) अनन्तरं प्रतिक्रमणं कर्तव्यम् ।

बृहद्दीक्षाविधिः ।

पूर्वदिने भोजनसमये भाजनतिरस्कारविधिं विधाय आहारं गृहीत्वा चैत्यालये आगच्छेत् ततो बृहत्प्रत्याख्यानप्रतिष्ठापने सिद्ध-योगभक्ती पठित्वा गुरुपार्श्वे प्रत्याख्यानं सोपवासं गृहीत्वा आचार्य-शान्ति-समाधिभक्तीः पठित्वा गुरोः प्रणामं कुर्यात् ।

अथ दीक्षादाने दीक्षादातृजनः शान्तिक-गणधरवलयपूजादिकं यथाशक्ति कारयेत् । अथ दाता तं स्नानादिकं कारयित्वा यथायोग्या-लङ्कारयुक्तं महामहोत्सवेन चैत्यालये समानयेत् । स देवशास्त्रगुरुपूजां विधाय वैराग्यभावनापरः सर्वैः सह क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे तिष्ठेत् ।

से जघन्य माना गया है । इस लोच को उपवासपूर्वक और प्रतिक्रमण सहित लघुसिद्धभक्ति और लघुयोगिभक्ति पढ़कर प्रतिष्ठापन और लघु सिद्धभक्ति पढ़कर निष्ठापन करना चाहिए ।

ततो गुरोरग्रे संघस्याग्रे च दीक्षायै यांचां कृत्वा तदाज्ञया सौभाग्यवती-स्त्रीविहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वदिशाभिमुखः पर्यं-कासनं कृत्वा आसते, गुरुश्चोत्तराभिमुखो भूत्वा, [1]संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं कुर्यात्।

अथ तद्विधिः—

बृहद्दीक्षायां लोचस्वीकारक्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकमुच्चार्य सिद्ध-योगिभक्ती कृत्वा—

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्यु-विनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

इत्यनेन मंत्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं मंत्रयित्वा शिरसि निक्षि-पेत्। शान्तिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिःपरिषिच्य मस्तकं वामहस्तेन स्पृशेत्। ततो दध्यक्षतगोमयदूर्वांकुरान् मस्तके वर्धमानमंत्रेण निक्षिपेत्—

ॐ नमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जये वा विवादे वा थंभणे वा रणंगणे वा रायंगणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा—वर्धमान मंत्रः।

ततः पवित्रभस्मपात्रं गृहीत्वा "ॐणमो अरहंताणं रत्नत्रय-पवित्रीकृतोत्तमांगाय ज्योतिर्मयाय मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवल-ज्ञानाय अ सि आ उ सा स्वाहा" इदं मंत्रं पठित्वा शिरसि कर्पूर-मिश्रितं भस्म परिक्षिप्य "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अ सि आ उ सा

१—इति पदं पुस्तकान्तरे नास्ति।

स्वाहा" अनेन प्रथमं केशोत्पाटनं कृत्वा पश्चात् "ॐ ह्रां अर्हद्भ्यो नमः, ॐ ह्रीं सिद्धेभ्यो नमः, ॐ ह्रूं सूरिभ्यो नम, ॐ ह्रौं पाठकेभ्यो नमः, ॐ ह्रः सर्वसाधुभ्यो नमः" इत्युच्चरन् गुरुः स्वहस्तेन पंचवारान् केशान् उत्पाटयेत्। पश्चादन्यः कोऽपि लोचावसाने बृहद्दीक्षायां लोचनिष्ठापनक्रियायां पूर्वाचार्येत्यादिकं पठित्वा सिद्धभक्तिः (क्ति) कर्तव्या (कुर्यात्) ततः शीर्षं प्रक्षाल्य गुरुभक्तिं दत्वा वस्त्राभरणयज्ञोपवीतादिकं परित्यज्य तत्रैवावस्थाय दीक्षां याचयेत्। ततो गुरुः शिरसि श्रीकारं लिखित्वा "ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा ह्रीं स्वाहा" अनेन मंत्रेण जाप्यं १०८ दद्यात्। ततो गुरुस्तस्यांजलौ केशरकर्पूरश्रीखंडेन श्रीकारं कुर्यात्। श्रीकारस्य चतुर्दिक्षु—

रयणत्तयं च वंदे चउवीसजिणं तहा वंदे ।
पंचगुरूणं वंदे चारणजुगलं तहा वंदे ॥

इति पठन् अंकान् [1]लिखेत्। पूर्वे ३ दक्षिणे २४ पश्चिमे ५ उत्तरे २ इति लिखित्वा "सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः" इति पठन् तन्दुलैरञ्जलिं पूरयेत्तदुपरि नालिकेरं पूगीफलं च धृत्वा सिद्धचारित्रयोगिभक्तिं पठित्वा व्रतादिकं दद्यात्। तथा हि—

वदसमिदिंदियरोधो लोचो आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥

इति पठित्वा तद्व्याख्या विधेया कालानुसारेणेति निरूप्य पंचमहाव्रतपंचसमितीत्यादि पठित्वा सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते भवतु इति त्रीन् वारान् उच्चार्य व्रतानि दत्वा ततः शान्तिभक्तिं पठेत्। ततः आशीः श्लोकं पठित्वा अंजलिस्थं तन्दुलादिकं दात्रे दापयित्वा, अथ षोडशसंस्कारारोपणं—

१—लिख्यते पुस्तकान्तरे ।

अयं सम्यग्दर्शनसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १
अयं सम्यग्ज्ञानसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु २
अयं सम्यक्चारित्रसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ३
अयं बाह्याभ्यन्तरतपःसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ४
अयं चतुरंगवीर्यसंस्कार इह मुनौ स्फुरत ५
अयं अष्टमातृमंडलसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ६
अयं शुद्ध्यष्टकावष्टंभसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ७
अयं अशेषपरीषहजयसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ८
अयं त्रियोगासंगमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ९
अयं त्रिकरणासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १०
अयं दशासंयमनिवृत्तिशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु ११
अयं चतुः संज्ञानिग्रहशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १२
अयं पंचेन्द्रियजयशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १३
अयं दशधर्मधारणशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १४
अयमष्टादशसहस्रशीलतासंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १५
अयं चतुरशीतिलक्षणसंस्कार इह मुनौ स्फुरतु १६

इति प्रत्येकमुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाणि क्षिपेत्।

'णमो अरहंताणं' इत्यादि 'ॐ परमहंसाय परमेष्ठिने हं स हं स हं हां हूं ह्रौं ह्रीं ह्रें ह्रः जिनाय नमः जिनं स्थापयामि संवौषट्, ऋषि-मस्तके न्यसेत्। अथ गुर्वावली पठित्वा अमुकस्य अमुकनामा त्वं शिष्य इति कथयित्वा संयमाद्युपकरणानि दद्यात्।

णमो अरहंताणं भो अन्तेवासिन् ! षड्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छिकोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

ॐ णमो अरहंताणं मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानाय द्वादशांगश्रुताय नमः भो अन्तेवासिन् ! इदं ज्ञानोपकरणं गृहाण गृहाणेति।

कमंडलुं बामहस्तेन उद्धृत्य ॐ णमो अरहंताणं रत्नत्रयपवित्रीकरणांगाय बाह्याभ्यन्तरमलशुद्धाय नमः भो अन्तेवासिन्! इदं शौचोपकरणं गृहाण गृहाणेति ।

ततश्च समाधि-भक्तिं पठेत् । ततो नवदीक्षितो मुनिर्गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्य अन्यान् मुनीन् प्रणम्योपविशति यावद्व्रतारोपणं न भवति तावदन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां न ददति, ततो दातृप्रमुखा जना उत्तमफलानि अग्रे निधाय तस्मै नमोऽस्त्विति प्रणामं कुर्वन्ति ।

ततस्तत्पक्षे द्वितीयपक्षे वा सुमुहूर्त्ते व्रतारोपणं कुर्यात् । तदा रत्नत्रयपूजां विधाय पाक्षिकप्रतिक्रमणपाठः पठनीयः । तत्र पाक्षिकनियमग्रहणसमयात् पूर्वं यदा वदसमदीत्यादि पठ्यते तदा पूर्ववद्व्रतादि दद्यात् । नियमग्रहणसमये यथायोग्यं एकं तपो दद्यात (पल्यविधानादिकं)। दातृप्रभृतिश्रावकेभ्योऽपि एकं एकं तपो दद्यात् । ततोऽन्ये मुनयः प्रतिवन्दनां ददति ।

अथ मुखशुद्धिमुक्तकरणे विधिः—

त्रयोदशसु पंचसु त्रिषु वा कच्चोलिकासु लवंग-एला-पूगीफलादिकं निक्षिप्य ताः कच्चोलिकाः गुरोरग्रे स्थापयेत् । 'मुखशुद्धिमुक्तकरणपाठक्रियायामित्याद्युच्चार्य सिद्ध-योगि-आचार्य-शान्ति-समाधि-भक्तीर्विधाय ततः पश्चान्मुखशुद्धिं गृह्णीयात् ।

इति महाव्रतदीक्षाविधिः ।

क्षुल्लकदीक्षाविधिः ।

अथ लघुदीक्षायां सिद्ध-योगि-शान्ति-समाधिभक्तीः पठेत् । "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं नमः" अनेन मंत्रेण जाप्यं वार २१ अथवा १०८ दीयते।

अन्यच्च विस्तारेण लघुदीक्षाविधिः—

अथ लघुदीक्षानेतृजनः पुरुषः स्त्री वा दाता संस्थापयति । यथायोग्यमलंकृतं कृत्वा चैत्यालये समानयेत्, देवं वंदित्वा सर्वैः सह

क्षमां कृत्वा गुरोरग्रे च दीक्षां याचयित्वा तदाज्ञया सौभाग्यवतीस्त्री-विहितस्वस्तिकोपरि श्वेतवस्त्रं प्रच्छाद्य तत्र पूर्वाभिमुखः पर्यंकासनो गुरुश्चोत्तराभिमुखः संघाष्टकं संघं च परिपृच्छ्य लोचं........"ॐ **नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशकाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्व-परकृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अमुकस्य सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा"** अनेन मंत्रेण गन्धोदकादिकं त्रिवारं शिरसि निक्षिपेत्। शान्तिमंत्रेण गन्धोदकं त्रिः परिषिच्य वामहस्तेन स्पृशेत्। ततो दध्यक्षतगोमयतद्भस्म-दूर्वांकुरान् मस्तके वर्धापनमंत्रेण निक्षिपेत् "ॐ णमो भयवदो वड्ढमाणस्से त्यादि वर्धापनमन्त्रः पूर्वं कथितः। लोचादिविधिं महाव्रतवद्विधाय सिद्ध-भक्ति-योगिभक्ती पठित्वा व्रतं दद्यात्। दंसणवयेत्यादि वारत्रयं पठित्वा व्याख्यां विधाय च गुर्वावलीं पठेत्। ततः संयमाद्युपकरणं दद्यात्।

ॐ णमो अरहंताणं भोः क्षुल्लक! (आर्य-ऐलक!) क्षुल्लके वा षट्जीवनिकायरक्षणाय मार्दवादिगुणोपेतमिदं पिच्छोपकरणं गृहाण गृहाण, इत्यादि पूर्ववत्कमण्डलुं ज्ञानोपकरणादिकं च मंत्रं पठित्वा दद्यात्।

इति लघुदीक्षाविधानं समाप्तम्।

अथोपाध्यायपददानविधिः।

सुमुहूर्ते दाता गणधरवलयार्चनं द्वादशाङ्गश्रुतार्चनं च कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटान् दत्वा तन्दुलैः स्वस्तिकं कृत्वा तदुपरि पट्टकं संस्थाप्य तत्र पूर्वाभिमुखं तमुपाध्यायपदयोग्यं मुनिमासयेत्। अथो-पाध्यायपदस्थापनक्रियायां पूर्वाचार्येत्याद्युच्चार्य सिद्धश्रुतभक्ती पठेत्। तत आवाहनादिमंत्रानुच्चार्य शिरसि लवंगपुष्पाक्षतं क्षिपेत्। तद्यथा—ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट्,

अह्वाननं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च "ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं उपाध्यायपरमेष्ठिने नमः" इमं मंत्रं सहेन्दुना चन्दनेन शिरसि न्यसेत्। ततश्च शान्तिसमाधिभक्ती पठेत्। ततः स उपाध्यायो गुरुभक्तिं दत्वा प्रणम्य दात्रे आशिषं दद्यादिति।

इत्युपाध्यायपदस्थानविधिः।

अथाचार्यपदस्थापनविधिः।

सुमूहूर्ते दाता शान्तिकं गणधरवलयार्चनं च यथाशक्ति कारयेत्। ततः श्रीखंडादिना छटादिकं कृत्वा आचार्यपदयोग्यं मुनिमासयेत्। आचार्यपदप्रतिष्ठापनक्रियायां इत्याद्युच्चार्य सिद्धाचार्यभक्ती पठेत्। "ॐ हूं परमसुरभिद्रव्यसन्दर्भपरिमलगर्भतीर्थाम्बुसम्पूर्णसुवर्णकलशपंचकतोयेन परिषेचयामीति स्वाहा" इति पठित्वा कलशपंचकतोयेन पादोपरि सेचयेत्। ततः पंडिताचार्यो "निर्वेद सौष्ठ" इत्यादि महर्षिस्तवनं पठन् पादौ समंतात्परामृश्य गुणारोपणं कुर्यात्। ततः ॐ हूं णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन्! अत्र एहि एहि संवौषट् आवाहनं स्थापनं सन्निधीकरणं। ततश्च "ॐ हूं णमो आइरियाणं धर्माचार्याधिपतये नमः" अनेन मंत्रेण सहेन्दुना चन्दनेन पादयोर्द्वयोस्तिलकं दद्यात्। ततः शान्तिसमाधिभक्ती कृत्वा गुरुभक्त्या गुरुं प्रणम्योपविशति। तत उपासकास्तस्य पादयोरष्टतयीमिष्टिं कुर्वन्ति। ततश्च गुरुभक्तिं दत्वा प्रणमन्ति। स उपासकेभ्य आशीर्वादं दद्यात्।

इत्याचार्यपददानविधिः।

ॐ ह्रां ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः—आचार्यवाचनामंत्रः।

अन्यच्च—

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं हं सः आचार्याय नमः—आचार्यमंत्रः।

दीक्षा-नक्षत्राणि

प्रणम्य शिरसा वीरं जिनेन्द्रममलव्रतम् ।
दीक्षा ऋक्षाणि वक्ष्यन्ते सतां शुभफलाप्तये ॥१॥
भरण्युत्तरफाल्गुन्यौ मघा-चित्रा-विशाखिकाः ।
पूर्वाभाद्रपदा भानि रेवती मुनिदीक्षणे[1] ॥२॥
रोहिणी चोत्तराषाढा उत्तराभाद्रपत्तथा ।
स्वातिः कृत्तिकया सार्धं वर्ज्यते मुनिदीक्षणे ॥३॥
अश्विनी-पूर्वाफाल्गुन्यौ हस्तस्वात्यनुराधिकाः ।
मूलं तथोत्तराषाढा श्रवणः शतभिषक्तथा ॥४॥
उत्तराभाद्रपच्चापि दशेति विशदाशयाः ।
आर्यिकाणां[2] व्रते योग्यान्युशन्ति शुभहेतवः ॥५॥
भरण्यां कृत्तिकायां च पुष्ये श्लेषार्द्रयोस्तथा ।
पुनर्वसौ च नो दद्युरार्यिकाव्रतमुत्तमाः ॥६॥
पूर्वभाद्रपदा मूलं धनिष्ठा च विशाखिका ।
श्रवणश्चैषु दीक्ष्यन्ते क्षुल्लकाः शल्यवर्जिताः ॥७॥

इति दीक्षानक्षत्रपटलम् ।

इति नैमित्तिकक्रियाप्रयोगविध्यध्यायश्चतुर्थः ।

समाप्तोऽयं क्रियाकलापग्रंथः ।

१—प्रशस्तानीत्यर्थः । २—क्षुल्लिकानामपि ।